विषय-सूची

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

मनुष्य और पशुओं का आत्मा एक है अथवा नहीं ?

कतिपय मनुष्यों को यह संदेह हो रहा है कि मनुष्य और पशु में एक ही प्रकार का आत्मा है अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार का ? जिसका आशय यह है कि मनुष्य का आत्मा ही पशु के देह में प्रवेश करता है अथवा इससे भिन्न किसी दूसरे प्रकार का है। इस संदेह को निवृत करने के लिये मनुष्य के देह और आत्मा का संबंध भी जान लेना उचित है। हम पिछले ट्रैक्ट में सिद्ध कर चुके हैं कि देह और आत्मा का संबंध मकान और मकीन का है, और मकान दो प्रकार के होते हैं, एक तो वह जिसमें जीव स्वतन्त्र रहता है, जैसे घर और दूसरे कारागार आदिक, जिन में जीव स्वतन्त्र नहीं होता। मनुष्य का आकार दोनों स्थानों में एक-सा होता है। कारागार और घर में रहनेवाले मनुष्य एक से ही

हैं केवल शक्तियों में अन्तर पड़ जाता है, जैसे जो मनुष्य घर में रहता है, वह अपनी स्वातन्त्रता के कारण अपने हानि-लाभ का स्वामी रहता है ; यदि व्यय अधिक करता है और कमाता थोड़ा है तो वह ऋणी हो जाता है ; परन्तु कारागार में स्वतन्त्रता न मिलने के कारण हानि लाभ पर उसका कोई बश नहीं। यदि कमाता थोड़ा और खाता अधिक है तो वह ऋणी नहीं होता। कारागार में उस के हाथों में हथकड़ी, पावों में बेड़ी डालकर और घर से बाहर न जाने की आज्ञा देकर उसके स्वातंत्र्य को रोका गया है और घर में उसकी स्वतन्त्रता है। इसके अतिरिक्त बन्दी और स्वतन्त्र मनुष्य में कोई भेद नहीं। अब यह भेद जब मनुष्यों में भी दीखता है कि कोई सेवक है, कोई राजा, कोई शासक है और कोई शासित राजा पलकी में विराजमान और सेवक उस पालकी को कन्धों पर उठाये हुए है, तो जिस प्रकार इस भेद के होते हुए भी राजा और सेवक दोनों के मनुष्य होने में संशय नहीं होता और न एक बन्दी तथा एक स्वतन्त्र व्यक्ति को मनुष्य जाति से पृथक् कर सकते हैं। जो दशा कि संसार में बन्दी और स्वतन्त्र मनुष्य की है, वही दशा ईश्वरीय सृष्टि में कर्त्तव्य और भोग-योनि की है। कर्त्तव्य का अर्थ आगे के लिये बोना है, जो आगामी में पककर भोगतव्य हो जाता है और भोगतव्य का अर्थ बोने की जगह अर्थात् आगामी के लिये प्रबन्ध करने के स्थान में केवल वर्त्तमान भोग के लिये परिश्रम करता है।

जिस प्रकार खाना और बोना दोनों कर्म हैं, दोनों के लिये परिश्रम की आवश्यकता है ; परन्तु फल दोनों का भिन्न है। अब एक ही मनुष्य दोनों प्रकार के कर्म कर सकता है। ऐसे मनुष्य भी हैं, जो दूसरों का उपकार करना ही अपना जीवनोद्देश्य समझते हैं, ऐसे मनुष्य भी हैं जो अपना ही पेट पालना चाहते हैं,

ऐसे भी हैं जो अपना और दूसरों का दोनों का ही भला करना चाहते हैं, और ऐसे भी हैं जिन्हें दूसरों को हानि पहुँचाना ही भला लगता है। मानों मनुष्य अच्छा बोने वाले, खाने वाले और बुरा बोने वाले मिलते हैं

जिससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि करना और भोगना दोनों मनुष्य योनि में हो सकते हैं; परन्तु पशु इससे भिन्न है, वह भोगते ही हैं अर्थात् खाना जानते हैं, बोना नहीं जानते। जिसका यह स्पष्ट अर्थ है कि वह भोगतव्य योनि हैं। जो मनुष्य बोता है वह अपने नाज को पृथ्वी में डाल देता है, यदि वह पृथ्वी पर पड़ा रहे तो पूर्णतया नहीं फलता, इसलिए उसे मिट्टी के नीचे दबा देते हैं तब वह फलता है और जो मनुष्य भोगता है, वह अपने पेट में डाल लेता है अथवा देह पर पहिन लेता है। तात्पर्य यह कि भोग अपने ही लिये किया जाता है और जो मनुष्य दूसरों की भलाई, बुराई करता है, वह मानों बो रहा है। यदि वह भलाई को प्रकट करता है तो उसकी भलाई कीर्ति का कारण तो हो जाती है परन्तु उससे आत्मिक शांति का फल नहीं मिलता और जो मनुष्य बुराई को प्रकट करता है उससे उसकी अपकीर्ति तो अवश्य होती है: परन्तु इससे बुरे संस्कार कम पड़ते हैं। क्योंकि लोगों में अनादर और अपशब्दादि उसकी उन्नति में बाधा डालते हैं इसी-लिये भारतवर्ष में यह प्राचीन लोकोक्ति थी—"नेकी छिपा कर करो और बदी प्रकट करो" जिससे यही अभिप्राय सिद्ध होता है कि मनुष्य अभिमानी नहीं होता, क्योंकि प्रकट में भलाई करने से संसार में प्रतिष्ठा होती है, जिसके कारण मनुष्य अभिमानी होकर दुःख उठाता है और बदी (बुराई) के प्रकट होने से मनुष्य का हृदय घमन्ड से रहित हो जाता है; क्योंकि चारों ओर से उसे फटकार पड़ती है।

इससे स्पष्ट रीति पर प्रकट होगया कि जो मनुष्य भलाई का बीज बोते हैं और उसे छिपाकर (गुप्त) रखते हैं, वह भविष्य के लिये अपना सुधार करते हैं और जो बुराई के बीज को छिपाकर बोते हैं, वह अपना बिगाड़ करते हैं। जब कि हम कर्मों से मनुष्य को बद्ध और मुक्त देखते हैं तो आत्मा के लिये जो कर्म करने में स्वतन्त्र है मोक्ष और बन्धन का विचार किस प्रकार बुद्धि विरुद्ध हो सकता है, जबकि कर्मों के कारण एक ही मनुष्य कारागार और घर (दो भिन्न स्थानों) में देखा जाता है तो एक ही आत्मा का दो प्रकार के देहों में (जो कारागार और घर की भांति आत्मा के घर हैं) जाना बुद्धि विरुद्ध हो सकता है। आत्मा के गुण दो प्रकार के हैं, एक वह जो स्वयं आत्मा के गुण हैं अर्थात् "ज्ञान और प्रयत्न"—जो मनुष्यों और पशुओं में समान पाये जाते हैं और दूसरे वह गुण जो आत्मा को मनुष्य योनि में शिक्षा द्वारा प्राप्त होते हैं। इनमें पशु और मनुष्य भिन्न हैं। जैसे दुःख सुख का प्रतीत होना जो स्वयं आत्मा का गुण है अथवा दुःखद पदार्थों से घृणा तथा सुखद वस्तुओं की इच्छा करना जो मन के कारण जीवों में पाये जाते हैं, यह पशु और मनुष्यों में समान हैं; परन्तु दुःख के कारण जानकर उसके दूर करने का उपाय करना तथा सुख के साधनों को जानकर उनके एकत्र करने का विचार करना ये शिक्षा से प्राप्त होनेवाले गुण मनुष्य योनि में ही मिल सकते हैं, पशु योनि में नहीं। उदाहरणार्थ स्वतन्त्र मनुष्य के हाथ पैर खुले होते हैं और उसे आने-जाने का अधिकार भी होता है। वह अपने हाथों से कृषि कर सकता है और चोरी भी कर सकता है।

जब उसे चोरी की बान पड़ जाती है तो उसकी टेव मिटाने के लिये गवर्नमेन्ट (शासन शक्ति) उसके हाथों में हथकड़ी डाल देती है, जिसका यह प्रयोजन होता है कि

वह उठाने की शक्ति न रखने के कारण इस लत को भूल जावे। अब रोका तो चोरी से गया है; परन्तु हाथों में हथकड़ी होने से वह खेती भी नहीं कर सकता, न पावों से वह विद्या-प्राप्ति के लिये जा सकता है, न किसी की रक्षा के लिये दौड़ सकता और न चोरी का माल लेकर ही भाग सकता है: क्योंकि अब उसके पाँव में बेड़ी डाल दी गई। इसका आशय तो यह था कि उसकी लेकर भागने की बान कम हो जावे; परन्तु अब वह रक्षा और शिक्षा के निमित्त भी नहीं दौड़ सकता। यद्यपि गवर्नमेंट का अभिप्राय सिवाय चोरी का माल लेकर भागने के और कामों से रोकने का नहीं था; परन्तु इन सब कामों का संबंध हाथ पाँव की स्वतंत्रता से है। जब तक हाथ पाँव की स्वतंत्रता न रोक ली जावे, तब तक चोरी की कुटेव दूर नहीं हो सकती। बहुधा मनुष्य कह देंगे कि गवर्नमेंट का अभिप्राय इन लतों को दूर करने का नहीं है और न बन्दी उस कुचाल को छोड़ता है, जिसके छुड़ाने के निमित्त उसे कारागार भेजा गया था; क्योंकि हम देखते हैं कि बहुत-से बन्दी कारागार से मुक्त होते ही चोरी आदिक उन्हीं पापों में पुनः प्रवृत्त होते हैं, जिनके दूर करने के लिये उनको दण्ड दिया गया था। इसका उत्तर यह है कि यद्यपि गवर्नमेंट हाथ और पावों को हथकड़ी और बेड़ी से बंद करके और देह को कारागार में बंद करके इस कुबान को मिटाने का प्रयत्न करती है, जिससे कि इस रोग की पूर्ण निवृत्ति हो जावे तथापि अपनी निर्बलता के कारण इस बुराई की जड़ को नहीं दूर कर सकती; क्योंकि सबसे प्रथम पाप की जड़ मनमें बैठती है तत्पश्चात् शरीर और इन्द्रियों से वह पाप किया जाता है। जब तक मन से उस पाप को न भुला दिया जाय, तब तक उसकी जड़ नहीं हट सकती। परन्तु मन से भुला देना मनुष्य

अथवा मानवी गवर्नमेंट की शक्ति से परे है अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिए कि मनुष्य कृत गवर्नमेंट पाप की जड़ को नहीं उखाड़ सकती। यही कारण है कि बंदी कारागार से आकर भी उन्हीं अपराधों को करते हैं जिनके दण्ड भोगने और जिनकी स्मृति भुलाने के लिये कारागृह में भेजे गये थे। परन्तु सर्व शक्तिमान् अपनी प्रजा को ऐसे कारागार में भेजते हैं कि जहाँ उसको विचार करने की भी शक्ति नहीं रहती, जिससे उनको पाप की लत ही भूल जाती है। मनुष्य शरीर तो आत्मा के लिये घर की भाँति ऐसा स्थान है, जहाँ पर कि वह अपने भले के लिये स्वतंत्रतापूर्वक कर्म कर सकता है। पशु योनि ऐसी है कि जहाँ आत्मा स्वतंत्रता-पूर्वक कर्म करना तो कहाँ विचार भी नहीं कर सकता; क्योंकि वहाँ पर मन के ऊपर तमोगुण की हथकड़ी लगाई जाती है, जिससे कि उसकी भ्रमण तथा विचार शक्ति कुछ कर ही नहीं सकती। यदि कारागार और नगर के अन्य दूसरे घरों के मनुष्यों को भिन्न प्रकार का समझें तो मनुष्य और पशु के आत्मा में भी भिन्नता हो सकती है और यदि दोनों दशाओं में मनुष्य योनि एक ही है तो मनुष्य और पशु का आत्मा भी एक ही प्रकार का है, जिस प्रकार संसार में मनुष्य पाप करने पर घर से पृथक् कर कारागार भेज दिये जाते हैं। इसी प्रकार परमात्मा के नियमानुसार मनुष्य, पापों की बान को दूर करने तथा उस कर्म का दण्ड भोगने के लिये, पशु योनि में भेज दिया जाता है। जिस प्रकार यहाँ पर पापों के अनुसार क़ैद दीवानी, क़ैद महज (साधारण) क़ैद बामुशक्कत और क़ैद तनहाई (सपरिश्रम तथा एकान्त कारावास) आदिक भिन्न-भिन्न प्रकार के दण्ड हैं, इसी प्रकार पापों के अनुसार पशुयोनि भी असंख्य प्रकार की हैं। जैसे कारागृह से मुक्त होकर बंदी घरों

को आते हैं और घरों में पाप करके कारागार को जाते हैं, इसी प्रकार जीव भी मनुष्य देह से पशु देह में और पशु देह से मनुष्य देह में कर्मानुसार आते-जाते रहते हैं। जिस प्रकार मृत्यु होने पर ही मनुष्य के इस (आने जाने के) क्रम का अन्त होता है अर्थात् मृत्यु से पूर्व मनुष्य स्वतंत्रता-पूर्वक करने की दशा में हो अथवा भोगने की अवस्था में हो अर्थात् घर में रहे अथवा कारागार में, दोनों से नहीं छूट सकता। इसी प्रकार जीव मोक्ष से पूर्व मनुष्य देह में हो, चाहे पशु शरीर में इनसे नहीं छूट सकता। मुक्ति ही इसकी समाप्ति करती है और इसी कारण मुक्ति का नाम 'अतिमृत्यु' रक्खा गया है। कतिपय मनुष्यों को यह संदेह होगा कि संसार में बंदी न्यून और स्वतंत्र अधिक हैं यदि इसी के अनुसार इसी मनुष्य और पशु को बंदी और स्वतंत्र जीव क्रमशः समझ लें तो मनुष्यों की संख्या पशुओं से अधिक होनी चाहिए; परन्तु संसार में पशु मनुष्यों की अपेक्षा अत्याधिक हैं। अतः यह उदाहरण यथार्थ (ठीक) नहीं। इसका उत्तर यह है कि जीव में नैसर्गिक रीति पर पापों के संस्कार अधिक हैं, इसी प्रकार मनुष्य भी पापी अधिक और धर्मात्मा थोड़े हैं। यदि गवर्नमेण्ट सर्वज्ञ होती तो वर्त्तमान मनुष्यों में सौ में से एक भी बड़ा कठिनता से स्वतंत्र दिखाई देता नहीं तो सबही बंदी होते; इस समय बंदी की संख्या न्यून होना गवर्नमेन्ट की पापों से अनभिज्ञता का परिणाम है नकि पापी लोगों की न्यूनता का।

पाप का सम्बन्ध जिसमें जीवात्मा स्वतंत्र समझा जाता है केवल विचार से है। जैसे किसी को हानि पहुँचाने का विचार करना ईश्वरीय नियमानुसार पाप है; परन्तु वर्त्तमान गवर्नमेण्ट को विचार का ज्ञान नहीं हो सकता यावत् वह विचार कार्य में परिणत न हो। तो यों कहिये कि सबसे अधिक और महान् पाप

का तो गवर्नमेण्ट दण्ड ही नहीं दे सकती। इस प्रकार के पापी तो गवर्नमेण्ट के दण्ड से पूर्णतया बचे रहते हैं। दूसरे बहुत से मनुष्य कर्म द्वारा पाप करके भी गवर्नमेण्ट के दण्ड से बचे रहते हैं, जैसे कि लाखों मनुष्य घूस लेते हैं; परन्तु उनमें से दण्ड पानेवाले उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। लाखों मनुष्य झूठी साक्षी देते हैं; परन्तु सौ पीछे एक भी कठिनाई से झूठी साक्षी देने का अपराधी समझा जाता है। इसी प्रकार और भी लाखों पाप होते हैं, जिनके अपराधी गवर्नमेण्ट तक समाचार न पहुँचने से दण्ड नहीं पाते अथवा घूस तथा झूठी साक्षी द्वारा बीच में ही छूट जाते हैं अथवा किसी क़ानूनी पेच से। यदि प्रत्येक पापी को दण्ड मिलता तो गवर्नमेण्ट के कारागृहों में नगरों से सहस्रों गुणा अधिक भीड़ होती। इस समय कारागारों में नगरों से थोड़े मनुष्य होना इस बात का प्रमाण नहीं कि पापी थोड़े हैं और धर्मात्मा अधिक वरन् इस बात का प्रमाण है कि जिस प्रकार गवर्नमेण्ट का मन पर अधिकार न होने के कारण पापों की जड़ नहीं उखड़ सकती, इसी प्रकार मन का हाल न जानने के कारण लाखों पापियों को दण्ड भी नहीं दे सकती : परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है उसके न्याय में न तो अज्ञान ही बाधा डालता है, न घूस काम करती है, न झूठी साक्षी से कोई पापी बच सकता है और न कानूनी पेच पापी की रक्षा कर सकते हैं। सुतराम् सर्व अपराधियों को दण्ड मिलता है, जिससे कि बन्दी अधिक स्वतंत्र-न्यून संख्या में होते हैं।

जहाँ तक आध्यात्मिक विद्या के पण्डितों के ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है, उनसे भी मनुष्य और पशु के आत्मा का एक ही होना सिद्ध होता है और जो मनुष्य आध्यात्मिक विद्या से अनभिज्ञ हैं, उनकी सम्मति इस विषय में मानने योग्य नहीं।

भारतवर्ष के ऋषि, बौद्धधर्म के विद्वान्, जैन धर्म के पण्डित और यूनान के दार्शनिक सब सहमत हैं—केवल क़ुरानी शिक्षा को (माननेवाले) जिनके ख़्याली मज़हब (कल्पित मत) में बुद्धि से काम लेना निषेध है, जो आध्यात्मिक विद्या से अनभिज्ञ हैं केवल तलवार के बल धर्म फैलाते रहे, अथवा ईसाई, पादरी गण जो अधिक संख्या में अध्यात्म-विद्या से शून्य ही दिखाई पड़ते हैं, जो अपने धार्मिक सिद्धान्तों को बुद्धि एवं प्रयोग द्वारा सिद्ध करने में असमर्थ हैं, विरुद्ध हैं। यदि इनकी पुस्तकों पर विचार किया जाय तो उनमें जीव का लक्षण तक नहीं। ऐसी दशा में जब कि यह लोग जीव का लक्षण करना भी न जानते हों, इनका मनुष्य और पशु के जीव को भिन्न-भिन्न अथवा एक ही प्रकार का मानना कोई अर्थ नहीं रखता। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में इस सिद्धान्त की पुष्टि में बहुत से प्रमाण दे दिये हैं। अतः इस ट्रैक्ट में शास्त्रीय प्रमाण नहीं दिये गये। जो महाशय प्रमाण देखना चाहें वे सत्यार्थ प्रकाश और वेद-भाष्य, भूमिका में देख सकते हैं अथवा पण्डित लेखराम ने जो 'सुबूतै तनासिख' लिखा है, उसमें भी प्रमाण लिखे हुए हैं। अब जिस प्रकार कारागार में रहनेवाला बंदी और घर में रहनेवाला गृहस्थी कहाता है, वास्तव में बंदी और गृहस्थी कोई दो भिन्न वस्तु नहीं हैं, वरन् एक ही मनुष्य के दो स्थानों में रहने के कारण दो भिन्न नाम हैं, इसी प्रकार मनुष्य और पशु सब जीव रखने के कारण जीवधारी अथवा 'हैवान' कहलाते हैं, केवल इतना ही अन्तर है कि मनुष्य 'हैवानेनातिक' अर्थात् बुद्धि और स्वतंत्रता से काम लेने वाला है और दूसरा हैवान मुतलक अर्थात् वह वाह्य साधनों से बुद्धि का कार्य नहीं कर सकता। मनुष्य विद्या द्वारा बुद्धि बढ़ा सकता है; परन्तु पशु जितना उनका अपना

ज्ञान है, उसी से काम ले सकते हैं और विद्या से ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति नहीं रखते। पशुओं को जितनी बातें सिखावें, वे उसको उसी प्रकार ग्रहण कर सकते हैं; क्योंकि यह हरक़त (क्रियायें) केवल उनके आत्मा तथा अवयवों से सम्बन्ध रखती हैं: परन्तु मनमें बंधन के कारण संस्कार न होने से वह उससे कोई दूसरा नतीजा नहीं निकाल सकते। इस लिये वह विद्या से शून्य रहते हैं। जो अन्तर एक मनुष्य के स्वतंत्र और बंदी होने में है, वही अन्तर मनुष्य और पशु के आत्मा में हो सकता है। मनुष्य और पशु योनि दो भिन्न स्थान हैं, जिनमें रहकर जीव स्वतंत्र और बंधन के भोग को भोगता है। जिस प्रकार बंदी होने से कोई मनुष्य जाति से पृथक् नहीं हो जाता तथा बंधन से फिर भी मुक्त हो सकता है और कारागार को जा सकता है। यह परिस्थिति का भेद है, जाति का कोई भेद नहीं। यही भेद मनुष्य और पशु के आत्मा में है। उनकी जाति एक ही है। जिस प्रकार किसी मनुष्य के हाथ न होने से वह दूसरा मनुष्य नहीं हो जाता केवल उसकी शक्ति में अन्तर हो जाता है। इसी प्रकार पशु के देह में प्रवेश करने से जीव दूसरा नहीं हो जाता, वरन् उसकी शक्ति में अन्तर पड़ जाता है। जो गुण स्वयं जीव के हैं वह मनुष्य और पशु दोनों में समान हैं और जो साधनों से उत्पन्न होते हैं उनमें अन्तर है। जिन वस्तुओं से अपने गुण एक हों वह एक जाति की कहाती हैं। आर्जी (नैमित्तिक) गुणों में से प्रत्येक के भिन्न गुण होने के कारण भिन्न होती हैं। मुख़्तसर मनुष्य और पशु दोनों में जीव एक ही प्रकार का है।

यज्ञ

प्रिय पाठकगण ! आजकल यज्ञ का अर्थ शास्त्र से अपरिचित होने के कारण बलिदान अथवा जीव हिंसा के लेने लग गये हैं और इन मनुष्यों से पूछा जाता है कि तुम यज्ञ का अर्थ हिंसा कहाँ से लाते हो ? उस समय वह वाममार्गियों की क्रिया और उनके बनाये अथवा ग्रंथों में मिलाये हुए वाक्य उपस्थित करते हैं, जिनमें कहीं केवल परिच्छेद और समास को ही बदल कर मनुष्यों को भ्रांति में डाला जाता है। अतः आज हम यज्ञ के विषय पर विचार करना चाहते हैं, जिससे सर्व-साधारण को इस सर्वोपयोगी कार्य की उत्तमता ज्ञात हो जावे। संसार में इसका प्रचार हो जावे और जो मनुष्य जैन बौद्धादि बिना समझे केवल वाममार्गियों की क्रिया तथा पुराणों की गप्पों के भरोसे पर इस सर्वोपयोगी काम की निंदा कर रहे हैं, वह अपनी भ्रांति को जान कर इसके प्रतिकूल होने के स्थान पर सहायक हो जावें। जो वेदों की निन्दा के कारण नास्तिक कहाते हैं, वे फिर वर्णाश्रम धर्म को मानकर आस्तिक हो जावें तथा संसार से फूट का झंडा उखाड़ कर प्रेम का झण्डा गड़ जावे। प्रिय पाठकों ! 'यज्ञ' शब्द यज धातु से निकला है, जिसका अर्थ देवपूजा, संगति करण और दान का है। आज कल जो मनुष्य यज्ञ का अर्थ बलिदान ले रहे हैं, वह केवल देवपूजा के लिये बलिदान करना इस शब्द का अर्थ बताते हैं और देवपूजा से स्वर्ग की प्राप्ति बताई जाती है। अब देखना यह है कि देवपूजा से स्वर्ग की प्राप्ति होती है या

नहीं तथा देव पूजा किसी पशु को बलिदान करने का नाम है, या क्या ।

हम जहाँ तक वैदिक ग्रंथों को देखते हैं तो 'स्वर्ग' सुख विशेष का नाम प्रतीत होता है, किसी स्थान विशेष का नहीं और सुख उस समय होता है जबकि दुःख का लेश न हो। अब संसार में सबसे महान् दुःख रोग, संक्रामक रोग, (मत विरोध) तथा आवश्यकता हैं और इनके निवृत्ति का यज्ञ एकमात्र साधन है। जैसा कि लिखा है—यज्ञ तीन प्रकार के पदार्थों से करना चाहिए जिनमें प्रथम पुष्टिकारक, दूसरी दुर्गन्धि निवारक और तीसरी रोग विनाशक औषधियाँ हों। पुष्टिकारक पदार्थ वर्षा का कारण होते हैं, सुगंधिकारक पदार्थ वायु और जल को शुद्ध करते हैं और रोग विनाशक औषधि यज्ञ में बैठनेवालों तथा समस्त संसार में से संक्रामक रोगों का निवारण करती हैं। प्रिय सुहृद-गण ! यज्ञ केवल महान् दुःखों को दूर करने का साधन है ; परन्तु आज कल मूर्खों ने यज्ञ को दूषित कर दिया है। बहुधा मनुष्य कहेंगे कि यज्ञ बलिदान का नाम है और जैन बाबा आत्मा-रामजी ने तो इस पर अधिक ज़ोर दिया है कि यज्ञ में हिंसा होती है ; परन्तु बाबाजी ने संहिताओं का तो कोई प्रमाण दिया नहीं, केवल इधर उधर के वाममार्गियों के ग्रंथों को लेकर अथवा राजा शिवप्रसाद जैनी आदिक के इतिहास का प्रमाण देकर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ; परन्तु बाबाजी का यह पुरुषार्थ निष्फल प्रतीत होता है, जबकि वेदों में यज्ञ (हिंसा) का निषेध पाया जाता है। देखो ऋग्वेद सायण भाष्य:—

"अग्नेयं यज्ञ मध्वरं विश्वतः परिभूरसि, स इद्देवेषु गच्छति ।"

प्रिय पाठकगण ! हमने आपको केवल दो मन्त्र और सायणाचार्य भाष्य में दिखा दिया कि यज्ञ में हिंसा करना महापाप है, इसके लिये हम आपको एक प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं, जिससे कि आप लोग समझ जावेंगे। आपने बहुधा रामायण को पढ़ा होगा और बहुतों ने रामलीला देखा होगा कि जिस समय विश्वामित्र के यज्ञ को राक्षस लोग विघ्न डालकर पूर्ण नहीं होने देते थे, उस समय विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रिय वीर थे तथापि हिंसा के भय से रामचन्द्र को सहायता के लिये बुलाने गये : क्योंकि वह जानते थे कि बिना क्रोध किये तो हिंसा हो नहीं सकती और क्रोध करना दीक्षित के लिये महापाप है, इसी कारण उन्होंने रामचन्द्र को बुलाया।

प्रिय पाठकगण ! जबकि यज्ञ में क्रोध करना भी महापाप गिना जाता है तो कौन मूर्ख कह सकता है कि यज्ञ में हिंसा होती है और आजकल जो वाममार्गी इस प्रकार के हिंसक यज्ञ करते हैं—यद्यपि वह हिंसा करते हैं ; परन्तु उनके संस्कारों में कुछ-कुछ चिह्न अब भी मिलते हैं—जैसाकि उनका इस प्रकार के यज्ञों को 'काम्य कर्म' बताना और प्रायश्चित करना जिस प्रकार कि विज्ञान भिक्षु अपने सांख्य भाष्य में लिखते हैं।

बहुत-से यज्ञों में देखा गया है कि पहिले तो लोगों ने पशुमेध यज्ञ किया और फिर प्रायश्चित किया और जब उनसे पूछा गया कि तुम ऐसा क्यों करते हो तो उत्तर दिया कि यह काम्य कर्म है और जहाँ गृह्य सूत्रों में यज्ञों का वर्णन है, वहाँ भी इस प्रकार के यज्ञों को काम्य कर्म ही बताया गया है। तात्पर्य्य यह कि पशु हिंसावाला यज्ञ अवैदिक है और यज्ञ सर्वदा हिंसा रहित होता है। आजकल जितने यज्ञ होते हैं, सबमें तो हिंसा होती नहीं। हाँ कहीं-कहीं होती है ; परन्तु इसके साथ ही वह लोग प्रायश्चित

करते हैं। यद्यपि इस प्रायश्चित से हिंसा का दोष दूर नहीं होता तथापि इतना अवश्य होता है कि समझदार मनुष्य यह समझ जाता है कि यह वेद विरुद्ध कार्य है ; क्योंकि वेदानुकूल कर्म का प्रायश्चित वैदिक मनुष्य कर ही नहीं सकते। कारण यह कि उनके धर्म में तो वेदों को छोड़कर और कोई प्रमाण ही नहीं माना जाता, जैसाकि महात्मा मनु कहते हैं:—

"अर्थ कामेषु सक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्म जिज्ञासमानानाम् प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥"

अर्थ—जिनका चित्त अर्थ और काम से हट गया है, उनके लिये धर्म का ज्ञान उचित है और धर्म के जानने के लिये परम प्रमाण श्रुति अर्थात् वेद है।

ऐसा ही महात्मा जैमिनि मुनि ने कहा है—

"चोदना लक्षणोर्थो धर्मः ॥"

अर्थात् "जिस कर्म के करने की वेद में प्रेरणा की गई हो वही धर्म कहाता है।" जब वैदिक लोगों का धर्म ही वेदानुकूल है तो यदि हिंसा को वह वेदानुकूल समझते तो किस प्रकार वेदानुकूल हिंसा का प्रायश्चित करते ? यज्ञ करनेवालों का प्रायश्चित करना भी हिंसा को वेद विरुद्ध ठहराता है और जहाँ लोग कहते हैं कि "वैदकीय हिंसा हिंसा नास्ति" इसका अर्थ यह है कि वेद में जो राजा को आज्ञा दी गई है कि वह दुष्ट, हिंसक, डाकू, आदि मनुष्यों तथा सिंह और बाराहादिक पशुओं को मारे तो राजा का मारना हिंसा नहीं कहाती। कारण कि राजा को उनका मारना अपने अर्थ अथवा हिंसा के विचार से नहीं बताया गया, वरन् दूसरों की रक्षा के लिये निर्बलों की बलवानों से रक्षा

करना राजा का धर्म है, इसलिये राजा को इस हिंसा का पाप नहीं लगता है।

प्रिय पाठकगण! यदि आप तनिक विचार करें कि आप क्या वस्तु हैं और धर्म क्या? पाप और पुण्य केवल मन की अशुभ वृत्तियों का नाम है; क्योंकि मन ही इस प्रकार के पाप करता है और मन ही इनका दण्ड पाता है। इसलिए लिखा है—

क्षुधापिपासा प्राणस्य शोक-मोहौ मनस्तथा। जरा मरणं शरीरस्य षडोर्मि रहिता शिवा॥

अर्थात् 'भूख और प्यास प्राणों का धर्म है' क्योंकि प्राणों के साथ जितने अग्नि और जल के परमाणु बाहर निकलते हैं, उतनी ही शरीर में न्यूनता होती है और इसी न्यूनता का नाम भूख और प्यास है। यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि जब घोर परिश्रम करते हैं तो प्राण वायु वेग से चलता है अतः परमाणु झटझट निकलते हैं और भूख अधिक लगती है और शिथिलता में प्राण कम चलते हैं, इसकी दशा नाड़ी से ज्ञात हो जाती है। दूसरे हर्ष और शोक यह मन में होते हैं; क्योंकि मन किसी दूसरे विचार में लगा हो तो हर्ष और शोकजनक पदार्थों से संबंध होने पर भी हर्ष और शोक नहीं होते और बूढ़ा होना और मरना यह शरीर का धर्म है अर्थात् जब शरीर से जीवात्मा निकल गया तो मृत्यु हो गई और पाप तथा पुण्य का करना भी मन की वृत्ति पर निर्भर हैं, जब तक किसी का इरादा (निश्चय-विचार) नहीं, उस समय तक वह उस कर्म का उत्तरदाता नहीं।

बहुत से जैन लोग यह कहते हैं कि यज्ञ करने में बहुधा जीवों का नाश हो जाता है, जैसे कोई जीव लकड़ी में है, कोई सामग्री में और कोई वायु में से आ गिरता है। अतः यज्ञ से हिंसा

होती है ; परंतु यह ठीक नहीं क्योंकि मनुष्य बीमारी से मर जाते हैं, वह हिंसा किसको लगती है । क्या जो वैद्य औषधि देता है वह इस पाप का अपराधी समझा जाता है ? कदापि नहीं । इसी प्रकार जो लोग यज्ञ करते हैं वे संसार के उपकार के लिये करते हैं, उनका भाव किसी को दुःख पहुँचाने का नहीं होता । हाँ, यदि कोई जीव यज्ञ के कारण मर जावे तो उसका यज्ञ ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सामग्री और लकड़ी भले प्रकार शुद्ध करने और देखने की आज्ञा वेद ने स्वयं देदी है । इस कारण जो इस आज्ञा की उपेक्षा करता है, वह इस अवहेलना का अपराधी है ; परंतु हिंसा करने का अपराधी नहीं ।

प्रिय पाठकगण ! बहुत से जैनी यह कहते हैं कि वेदों में यज्ञ में हिंसा करने की विधि लिखी है । जब उनसे पूछते हैं कि कहाँ लिखा है तो कहते है कि यह वेद की श्रुति है ; परंतु जब इस श्रुति की खोज की जाती है तो वेदों में तो इसका पता नहीं लगता, हाँ उन सूत्रों में जो वाममार्ग के पीछे प्रकट हुए अथवा जिनमें बाममार्ग की अधिक मिलावट है, पाई जाती है । इसी प्रकार और बहुत से तैत्तरीय शाखा तैत्तरीय आरण्यक और ब्राह्मण के प्रमाण बाबा आत्माराम जी ने लिखे हैं और अन्य जैन भी इन्हीं ग्रन्थों में से प्रमाण देकर यज्ञ में हिंसा को सिद्ध करना चाहते हैं ; परन्तु जहाँ तक विचार किया जाता है, उनका अन्वेषण इतना निर्बल प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी वेद का भाष्य न तो स्वयं देखा और न किसी से सुना वरन् केवल ब्राह्मणों के कहने पर ही मान लिया कि यह तैत्तरीय शाखा आदिक वेद हैं । अन्यथा जब महीधराचार्य अपनी यजुर्वेद भाष्य की भूमिका में तैत्तरीय शाखा की उत्पत्ति याज्ञवल्क्य के समय में बताते हैं और याज्ञ-वल्क्य व्यास जी महाराज के चेला वैशम्पायन के शिष्य हैं,

जिनका समय महाभारत के लगभग सौ वर्ष पश्चात् प्रतीत होता है। ऐसी दशा में तैत्तरीय शाखा के प्राचीन न होने के कारण उसके बताये हुए यज्ञों का भी अभाव ठहरता है और तैत्तरीय आरण्यक एवं वह सूत्र जो आज श्रौत सूत्र कहे जाते हैं, जिनमें तैत्तरीय शाखा के बहुत-से प्रमाण विद्यमान हैं, विद्यमान न थे और जितने प्रमाण बाबा आत्मारामजी ने यज्ञ में हिंसा दिखाने के लिये दिये हैं, वे सब उन्हीं ग्रन्थों के हैं और कहीं आत्मारामजी ने चाहे तो संस्कृत विद्या की न्यूनता के कारण चाहे पक्षपात से हो अर्थ का अनर्थ किया है; क्योंकि संस्कृत विद्या इतनी अगाध एवं गूढ़ अर्थवाली है कि तनिक से पदच्छेद अथवा समास के बदलने से आशय सैकड़ों कोस दूर चला जाता है—जैसे किसी ने कहा है कि:—

"मद्यर्चि परमां गतिम्" ॥

अर्थात्—'मेरी पूजा करनेवाला परम गति को जाता है।' अब दूसरे ने खींचकर पदच्छेद ऐसा किया:—

मद्याजी परमां गतिम्

अर्थात्—"मदिरा पीनेवाला, और बकरा खानेवाला परम गति को जाता है।"

प्रिय पाठकगण! कतिपय मनुष्य यह कहते हैं कि यज्ञ से देव पूजा किस प्रकार हो सकती है: क्योंकि अग्नि आदिक जड़ पदार्थों को प्रसन्न करने के लिये घृत और मेवा आदिक का डालना व्यर्थ है। परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि जड़ पदार्थों पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है। यदि जड़ पदार्थ प्रसन्न न हों तो मनुष्य का जीवन एक भार हो जावे। उदाहरणार्थ जिस नगर का जल उत्तम न हो, वहाँ रहने में प्रत्येक मनुष्य को कठिनाई होती

है। जहाँ की वायु में रोग हो वहाँ तो कोई रहना ही नहीं चाहता। आपने महामारी और बम्बई के समाचारों से जान लिया होगा कि कोई नहीं कह सकता कि 'जल वायु' आदि जड़ पदार्थों को प्रसन्न किये बिना हम सुख प्राप्त कर सकते हैं, कतिपय मित्र कहेंगे कि यह पदार्थ जड़ होकर प्रसन्न और अप्रसन्न कैसे हो सकते हैं? परन्तु क्या जड़ का अर्थ अप्रसन्न रहने का है, जब कोई वस्तु हमारे अनुकूल होती है, तब हम उसे प्रसन्न कहते हैं, जैसे सुगन्धि। क्या गन्ध में प्रसन्न का गुण है? नितान्त नहीं, वरन् हमारे अनुकूल होने से ही प्रसन्न कहाती है, इसी प्रकार और बहुत से उदाहरण हैं, जहाँ पदार्थों के साथ हम प्रसन्नता का योग करते हैं।

प्रिय पाठकगण! यज्ञ से बढ़कर संसार में कोई उपकारक कर्म दूसरा नहीं, क्योंकि जलवायु की शुद्धि बिना जिससे प्राणियों को कष्ट होता है, उससे ही बचाने का नाम यज्ञ है। जब भारतवर्ष में यज्ञ होते थे, तब कभी विशूचिका आदि रोगों का पता भी न था, परन्तु जबसे वाममार्गियों के हिंसक यज्ञों ने यज्ञ जैसे उत्तम कर्म को कलंकित कर दिया, तभी से यहाँ अकाल, विशूचिका और प्लेग (महामारी) आदिक नाना प्रकार के संक्रामक रोग आ गये, जिससे प्राणी मात्र को दुःख हो रहा है।

यद्यपि गवर्नमेण्ट स्वच्छता आदिक अनेक प्रकार के साधनों से इन रोगों के रोकने का प्रयत्न कर रही है; परन्तु जब तक आन्तरिक स्वच्छता अर्थात् अन्न, जल और वायु की पवित्रता न हो, उस समय तक उनका नाश होना कठिन ही प्रतीत होता है। सम्पूर्ण अन्नों में मैला खाद डाला जाता है, जिससे भोजन अस्वच्छ हो रहा है, समस्त नदियों में वस्त्र धोने, गन्दे नाले मिलने एवं पृथ्वी में मृतकों को गाड़ने से पृथ्वी का जल अस्वच्छ हो

गया है और मिट्टी के तेल जैसा दुर्गंधकारक तेल जलाकर उसके धुएँ द्वारा सारे वायु मण्डल को दुर्गंधित कर दिया है, भारतवर्ष से सर्व उत्तम पदार्थ पृथक् कर दिये गये हैं, ऐसी दशा में यदि रोग न फैलें तो बनानेवाले के सम्पूर्ण नियम निकम्मे हो जावें।

प्रिय पाठकगण ! यावत् भारतवर्ष में यज्ञ का प्रचार था, उस समय तक अग्नि, वायु और जल आदिक प्रत्येक पदार्थ मनुष्यों के अनुकूल बना रहता था, इस यज्ञ के भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न नाम हैं, जैसे—पुत्रेष्टि, चातुर मास, वर्ष पूर्ण आदिक नाना प्रकार के यज्ञों के बहुत से लाभ समझे गये हैं, जैसे किसी के पुत्र उत्पन्न न हुआ तो उसके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ की आवश्यकता है और प्रत्येक यज्ञ के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री नियत है, जिस प्रकार कि प्रत्येक रोग के लिये भिन्न-भिन्न औषधियाँ होती हैं।

आजकल जो बहुधा यज्ञों में सफलता नहीं होती, उसका बड़ा भारी कारण यज्ञों की सामग्री का अज्ञान है, अन्यथा यह संभव नहीं था कि जिस कार्य के निमित्त यज्ञ किया जावे, वह कार्य पूर्ण न हो।

जिस समय महाराजा दशरथ के संतान नहीं होती थी, उस समय पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया है और उस यज्ञ का प्रसाद राजा की रानियों ने खाया तो चार पुत्र उत्पन्न हुए। आप अचम्भा करेंगे कि प्राकृतिक नियम के विरुद्ध किस प्रकार का बखेड़ा उपस्थिति कर दिया ; परन्तु मित्रो ! यह बात सत्य और प्राकृतिक नियम के ठीक अनुकूल है ; क्योंकि यदि पुरुष में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति नहीं, तो उसको यज्ञ में बैठाया जाता है और यदि स्त्री पुरुष दोनों में नहीं तो दोनों मिलकर यज्ञ करते हैं और

ग्यारह दिन तक उन औषधियों के परमाणु, जिनसे यज्ञ किया जाता है, सूक्ष्म होकर प्राणवायु के द्वारा उनके शरीर में प्रवेश करते हैं और अग्नि के सन्मुख बैठने से बुरे परमाणु पसीने की राह निकलते रहते हैं, जिससे ग्यारह दिन में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है, इसी प्रकार वर्षा आदिक के निमित्त यज्ञ किये जाते थे, मूर्खों ने यज्ञ की विद्या को न जानकर इस पर आक्षेप किये हैं ; परन्तु यथार्थ तथा ज्ञान पूर्ण एक भी नहीं।

प्रिय पाठकगण ! भारतवर्ष में जितने विद्वान् हुए, प्रत्येक ने यज्ञ के ऊपर जोर दिया था। पारसियों की आतिशपरस्ती (अग्नि पूजा) तथा यहूदियों की सोखनी कुर्बानियाँ इस यज्ञ को बिगाड़कर बनाई गई हैं, जिससे पता चलता है कि एक समय समस्त भूमण्डल यज्ञ को अपना धर्म समझता था ; परन्तु जिस समय से वाममार्ग चला और उन्होंने हिंसक यज्ञ आरम्भ किये तो संसार में यज्ञों की निंदा फैल गई और मनुष्य इस सर्वोपयोगी कार्य से पृथक् हो गये। जिस प्रकार दही एक उत्तम पदार्थ है ; परन्तु जिस समय ताम्र पात्र में डाल दिया जावे तो वही, जिसे थोड़े समय पूर्व प्रत्येक मनुष्य खाना चाहता था, अब विष समझकर कोई खाना नहीं चाहता और प्रत्येक को उससे घृणा हो जाती है। यही दशा यज्ञ की है कि एक सर्व सुखद कार्य जिससे अवसर पर वर्षा, सन्तानोत्पत्ति और जल-वायु की शुद्धि तथा रोगों की चिकित्सा होती थी, आज सब लोग उससे पृथक् होकर दुःख उठावें।

प्यारे आर्यगण ! यदि अब भी आप सुख चाहते हैं तो वेद विद्या को प्राप्त करके, यज्ञ के विषय को स्पष्ट करके उसका प्रचार करो, जिससे भारतवर्ष, नहीं-नहीं सब के दुःख दूर हों और संसार में सुख और शान्ति फैल जावे।

देह ब्रह्माण्ड का नक़शा है

यदि संसार में ध्यानपूर्वक विचार करें तो सम्पूर्ण वस्तु तीन के अन्तर्गत दिखाई पड़ती हैं। प्रथम वह जिसे सुख दुःख प्रतीत होता है, दूसरी जो सुख का कारण है और तीसरी जो दुःख का कारण है। अब सुख और दुःख दो विरोधी गुण हैं, जो कि एक ही गुणी में नहीं हो सकते। इसलिये यदि सुख और दुःख अनुभव करने वाले जीवात्मा का गुण सुख माना जावे तो सुख का नाश किसी दशा में नहीं हो सकता, जिस समय तक कि जीवात्मा का नाश न हो। यहाँ प्रतिपक्षी प्रश्न करता है कि जिस प्रकार जल का गुण शीतलता है; परन्तु अग्नि के सम्पर्क से जल उष्णता को प्राप्त होजाता है, इसी प्रकार जीवात्मा स्वयं सुख स्वरूप है; परन्तु माया के सम्पर्क से दुःखी होजाता है। जिस प्रकार अग्नि की उष्णता जल की शीतलता को ढाँप लेती है, इसी प्रकार माया की परतंत्रता जो दुःख स्वरूप है, जीवात्मा के आनन्द को ढाँप लेती है, जिससे जीव अपने को दुःखी प्रतीत करता है। परन्तु प्रतिपक्षी का यह दृष्टांत समूल मिथ्या है; क्योंकि आवरण दो द्रव्यों के बीच में होता है, गुण और गुणी के बीच में नहीं होता। उदाहरणार्थ जल एक द्रव्य है, जिसका गुण शीतलता है और त्वचा एक दूसरा द्रव्य है, जिसे शीतलता तथा उष्णता का ज्ञान होता है। ऐसी दशा में अग्नि का आवरण त्वचा और जल के बीच में हो सकता है; परन्तु जब सुख द्रव्य नहीं वरन् जीव का गुण है तो जीव और सुख के बीच में माया का आवरण आना असम्भव है। दूसरे नैमित्तिक गुण सूक्ष्म पदार्थ

का स्थूल पदार्थ में आया करता है, अग्नि जल से सूक्ष्म है, अतः अग्नि की उष्णता जल में प्रतीत होती है ; परंतु माया अर्थात् प्रकृति जीव की अपेक्षा स्थूल है, अतः न तो वह जीव में आ सकती है और न जीव और सुख के बीच में आवरण हो सकती है। सुतराम् जीवात्मा स्वयं सुख रहित है और प्रकृति परतंत्र अर्थात् दुःख स्वरूप है और परमात्मा सुख स्वरूप है । जब जीव प्रकृति की उपासना करता है, जैसा कि जागृति अवस्था में नित्य देखता है, तभी अपने को दुःखी पाता है और जब परमात्मा की उपासना करता है, तब सुख का अनुभव करता है, जैसा कि समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति अवस्था में होता है। प्रकृति के बने हुए दो शरीर हैं, जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर के नाम से प्रसिद्ध हैं, तीसरी प्रकृति स्वयं कारण शरीर कहाती है। इन तीनों शरीरों के भीतर दो पुरुष अर्थात् जीव और ब्रह्म रहते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का निवास स्थान है और यह शरीर जो जगत् का नक़्शा (चित्र) है, जीव के काम करने का स्थान है। जिस प्रकार जीव इस सम्पूर्ण शरीर को नियमपूर्वक चलाता है, उसी प्रकार ब्रह्म समस्त संसार को जितनी विद्याएँ जगत् में हैं, वह सम्पूर्ण इस शरीर में सूक्ष्म रूप से हैं। इसी कारण योगी समाधि द्वारा इस शरीर के भीतर सब विद्याओं को देखता है। महर्षि कपिलजी ने इस नक़्शे को इस सूत्र में दिखाया है:—

सत्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्यु, भयमिन्द्रियं, पञ्च तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि, पुरुष इति पंच विंशतिर्गणाः। सां० ॥ १ । ६१

अर्थ—सत् अर्थात् प्रकाश स्वरूप अर्थात् अग्नि रज जो न

प्रकाश करे और न ढाँपे अर्थात् जल वायु, आकाश, काल और दिशा और तम जो ढाँपे अर्थात् पृथ्वी इन सब की कारण दशा को प्रकृति अर्थात् कारण शरीर कहते हैं। उस दशा का नाम प्रकृति इसलिये है कि कारण अवस्था में उनमें विरोध नहीं प्रतीत होता केवल मिश्रित अवस्था में एक दूसरे के नाशक होते हैं। जिस प्रकार अब पृथ्वी प्रकाश को ढाँपती है। परन्तु ऐसी परमाणु दशा में नहीं होती। उस कारण रूप प्रकृति से स्थूल महत्तत्त्व अर्थात् मन बनता है। बहुत से मनुष्य महत्तत्त्व का अर्थ बुद्धि करते हैं; परन्तु यह समूल असत्य है, क्योंकि महत्तत्त्व द्रव्य है बुद्धि गुण है। महत्त्व का अर्थ बुद्धि करने से शास्त्रों में विरोध पैदा करने के अतिरिक्त सांख्य की व्यवस्था भी ठीक नहीं हो सकती। क्योंकि सांख्यकार स्वयं महत् का अर्थ मन करते हैं। देखो सांख्य दर्शन अध्याय १ सूत्र ७१:—

"महदाख्य माद्यं कार्यं तन्मनः" ॥

अर्थ—"महत् नाम प्रकृति का पहिला कार्य मन है" यद्यपि विज्ञानभिक्षु आदिक ने यहाँ भी मन का अर्थ बुद्धि ही किया है, जो कदापि सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि बुद्धि गुण है, वह प्रकृति का कार्य नहीं हो सकती। प्रकृति का कार्य द्रव्य होगा और मन द्रव्य है। अतः मन का अर्थ खेंचतान कर बुद्धि करना यथार्थ नहीं, बहुधा मनुष्य कहेंगे कि यद्यपि न्याय और वैशेषिक शास्त्र की सम्मति में बुद्धि गुण है तथापि कपिल मुनि ने उसे द्रव्य माना हो तो तुम क्या कहोगे ? ऐसा कहनेवाले सांख्य शास्त्र से नितान्त अनभिज्ञ हैं; क्योंकि सांख्य में भी बुद्धि को गुण बताया है।

अध्यवसायो बुद्धिः ॥ सां० २ । १३

अर्थ—"अर्थात् निश्चयात्मक ज्ञान का नाम बुद्धि है" साथ ही बुद्धि को द्रव्य मानने से सांख्य शास्त्र की सम्पूर्ण व्यवस्था ही बिगड़ जाती है, इसको पूर्णतया इस ट्रैक्ट में दिखा नहीं सकते, क्योंकि पचासों सूत्रों में गड़बड़ मचेगी ; परन्तु थोड़ा आगे वर्णन करेंगे। मन से अहङ्कार उत्पन्न हुआ और अहङ्कार से पाँच तन्मात्रा अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इन गुणों के गुणी पृथक् हो गये और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मनेन्द्रियाँ यह सब सत्रह मिलकर अर्थात मन, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रा और दस इंद्रियाँ सूक्ष्म शरीर अथवा लिङ्ग शरीर कहाता है।

यदि बुद्धि को द्रव्य मानकर लिङ्ग शरीर में सम्मिलित किया जावे तो लिङ्ग शरीर सत्रह के बदले अठारह का हो जायगा ; परंतु १८ वस्तुओं के बने हुए का नाम (लिङ्ग) शरीर किसी आचार्य ने नहीं माना और कपिल मुनिजी के तो सर्वथा विरुद्ध है ; क्योंकि उन्होंने स्वयं लिखा है:—

"सप्त दशैकं लिङ्गम्" ॥ सां० ३ । ९

अर्थ—"सत्रह वस्तुओं के संघात से बने हुए का नाम लिङ्ग शरीर है।"

आर्य लोग कहेंगे जब कि सत्यार्थ-प्रकाश में भी महत् का अर्थ बुद्धि किया है तो तुम्हारी बात को कैसे मान लेवें ? परंतु ऐसे आर्य पुरुष वही होंगे, जिन्होंने ऋषि दयानंद की पुस्तकों के संबंध में खोज नहीं की। स्वामी दयानंद की पुस्तकों में भीमसेन आदिक पण्डितों की कृपा से जितनी अशुद्धियाँ हुई हैं, जिनको ऋषि दयानंद ने छपी हुई दशा में देखा भी नहीं। पहिला सत्यार्थ-प्रकाश जो स्वामीजी के जीवन काल में छपा, उसमें बहुत कुछ गड़बड़ हुई, जिसकी विज्ञप्ति उन्होंने स्वयं

यजुर्वेद भाष्य के प्रथम अङ्क में छाप दी थी और दूसरी बार सत्यार्थ-प्रकाश के प्रेस से निकलने के बहुत दिन पूर्व स्वामीजी का परलोक गमन हो चुका था, इसलिए उनका अशुद्धि-पत्र वह न बना सके और पंडित जनों के शास्त्रों को विचारे हुए न होने के कारण सूत्रों का अनुवाद वैसा ही कर दिया जैसा कि प्राचीन टीकाओं में लिखा हुआ था; क्योंकि स्वामीजी के विचारों को जाननेवाला मनुष्य यह कभी नहीं मान सकता कि स्वामी दयानंद जीव और ब्रह्म को एक माननेवाले हों; परंतु इस सूत्र के अनुवाद से एक ही सिद्ध होते हैं। जैसा कि लिखा है कि पचीसवाँ पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है क्योंकि सांख्य ने २५ पदार्थ माने हैं, उनमें से १ प्रकृति कारण शरीर, १७ का लिङ्ग शरीर, ५ का (पाँच भूतों) का स्थूल शरीर, यह सब मिलकर २३ होते हैं। हाँ पुरुष में जीव और ब्रह्म लेने से पूरे पच्चीस हो जाते हैं। परन्तु बुद्धि को जोड़ने से छब्बीस हो जाते हैं अन्यथा जीव और ब्रह्म को एक पदार्थ मानना पड़ता है। बहुधा मनुष्य कहेंगे कि पुरुष शब्द का एक वचन क्यों आया है? इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष शब्द के दो अर्थ हैं, एक जीव दूसरा ब्रह्म। अब जीव और ब्रह्म एक जाति के नहीं जिनको द्विवचन लिखते, वरन् जब पुरुष का अर्थ जीव किया तब वह जाति को ध्यान में रखते हुए एक ही हैं और जब ब्रह्म किया तो वह स्वरूप से एक था। अतः दोनों के लिए एक वचन ही उचित था। यदि महर्षि कपिल एक ही पुरुष मानने वाले होते तो वह पुरुष को बहुत न मानते, जैसा कि उन्होंने लिखा है:—

"जन्मादि व्यवस्थातः पूरुष बहुत्वम् ॥ सा० १।१४६

अर्थ—कोई पुरुष जन्म ले रहा है, कोई मर रहा है, कोई

दुख भोग रहा है, कोई सुख और कोई बंधन में फँसा हुआ है और कोई मुक्त, इसलिए पुरुष अर्थात् जीव बहुत हैं। बहुधा मनुष्य कहते हैं कि जीव और ब्रह्म को यदि जाति से एक वचन मान लें तो क्या हानि है? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो ब्रह्म में जाति का प्रयोग नहीं हो सकता क्योंकि जाति बहुत वस्तुओं में रहा करती है एक में नहीं, ब्रह्म एक है अब जब ब्रह्म और जीव भिन्न-भिन्न गुणवाले हैं तो उनको एक जाति किस प्रकार कह सकते हैं? शास्त्रों के टीकाकारों की यह दशा है कि एक चूक जावे तो सब चूकते चले जाते हैं, उसकी चूक को सुधारते नहीं इस अशुद्धि के जन्मदाता सांख्य तत्त्व कौमुदीकार थे जिसने कि उस श्रुति का पाठ जिसमे तीन अनादि पदार्थ सिद्ध होते हैं, बदल कर ऐसा कर दिया, जिससे पुरुष और प्रकृति दो ही अनादि सिद्ध हों और इसीलिये उसको ब्रह्म के स्थान पर एक और गढ़ा हुआ पदार्थ बुद्धि घुसेड़ना पड़ा। उसी की कृपा से बहुधा मनुष्य महर्षि कपिल को नास्तिक बताते थे। विज्ञानभिक्षु आदि समस्त टीकाकारों ने उसका अनुकरण किया और जहाँ कोई ऐसा वाक्य मिला जिससे इनका अर्थ अशुद्ध दीखे, उस पद का अर्थ भी बदल दिया। यद्यपि सूत्रकार ने स्पष्टतया प्रकृति का प्रथम कार्य महत् अर्थात् मन बताया था; परंतु विज्ञानभिक्षु ने मन का अर्थ भी बुद्धि कर दिया। क्या सूत्रकार को बुद्धि शब्द लिखना नहीं आता था कि वह बुद्धि के स्थान पर मन लिखते। सूत्रकार तो बुद्धि को द्रव्य नहीं मानते, वरन् गुण बताते थे परंतु प्रकृति का कार्य होने से बुद्धि द्रव्य होती, अतः उन्होंने मन जो कि द्रव्य था स्पष्टतया कहा; परंतु किसी ने नास्तिकपन से बुद्धि को द्रव्य बनाकर ब्रह्म को उड़ाया और अन्य गूढ़ विचार न करनेवालों ने उन्हीं का अनुकरण किया, यहाँ तक कि स्वामी

हरिप्रसाद ने जो वैदिक वृत्ति नाम करके एक टीका लिखी है, उसमें भी इन परम्परा से चली आनेवाली अशुद्धियों का कोई विचार नहीं किया गया। हमारी समझ में जब तक आगे पीछे के सूत्रों की व्यवस्था ठीक न कर ली जावे, तब तक किसी को शास्त्रों की वृत्ति लिखने का अधिकार नहीं। हमने तो स्वामीजी का ऊपर नाम (और उसके) के साथ उपाधि देखकर ही इस वृत्ति की अवस्था को समझ लिया था; क्योंकि उनको वह उपाधि किसी सभा सोसाइटी की ओर से मिली हुई नहीं वास्तव में इस सूत्र में ऋषि ने तीन शरीर जो प्रकृति की दशा हैं और दो पुरुष बता कर इस देह को ब्रह्माण्ड का चित्र बताया है। प्रकृति का कारण शरीर मन अहंकार रूप, रस, गंध, स्पर्श शब्द और इनके साधन नेत्र, नासिका, श्रवण रसना और त्वचा पाँच ज्ञानेन्द्रिय यथा हाथ पाँव जिह्वा, उपस्थ और गुदा यह पाँच कर्मेन्द्रिय यह सब १७ वस्तु मिलकर 'लिंग शरीर' कहा जाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश यह स्थूल शरीर, देह में रहनेवाला जीव और समस्त ब्रह्माण्ड के शरीर में रहनेवाला ईश्वर है। यद्यपि इस अवसर पर और भी विशेष लिखने की आवश्यकता थी परंतु यह पुस्तक छोटी और विचार अधिक होने के कारण संक्षेप से ही वर्णन किया गया है इस न्यूनता को हमारे पाठकगण स्वयं विचार कर पूरा कर लें अथवा हमें यदि कभी अवसर मिला तो बड़ी पुस्तक के रूप में उपस्थित करेंगे।

ईश्वर का भय

ईशा वास्य मिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधःकस्य स्विद्धनम् ॥ ६
यजु० अ० ४ मं० ६

अर्थ—यह जो सम्पूर्ण संसार दृष्टिगोचर हो रहा है अथवा जो भिन्न-भिन्न उसके अवयव दिखाई देते हैं। यह सब ईश्वर के निवास स्थान हैं और जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञाओं को भूल जाते हैं, वे सब दुःखों को भोगते हैं। इसलिये हे जीव! तू किसी का धन लेने की इच्छा मत कर।

यह कैसा उत्तम उपदेश है कि जिसके समझने से मनुष्य सर्वदा पापों से बचकर सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि मनुष्य में डरने की स्वाभाविक टेव है। जब मनुष्य कोई पाप करने लगता है तो उस समय उसके चित्त में यह भय उत्पन्न होता है कि इस पाप को करते हुए कोई देख न लेवे और इसी कारण वह सर्वदा पाप को छिपाकर करने का प्रयत्न करता है, कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसके हृदय में पाप करते भय न उपजता हो, इसी भय के कारण वह घर के भीतर जाकर, किवाड़ बन्द करके और द्वार पर अपने सहयोगियों को खड़ा करके पाप करता है। यदि मनुष्य को यह ज्ञान होता कि मैं पाप करके किसी प्रकार भी दण्ड से नहीं बच सकता तो वह कदापि पाप न करता; परन्तु मनुष्यों के हृदय में धार्मिक शिक्षा न होने के कारण परमात्मा की सत्ता एवं सर्व व्यापकता का ज्ञान तो होता ही नहीं,

वह केवल संसारी भय से बचने का प्रयत्न करते हैं। वर्त्तमान समय में सबसे प्रथम तो गवर्नमेण्ट का भय है। जिसको वह इस प्रकार निवृत्त कर देते हैं कि प्रथम तो इस बन्द घर में कोई देखता ही नहीं और यदि कोई मनुष्य देख भी ले और वह गवर्नमेण्ट का कर्मचारी हो तो उसे कुछ घूस देदी जायगी, इससे भी काम न चला तो झूठे साक्षी उपस्थित कर दिये जावेंगे, जिनसे कि न्यायालय से अवश्यमेव छोड़ दिया जाऊँगा, यदि इसमें भी सफलता न हुई तो वकील (प्राड विवाक) करके कानूनी कमजोरियों से (नियम त्रुटियाँ) जीत जाऊँगा और यदि इन बातों से काम न चला तो न्यायाधीशों को पूरी घूस देकर बच जाऊँगा, यह विचार हैं। जिनके कारण मनुष्य गवर्नमेण्ट का भय होते हुए भी पाप करना नहीं छोड़ते। दूसरा भय जाति का है, वह तो आजकल जाता ही रहा। कारण यह कि जाति में ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े देखने में आवेंगे, जो किसी न किसी पाप के अपराधी न हों, अब जब कोई मनुष्य किसी पापी को जाति (सभा) के समक्ष में उपस्थित करने लगता है तो यह विचार तुरन्त ही उसके मन में आ पहुँचता है कि वह भी मेरे दोष अवश्य प्रकट करेगा। सुतराम् वह अपने विचार को छोड़ देता है। तीसरा भय लोक लाज का है सो इसका तो आज-कल चिह्न भी नहीं दीखता। जब देश की यह दशा है तो पापों का बढ़ना आवश्यक ही है और जब पाप अधिक होने लगे तो दुर्भिक्ष, प्लेग, भूकम्प तथा लड़ाई झगड़े आपत्तियों का आना अत्यावश्यकीय है, जिसकी रोक किसी मनुष्य के हाथ में नहीं, न गवर्नमेण्ट इसको रोक सकती है। और न जाति इसका कोई उपाय कर सकती है, ऐसी अवस्था में बिना धार्मिक शिक्षा दिये मनुष्यों का पापों को छोड़ना बहुत ही कठिन है; क्योंकि प्राचीन काल में जब मनुष्य

ईश्वर से डरते थे तो उस समय पाप संसार में बहुत ही थोड़ा दिखाई देता था । जबसे वेदों की शिक्षा बन्द हो गई और जनता नास्तिक हो गई जो ईश्वर को स्थानापन्न मानने लगी । तो उस समय से मनुष्यों को ईश्वर का भय न रहा, वेदों की पवित्र शिक्षा के समय में पाप करना, अति दुष्कर जान पड़ता था । क्योंकि जब मनुष्य यह जानता है कि मेरे पापों का दण्ड देने-वाला मेरे सम्मुख विद्यमान है, जिसको मैं किसी प्रकार की घूस से प्रसन्न नहीं कर सकता । न झूठे साक्षियों से छुटकारा होगा, क्योंकि स्वयं देख रहा है साक्षी की कैसे मानेगा, न वकील से काम चलेगा, क्योंकि वह सर्वज्ञ है । अतः किसी प्रकार धोखे में नहीं आ सकता और न उसके राज्य से भागकर कहीं जा सकता है, वह तुरंत पापों को भय करके छोड़ देता है ; परंतु इतना ही नहीं, एक और भी बुराई है कि जो मनुष्य को साहस दिलाती है और जिसके कारण वह पाप से नहीं बचता, वह जानता है कि जब पुलिस पकड़ने आवेगी तो उसके मुक़ाबले में सफलता की भी आशा है और बहुधा राजा, महाराजा और नवाब आदिक तो अपने को पुलिस के भय से रहित समझते हैं ; परंतु जब मनुष्य को यह विश्वास हो जावे कि जिस शक्ति के हाथों में मेरे पापों का फल देना है, वह इतनी बलशाली है कि संसार के बड़े से बड़े महाराजा लाखों सैना, हाथी घोड़े, खड्ग, भुशुण्डि, तोप और डिनामेट के गोले आदिक रखते हुए उसके वारंट मौत (मृत्यु संदेश) को एक मिनट के लिये भी नहीं रोक सकते, क्योंकि यह समस्त अस्त्र-शस्त्रादि तो बाह्य आक्रमण के रोकने के निमित्त हैं ; परंतु पापों का दण्ड देनेवाली शक्ति तो भीतर विद्य-मान है, चाहे कितना ही बड़ा दुर्ग बना लिया जाय केवल वह बाह्य शक्तियों से बचने को लाभकारी होगा, आन्तरिक

शक्ति से बचने के लिये निकम्मा है। चाहे जितने सहायक हों वह भी देहधारी नहीं बचा सकते हैं, चाहे जितने शस्त्रास्त्र हों, वह भी देहधारी पर ही चलाये जा सकते हैं।

अब जिस शक्ति से पाप करके हम किसी प्रकार नहीं बच सकते और न कोई सांसारिक शक्ति उसको रोक सकती है, ऐसी शक्ति की अवज्ञा करना मानों अपने को दुःख के समुद्र में डुबोना है। मनुष्य सुख-दुःख का कारण जानकर किसी काम को नहीं करता, उसकी इच्छा सुख प्राप्त करने एवं दुःख से बचने की है अतः वह पाप को दुःख का कारण जानते हुए कभी नहीं कर सकता। यदि संसार में पाप से बचानेवाली कोई शक्ति है तो वह ईश्वर का भय है और वह भी जब कि उसका दृढ़ विश्वास हो जावे। यदि मनुष्य को यह विश्वास हो जावे कि ईश्वर संसार के प्रत्येक खण्ड में विद्यमान है, मेरे भीतर भी है, मैं किसी प्रकार उसकी दृष्टि से अपने पापों को नहीं छिपा सकता न ईश्वर के पुत्र (खुदा के बेटे) का कुफ़ारा मुझे पाप करने पर दण्ड से बचा सकता है और न मुहम्मद साहिब की शफ़ाअत (साक्षी) से पापों से बचना हो सकता है और न किसी प्रकार के छापे तिलक तथा भेस धारण करके पापों के फल से बच सकता हूँ तो वह भी पाप नहीं करेगा। यह जितने मत-मतान्तर हैं, यह सब पाप बढ़ाने के कारण हैं, क्योंकि यह सब ईश्वर को सीमाबद्ध मानते हैं, जिससे कि मनुष्य के हृदय में उसका भय तनिक भी नहीं रहता। कतिपय मनुष्य तो यह विचार लेते हैं कि पाप करके "तोबा" कर लेंगे, परमात्मा क्षमा कर देगा। जब तनिक "तोबा" करने से पाप क्षमा हो जावेंगे तो पापों से कोई क्यों बचेगा? किसी ने कहा कि भार मसीह उठाकर ले गया भला फिर ईसाई पाप से क्यों बचें। किसी ने समझा कि गंगा स्नान से मुक्ति

होगी और सहस्रों जन्म के पाप छूट जावेंगे। अब बताइये वह क्यों पाप से डरेगा ? आज कल तो गंगा जाने के लिये दो तीन रुपये से अधिक की आवश्यकता नहीं। बस जब दो तीन रुपये में ही पाप छूटने लगे तो फिर धनी क्यों पाप से डरेंगे। इस प्रकार इन मत-मतान्तर वालों ने ईश्वर को एकदेशी मानकर सांसारिक गवर्नमेंट की भाँति पापों के हटाने में अशक्त बना दिया है। बहुधा मनुष्य कहेंगे कि हम तो ईश्वर को एकदेशी नहीं मानते ; परन्तु उनसे पूछें तो पैग़म्बर (दूत) किस प्रकार हो सकते हैं, जबकि तुम्हारा ईश्वर एकदेशी ही नहीं ; क्योंकि पैग़म्बर का अर्थ पैग़ाम (संदेशा) लाने वाला है और पैग़ाम सर्वदा दूर से आया करता है और दूरी सर्वथा एकदेशी पदार्थों के बीच होती है। सुतराम् पैग़म्बर मानना ईश्वर को एकदेशी मानकर उसके भय से संसार को हटा उसे (संसार को) पापी बनाना है और जो मनुष्य कुःफ़ारा से मोक्ष मानते हैं, वह मानों घूस देकर परमेश्वर के दण्ड से बचना चाहते हैं। इसी भाँति जो लोग अवतार मानते हैं, वह भी ईश्वर को एकदेशी मानते हैं। नहीं तो वह पहिले किस शरीर में नहीं था, जहाँ उसने अवतार लिया। इसी प्रकार किसी ने उसको सातवें आसमान पर जा बैठाया और किसी ने चौथे आसमान पर उसका स्थान ठहराया। कोई बैकुण्ठ में बताने लगा और कोई क्षीर-सागर में ग़ोता खाने लगा। किसी ने गोलोक को उसका निवास-स्थान बनाया और किसी ने कैलासवासी जा ठहराया। सारांश यह कि इन मत-मतान्तरों के दीपकों ने अपने परिमित प्रकाश के कारण अपने प्रकाश के बाहर उसे न देखकर इतना ही बताया, जिससे यह समय आगया कि चारों ओर पापों का समुद्र बेग से बह रहा है। लोग एक आना के लिये झूठ बोलने के लिये तय्यार हैं। अपनी

ईश्वर भक्ति की जगह धन के लिये गँवा देते हैं। कतिपय मनुष्यों ने तो धन को परमेश्वर की मूर्ति भी बना दिया। भला उनको वैराग्य किस प्रकार हो सकता है ? वह समझते हैं कि यदि और किसी की सिफ़ारिश न सुनी जायगी तो उसकी स्त्री, जिसके संचय करने में हमारा समस्त जीवन व्यतीत हुआ है, जिसकी भक्ति हमने धर्म कर्म और सत् असत् का विचार छोड़ कर की है और जिसके लिए हमने लाखों पाप किये हैं तथा सहस्रों मनुष्यों को धोखा दिया है। उसकी सिफ़ारिश, करुणा-कथन से तो अवश्य ही काम निकल आवेगा। ऐसे विचारों ने मनुष्य जाति के मस्तिष्क को हानि पहुँचाई है, नहीं-नहीं उनको मनुष्य से पशु बना दिया है ; क्योंकि पशु आगामी का विचार न करके केवल वर्तमान स्थिति के लिये ही प्रयत्न करता है। इसी प्रकार वर्तमान समय के मनुष्य भविष्य के प्रबन्ध को, जो धर्म के द्वारा हो सकता है, छोड़कर वर्तमान के प्रबन्ध में जिसे कि वे धन से पूर्ण हो जानेवाला समझते हैं, लग गये हैं। उनको यह ध्यान नहीं कि यह धन हमारे मरने पर हमारे संग नहीं जायगा और इस बात का ध्यान हो भी तो क्यों ? क्योंकि मृत्यु तो आगे होगी और उन्होंने पशुओं से यह पाठ पढ़ लिया है कि आगामी की चिंता ही न करनी। केवल वर्त्तमान के लिये ही प्रबन्ध करना चाहिए। इसीलिये वह सम्पूर्ण देश का धन अपने अधिकार में लाना चाहते हैं।

यदि कोई ऐसा काम धर्मानुकूल करे, तब तो कोई शिकायत का स्थान नहीं ; परन्तु यह तो अपने साथियों को हानि पहुँचाकर, उनको अपने अधिकार में लाकर उन्हीं को अपना दास बनाना चाहते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि प्राकृतिक नियमानुकूल मनुष्य इस बात में असमर्थ है। यह बिना परोपकार किये अपना भला

नहीं कर सकता ; क्योंकि परमात्मा ने मनुष्य के शरीर में भिन्न-भिन्न अवयव रखकर यह बताया है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर का कोई भाग अपनी सहायता से आप ही लाभ नहीं उठा सकता, जब तक कि अन्य अवयवों को उसमें सम्मिलित न कर लेवे, उदाहरणार्थ मनुष्य की आँख देखने से कोई लाभ नहीं उठा सकती जब तक कि हाथ उस वस्तु को न उठा लें और पांव उस मार्ग पर न चलें जो कि आँख ने हाथ और पाँव को दिखाये हैं। आँख का कर्त्तव्य है कि वह पाँव को मार्ग दिखावे और हाथ को उठानेवाली वस्तु दिखावे। परन्तु हाथ भी उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता, जब तक कि वह उसे अपने पास न रक्खे, या तो देह पर मलले या मुख में डाल दे और मुख भी उसे अपने पास रखकर अकेला उससे लाभ नहीं उठा सकता। जब तक कि वह उसे पेट को न दे देवे। अब पेट उसके भाग करता है। यदि इन वस्तुओं में से जो कि उसके पास आई हैं, कोई वस्तु खाने योग्य नहीं और इन आजाय-रईस को जिन्होंने कि वह पहुँचाई है, समूल हानिकारक है तो वह तुरन्त ही वमन कर देता है और इस प्रकार इन अवयवों को बता देता है। जिस पदार्थ को तुमने प्राप्त किया, वह तुम्हारे लिये हितकर नहीं, तुम्हें उसकी प्राप्ति में धोखा हुआ। परन्तु यदि वह उन्हें उनके लिये लाभदायक समझता है, तो उनमें से अशुद्ध भाग जो कि अवयवों के योग्य नहीं, उसे मल स्थान के मार्ग से निकाल देता है, और शेष को प्रत्येक अवयव के पास आवश्यकतानुसार भेज देता है। यदि यह अवयव स्वयं उस वस्तु से काम लेना चाहें, तो प्रथम तो योग्य और अयोग्य का ही ज्ञान न होगा ; क्योंकि पहिली पहिचान भोजन की नम्र और कठोर है। यदि भोजन नम्र है, तो पच जायगा ; परन्तु कठोर पदार्थ आँख के लिये लाभकारी नहीं। अब उस पदार्थ को देखती,

तो सब से प्रथम आँख है; परन्तु इस ज्ञान के न होने के कारण कि यह नम्र है अथवा कठोर—परीक्षार्थ हाथ को दे देती है। हाथ उसको नम्र अथवा कठोर है, यह देख लेता है; परन्तु शष्य के रस का ज्ञान नहीं; परन्तु भोजनों में इसका भी संबंध है। अतः हाथ इस परीक्षा के निमित्त उसे मुख में रसना इन्द्रिय के पास भेज देता है। रसना यदि उसके रस बुरे देखती है, तो तुरंत ही छोड़ देती है, और यदि रस उत्तम है, तो हाथ नाक से गन्ध सम्बन्धी सहायता लेते हैं, जो बताती है कि यह पदार्थ दुर्गंध से पूरित और खाने के योग्य नहीं, अथवा खाने योग्य है। जब यह सब अवयव अपनी शक्ति के अनुसार जाँच कर लेते हैं, तो मुख उस पदार्थ को पेट के पास भेज देता है। इनको वह शुद्ध करके बुरे भागों को निकाल देता है और उत्तम अंशों को प्रत्येक की आवश्यकतानुसार विभाजित कर देता है। अब पेट के अतिरिक्त अन्य किसी अवयव के पास इतनी अग्नि नहीं कि वह वस्तु को शुद्ध करके हानिकारक अंशों को निकालकर शुद्ध शेष को सबको बाँट सके। अतः बाँटने का कार्य पेट को दिया गया। किसी भी अवयव को बिना किसी दूसरे की सहायता के भोजन पचाने की शक्ति नहीं दी गई, क्योंकि शरीर के किसी एक अवयव को भूल से भी कोई विषैला पदार्थ देह में पहुंचकर सम्पूर्ण शरीर को हानि पहुँचा सकता है। प्रत्येक को अपने ज्ञान के अनुसार उसके प्राप्त करने के प्रयत्न में लगाकर अन्त में जो इकला हो, उसे हिस्सा—रसदी (भोजन भाग) बाँटने वाले को सौंपा जाना उचित समझा गया।

इस प्राकृतिक शिक्षा से विदित होता है कि यदि एक अवयव दूसरे अवयव से विरोध करके अपना काम छोड़ दे अथवा उससे भी जो फल प्राप्त हो उसे भी अपने पास रखले तो परिणाम यह

होगा कि वह अवयव अवश्य नाश हो जायगा ; क्योंकि उस वस्तु से जो भोजन उसे मिलता था सो न मिलेगा। प्रकृति बतला रही है कि जिस प्रकार शरीर के सम्पूर्ण अवयव एक दूसरे के लिये काम कर रहे हैं, इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के लिये काम करना चाहिए जिससे कि स्वयं उसका अस्तित्व बना रहे अन्यथा अपने लिये काम करने में तो अपने जीवन को बनाये रखना निरा असम्भव होगा। सारांस यह कि स्वार्थ का नाश ही उन्नति का पहिला भाग है, इसीलिये नीतिकार ने कहा है—

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थ—यह मेरा और यह दूसरों का है, ऐसा थोड़ी बुद्धि-वालों का विचार है। बुद्धिमान तो समस्त संसार को भी अपना कुटुम्ब समझते हैं। यावत् सम्पूर्ण जीवों को अपना न समझा जावे, तावत् मनुष्य को उत्तम कर्म करने की शक्ति ही नहीं होती। कतिपय मनुष्य यह कहेंगे कि हमें अपनी जाति में दूसरी जाति से स्वत्व प्राप्त करने की जागृति उत्पन्न करनी चाहिये तथा उसकी सहायता करना उचित है ; परन्तु यह विचार प्राकृतिक नियम के नितान्त विरुद्ध है एवं नाश करनेवाला है, क्योंकि हमारे शरीर में कई जातियाँ विद्यमान हैं, जैसे एक जाति तो ज्ञानेन्द्रियों की, दूसरी कर्मेन्द्रियों की और तीसरी नाड़ियों की। अब यदि ज्ञानेन्द्रियाँ यह विचार करलें कि हमें कर्मेन्द्रियों की सहायता न करनी चाहिये तो आँख हाथ को मार्ग न दिखाकर अपनी सजाति नाक, कान, रसना तथा त्वचा को मार्ग दिखावेगी और अपनी वस्तुओं की माहियत (आन्तरिक दशा) बतावेंगी, जिसको कि इनमें से एक भी उठाने की शक्ति नहीं रखती। परिणाम यह होगा

कि आँख न तो स्वयं भोजन प्राप्त कर सकेगी और न अपनी सजाति ज्ञानेन्द्रियों को भोजन मिलने देगी। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि आँख का काम है कि कर्मेन्द्रिय—हाथ और पाँव की सहायता करे और हाथ पाँव भी ज्ञानेन्द्रिय अर्थात् रसना को सौंप देवें। यह ऐसा उत्तम पाठ मिल रहा है कि क़ौमी ख़याल त्वचा (जाति का भाव) मनुष्य जाति के लिये हानिकारक है। यावत् मनुष्य प्रत्येक को अपना भाई समझकर उसके स्वत्व छीनने से न हटेंगे और अपने हृदय में शत्रु-मित्र का भेद रक्खेंगे तावत् उन्नति का स्वप्न में भी दर्शन न होगा। इसलिये आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य बिना विचार जाति के प्राणी मात्र की सहायतार्थ प्रयत्न करे जिससे कि स्वयं उसका अस्तित्व भी बना रहे। यहाँ से एक और पाठ भी मिलता है कि यदि पेट अपने काम को भलीभाँति न करे और उस भोजन को दूसरों को बाँटने की जगह अपने ही पास इकट्ठा करले, तो पेट में दर्द आरम्भ हो जाता है। तात्पर्य यह कि महान् क्लेश हो जाता है और यह क्यों ? उस समय जबकि प्राणवायु जो कि प्रत्येक को उसका भाग पहुँचाता है, पेट की सहायता नहीं करता, जिस प्रकार प्राणवायु शरीर के प्रत्येक अवयव में रहकर उनसे काम कराता है तथा पेट की सहायता करके उनको बलिष्ठ करने के लिये आहार पहुँचाता है। इसी प्रकार संसार में धर्म है जो कि प्रत्येक मनुष्य से काम कराना तथा उससे दूसरों की सहायता कराना चाहता है। जहाँ समाज में धन इकट्ठा करने का विचार उत्पन्न हो जाता है, उसको कब्ज़ हो जाता है। तुरन्त ही उसके हाथ-पाँव ढीले हो जाते हैं, जिस प्रकार पेट में अधिक समय तक वस्तु के रहने से शरीर के अवयवों को हानि पहुँचती है, इसी प्रकार समाज के धनी होने से प्रत्येक मनुष्य शिथिल

हो जाता है और चाहता है कि वह स्वयं काम न करे क्योंकि जिस सोसाइटी (समाज) की सहायतार्थ वह काम करना चाहता था, अब उस समाज ने धन एकत्रित करके अपनी आवश्यकताओं को काम पर नहीं निर्भर रक्खा वरन् मजमूआ (इकट्ठा करने) पर रक्खा है। अब जिस प्रकार पेट में आहार के इकट्ठा पड़े रहने से सिवाय हानि के किसी को लाभ नहीं होता, इसी प्रकार समाज के पास अधिक धन रहने से उसके अङ्ग मनुष्यों में शिथिलता होकर अति हानि पहुँचती है और आपस में स्वार्थ फैल जाता है क्योंकि पहिले मनुष्य-समाज से पाठ लेते थे, अब समाज उनको एकत्रित करने का पाठ पढ़ाती है जो स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार हो नहीं सकता। इसलिये परमात्मा ने बताया कि तुम किसी का धन लेने की इच्छा न करो। जब हम किसी का धन न लेंगे तो हमें स्वयं अपने श्रम से पैदा करना होगा, जब समाज का प्रत्येक अङ्ग मुहसन (नेक) तथा अपने में धर्म रखनेवाला होगा तो समाज भी इसी प्रकार का होगा, और जब समाज इस प्रकार का होगा तब तो अवश्य ही संसार में सुख-ही-सुख दीखेगा। परन्तु मनुष्य ईश्वर को सर्व-व्यापक न माने तो प्राण अर्थात् धर्म रह नहीं सकता। अब जिस प्रकार प्राणवायु की सहायता अग्नि से होती है, उसी प्रकार धर्म की सहायता परमात्मा से होती है, जहाँ अग्नि थोड़ी हुई तहाँ वायु बिगड़ना आरम्भ होता है, इसी प्रकार जहाँ ईश्वर का विश्वास और उसके सर्वव्यापी होने का विचार दूर हो जावे वहाँ धर्म भी बिगड़ने लगता है और मनुष्य पाप से नहीं डरता है, जिसके लिये एक कथा कहता हूँ :—

कथा—एक गुरु के दो शिष्य थे एक तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानता था और उसे विश्वास था कि वह पहाड़ की सर्वोच्च शिखा

में, अति अगाध समुद्र की सबसे नीची तह में भी विद्यमान है। कोई स्थान उससे शून्य नहीं। परन्तु दूसरा शिष्य इसके विरुद्ध था और ईश्वर को एक देशी समझता था। उसको विश्वास न था कि परमेश्वर प्रत्येक स्थान पर रहता है, वह यह सोचता था कि ईश्वर प्रत्येक घर में नहीं रह सकता, क्योंकि बहुधा उनमें मैले हैं, भला कहीं उनमें मेरा ईश्वर रह सकता है। वह नहीं जानता था कि परमात्मा सबको शुद्ध करते हैं, उनको कोई अशुद्धि किसी स्थान वा वस्तु के कारण नहीं लग सकती। गुरु उसको समझाता पर वह न समझता वरन् साकारोपासना पर अभिमान किया करता। एक दिन गुरु ने कहा कि यावत् ईश्वर को सर्वव्यापक न माना जावे तावत् संसार से पाप दूर नहीं हो सकते और जब तक संसार में पाप रहेगा, उस समय तक मनुष्यों को सुख नहीं प्राप्त हो सकता। अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने सुख के लिये ईश्वर को सर्वव्यापक मानना उचित है यह सुनकर उस एकदेशी की उपासना करनेवाले शिष्य ने कहा कि मैं कभी पाप नहीं कर सकता। गुरु ने दो चार दिन पीछे दोनों को दो पशु दिये और कहा कि ऐसे स्थान पर मारना जहाँ कि कोई देखता न हो एक-देशी ज्ञानवाला शिष्य यद्यपि सुजन था परन्तु इस अविद्या के कारण उसमें सोचने की शक्ति बहुत ही न्यून थी। उसने एक कोठरी में जाकर किवाड़ बन्द करके तुरन्त उसे मार दिया। दूसरा शिष्य जहाँ कहीं गया प्रत्येक स्थान पर उसे ईश्वर दिखाई दिया। उसने विचारा कि गुरु की यह आज्ञा है कि जहाँ कोई न देखता हो वहाँ मारना परन्तु ऐसा स्थान कोई नहीं। अतः इसको कहीं भी नहीं मार सकते, सार यह कि इन विचारों से एक शिष्य तो मार लाया और दूसरा जीता ही लौटा लाया। गुरु ने कहा—क्यों भाई तुमने इसे जहाँ मारा, वहाँ कोई देखता तो न था? दूसरे से कहा

कि तुमने मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया और इसको क्यों नहीं मारा ? तो शिष्य ने उत्तर दिया कि महाराज ! आपकी आज्ञा थी कि जहाँ कोई न देखे, वहाँ इसको मारना ; परन्तु मुझे संसार में कोई स्थान ऐसा न दीखा कि जहाँ मैं इसे मारता अर्थात् जहाँ पर कोई न था, वहाँ ईश्वर विद्यमान था।

मिथ्या अभिमान और धर्म्म का नाश

प्रिय पाठकगण ! आजकल धर्म के विषय में ऐसा मिथ्या ज्ञान हो रहा है कि कतिपय मूर्खों ने तो इस एक पदार्थ को अनेक कल्पना कर लिया है और कुछ मूर्खों ने इस नित्य पदार्थ को क्षणिकवाद की भाँति कल्पित मान लिया है और कतिपय मूर्खों ने तो धर्म को इतना समझ लिया है कि वे स्वार्थ को धर्म से अच्छा समझने लग गये हैं। जिधर देखो 'टका धर्म्म' की ध्वनि आ रही है। जो ब्राह्मण कि धर्म के सामने ब्रह्माण्ड के सुखों को काक विष्टा से अधिक न समझते थे, वही ब्राह्मण आज टके-टके पर अपना धर्म बेच रहे हैं, उन्हें मृत्यु का भय तथा वेद-आज्ञा का तनिक भी ध्यान नहीं है। दूसरी ओर जो कि धर्म के लिये प्राण तक दे दिया करते थे, आजकल बोटी और हड्डी के लिये आत्मा का हनन कर रहे हैं।

प्रिय पाठकगण ! यदि साधारण हिन्दू क्षत्रियों में यह बात पाई जाती तो कोई अचम्भा न था, परन्तु वह लोग जो अपने को सुधारक कहते, आर्य होने का दावा रखते, ब्राह्मणादि वर्णों को गुण कर्मों से मानते और जहाँ गुण कर्मों का मिलान ठीक न हो वहाँ पोपादिक शब्दों का प्रयोग करते हैं ; परन्तु संसार की स्वार्थता एक अनोखी वस्तु है और वह भारत में बहुत दिनों से फैल रही है, इनमें से भी कतिपय उद्दण्ड मनुष्य तो ऐसे आपे से बाहर और मिथ्या अभिमान में लिपटे हुए हैं कि उनको तनिक भी नहीं सूझता कि हम क्या बक रहे हैं ? ऐसे ही मनुष्य थे ; जिन्होंने स्वार्थ के लिये विश्वासघात करके क्षत्री-कुल को कलङ्कित किया ; ऐसे

ही मनुष्य थे, जिन्होंने कि धन और राज्य के लोभ से अपनी बेटियाँ मुसल्मान बादशाहों को दीं। ऐसे ही मनुष्य हैं, जो अब भी अपने स्वार्थ में पड़कर माँस खाना और जीवों को हानि पहुँचाना क्षत्री धर्म समझ रहे हैं और जिनकी यह सन्तान हैं, वह ऐसे परोपकारी थे कि संसार के जीवों की रक्षा करना क्षत्री धर्म का सर्वोच्च सिद्धान्त मानते थे। हाँ उन जीवों को जो हिंसक और दूसरों को विना कारण हानि पहुँचाते थे, दूसरों के रक्षणार्थ हिंसक जीवों को मारा करते थे। क्या वह अहिंसक जीवों को भी मारते थे? नहीं, नहीं। वरन् वह तो हिंसक और अधार्मिक मनुष्यों को भी दण्ड देते तथा मार डालते थे। उनका यह कर्म किसी स्वार्थ से नहीं होता था वरन् उदारता की दृष्टि से। परन्तु अब उनकी सन्तान अपने अज्ञान के कारण अपने स्वार्थ और दुराचारों को उन क्षत्रियों के शिर मढ़ने लग गई है। अब हम उन आर्यक्षत्रियों से प्रश्न करते हैं कि प्रथम यह तो बताओ कि कौन से वेद शास्त्र में लिखा है कि माँस खाना क्षत्रियों का धर्म है? कतिपय मूर्ख तो इस आखेट के विषय में ही सिद्ध करना चाहते हैं कि पहले क्षत्री माँस खाते थे, परन्तु जब दुष्ट मनुष्यों को मार डालने की राजा के लिये आज्ञा है तो क्या वह मनुष्यों को भी खाने के लिये ही मारा करते थे। यदि कहो कि मनुष्यों को भी इसी उद्देश्य से मारते थे तो वह भी स्वयं अपने को मनुष्याहारियों की सन्तान बताते हैं और यदि यह कहो कि वह मनुष्यों का माँस नहीं खाते थे तो जिस उद्देश्य से वह मनुष्यों को मारते थे, उसी उद्देश्य से पशुओं को मारते होंगे। अब तुम्हारा आखेट से माँसाहार सिद्ध करना तुम्हारी मूर्खता है।

प्रिय पाठकगण! आजकल बहुधा मूर्ख और अज्ञानी जो भूलकर क्षत्रियाभिमानी हैं, झट से कह डालते हैं कि ब्राह्मणों ने

भारत का सत्यानाश कर दिया, यदि ऐसा कहनेवाले अनार्य होते तो हमें तनिक भी खेद न होता; क्योंकि वह लोग जन्म से वर्ण को मानते हैं परन्तु यह मूर्ख तो अपने आपको आर्य कह कर अपनी मूर्खता से इस श्रेष्ठ नाम को कलङ्कित करते हैं, जबकि आर्य गुण कर्म से वर्ण मानते हैं और जहाँ ब्राह्मण के लक्षण लिखे हैं, उनसे ब्राह्मण को संसार भर का हित करनेवाला बताया है। जैसा कि आह्निक सूत्र आदि में लिखा है :—

"शौच मास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरु पूजनम्।
प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम्"॥

अर्थ—"जिसमें स्वाभाविक रीति से शौच, आस्तिकता, वेदों की, गुरु की पूजा, संसार भर का हित करना, अतिथि सत्कार और नित्य अग्निहोत्र की बान पाई जाय, वह ब्राह्मण का शरीर कहाता है।"

"शान्ताः सन्तोः सुशीलाश्च सर्व भूत हितेरताः।
क्रोधं कर्तुं न जानन्ति एतद् ब्राह्मण लक्षणम्॥"

अर्थ—जो शान्ति रखता हो, जिसके आचार व्यवहार सब शुद्ध हों, सबसे मित्र भाव से मिलनेवाला, सबका हित अर्थात् उपकार करनेवाला और जो क्रोध करना न जानता हो, वह ब्राह्मण है।

"संध्योपासन शीलश्च सौम्यचित्तो दृढ़ व्रतः।
समःस्वेषु परेषु च एतद् ब्राह्मण लक्षणम्॥

अर्थः—संध्या करने का आदी, दयालु, दृढ़ व्रत वाला और अपने-पराये को एक समान समझनेवाला ब्राह्मण कहाता है।

प्रिय पाठकगण! इसी प्रकार के और बहुत से श्लोक हैं, जिन

से ब्राह्मणों के गुण, कर्म और स्वभाव प्रकट होते हैं। इस प्रकार के गुणों से रहित मिथ्या ब्राह्मण अभिमानियों के चरित्रों को पवित्र ब्राह्मणों के शिर मढ़ना क्षत्री पदाभिमानी लोगों की मूर्खता और अनार्यपन का लक्षण है, हमारे विचार में तो इस समय ब्राह्मण क्षत्री यह दोनों पद नाममात्र रह गये हैं। और इस प्रकार के मनुष्य बहुत ही थोड़े दिखाई देते हैं। यद्यपि गुण कर्म से जाति माननेवालों का ऐसा कथन सर्वथा झूँठा है; परन्तु यदि कोई जिज्ञासु पूर्णतया खोज करे तो यह दोष क्षत्री नामधारियों पर ब्राह्मण नामधारियों की अपेक्षा अधिक दीखता है, जिस प्रकार वेद की रक्षा ब्राह्मण का कर्तव्य है, अर्थात् वह उसका पठन-पाठन तथा सुनना-सुनाना बनाये रक्खे, इसी प्रकार क्षत्री का कर्तव्य देश तथा प्राणीमात्र की रक्षा करना है। आप ध्यानपूर्वक विचारिये कि ब्राह्मणों ने कैसे-कैसे कष्टों से वेदों की रक्षा की? जब कि जैन और बौद्धों की प्रवलता तथा मुसलमान सम्राटों के अत्याचार से वेद पुस्तक जलने लगी और किसी भी क्षत्री राजा की यह शक्ति न रही कि उन अत्याचारियों का सामना करे वरन् क्षत्रियों की तो यह दशा होगई कि उन्होंने राज्य के लोभ एवं प्राणों के भय से यहाँ तक धर्म और क्षत्री कुल के मान को नाश कर दिया कि अपनी कन्याएँ यवन बादशाहों को देकर अपने क्षत्री नाम को कलङ्कित कर लिया। उस समय भी दीन ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठ कर लिया और उनके स्वरों के रक्षार्थ हाथ के संकेत नियत करके यथासम्भव वेदों को वर्त्तमान सन्तान तक पहुँचा दिया, जिसका बीज रहने से अब प्रेसों की कृपा से एक के करोड़ों होने की आशा की जाती है।

प्रिय पाठकगण! यद्यपि भारतवर्ष के धर्म के नाश होने में ब्राह्मणों का अपराध अधिक दिखाई देता है, परन्तु भारत की

और वस्तुओं का नाश तो केवल क्षत्रियों के स्वार्थ से हुआ है, यदि आप खोज करेंगे कि भारत पर यवनों के राज्य का कारण कौन हुआ तो आपको स्पष्ट विदित हो जायगा कि पृथ्वीराज के मंत्री के पुत्र विजयसिंह के विश्वासघात से बढ़कर अन्य कारण इसका प्रकट नहीं होता, यद्यपि बहुत से मनुष्य जयचन्द्र को भी इस अपराध का दोषी ठहराते हैं, परन्तु वह भी तो स्वार्थी क्षत्री ही था। दूसरे यदि आप पता लगावें कि राना साँगा और बाबर के युद्ध में चित्तौर के महाराना साँगा की किस प्रकार पराजय हुयी और किस प्रकार हिन्दू राज्य का प्रताप बढ़ते-बढ़ते एका-एकी नष्ट होगया तो इसका कारण भी सलहदी के राव का विश्वासघात ही इतिहासों से प्रकट होता है। यदि आप राज-स्थान में इस्लाम के फैलने का वर्णन पढ़ें तो आपको विदित हो, जायगा कि क्षत्री राजा लोग ही अपने स्वार्थवश हानि पहुँचाते रहे जो कि महाराणा प्रताप के प्रति राजा मानसिंह के व्यवहार से प्रकट है। इसी प्रकार जब सिक्ख धर्म उन्नति पर पहुँचा और महाराजा रणजीतसिंह के मरने के पीछे अँग्रेजों और सिक्खों से युद्ध हुआ, उस समय भी स्वार्थी मनुष्यों के स्वार्थ और विश्वासघात से खालसा कौम (सिक्ख) जैसी महान् और वीर जाति नाश को प्राप्त होगई, जो कि वङ्गवासी प्रेस के छपे हुए सिक्खवाद में लालसिंह, राजा गुलाबसिंह, ध्यानसिंह, तेजसिंह तथा रणजोरसिंह की करतूतों से प्रकट होता है। इन्हीं महात्माओं के स्वार्थ ने सिक्ख जाति का प्रताप नक्षत्र आकाश से उतार कर पाताल में डाल दिया।

प्रिय पाठकगण! उपरोक्त बातों के पढ़ने से आप समझ गये होंगे कि स्वार्थी मनुष्यों के विश्वासघात ने भारतवर्ष का सत्यानाश कर दिया। इसकी विद्या, इसका धन, इसकी कारीगरी सब नष्ट

हो गयी और अब सर्वनाश करके एक दूसरे पर दोष लगाते और झगड़ा करते हैं; परन्तु समझनेवाले समझते हैं कि यह सब व्यर्थ की बातें हैं, न तो ब्राह्मणों ने ही भारतवर्ष और धर्म की हानि की और न क्षत्रियों ने ही विश्वासघात किया, क्योंकि जब गुण से वर्ण माने जाते हैं, तो न मूर्ख और स्वार्थी लोगों में ब्राह्मणों के गुण घटा सकते हैं, और न स्वार्थवश कन्याओं को लोभ से म्लेच्छों के हाथ सौंप देना अथवा विश्वासघात करके देश को हानि पहुँचाना क्षत्रियों के गुण कर्म में आ सकता है, और न अपने लालचवश दूसरों को हानि पहुँचानेवाले वैश्य, वैश्य कहा सकते हैं।

प्रिय पाठकगण ! आजकल सबसे बढ़िया एक और राम-कहानी छिड़ गई है, जिसने कि बचे बचाये भारत के मान को भंग करने का बीड़ा उठाया है, अर्थात् इधर तो मूर्ख ब्राह्मण सब उत्तम गुणों को त्यागकर केवल दान लेने अथवा भिक्षा माँगने को अपना धर्म बता रहे हैं, उधर मूर्ख क्षत्रियों ने सब उत्तम बातों को छोड़कर माँस खाना और छोटे-छोटे पक्षियों का मारना ही क्षात्र-धर्म समझ लिया, एक ओर आर्य-समाज के सभ्यों ने अपना नाम रजिस्टर में लिखाना ही आर्यधर्म का पूर्ण मैराज (उन्नति पराकाष्ठा) समझ लिया, और कतिपय मनुष्यों ने जाति की पुकार को समस्त धर्म कर्म से बढ़कर मनुष्य जीवन का उद्देश्य समझ लिया, सारांश यह कि सब मनुष्य शिक्षित और मूर्ख मिथ्या अभिमान में फँसकर भारतवर्ष को नाश करने लगे और पाप पुण्य के सत्य विवेक को एक ओर रख दिया।

प्रिय पाठकगण ! जब कि दोनों का विभाग गुण कर्म से है तो हम नहीं जानते कि जिस प्रकार निरक्षर ब्राह्मण अथवा दूकान-दार अपने को ब्राह्मण समझ रहे हैं, अथवा कायर और स्वार्थी

क्षत्री जो कि दासत्व पर कमर कसे हुए हैं और क्षात्र धर्म से लाखों कोस दूर जा पड़े हैं। वेश्यागामी और मांसाहारी होने पर भी न जाने किस प्रकार क्षत्री कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। वैश्य जिनका कि धर्म सर्वदा सद्व्यवहार से धन कमाना था, जो पशु-पालन और दूसरों को सुख पहुँचाने का बड़ा साधन गिने जाते थे, आज झूठ की दुकान खोलकर, धर्म से निरंतर पृथक् होकर तथा संस्कारों से पूर्ण रहित होकर अपने को वैश्य मानते हैं, न जाने उनके पास क्या प्रमाण है। इस समय यदि प्रत्येक वर्ण की अवस्था पर विचार किया जावे तो लगभग सबही अपने कर्मों से रहित हैं और कतिपय नवीन वर्ण कायस्थ आदि अत्यन्त कायर और निर्बल होते हुए भी अपने को क्षत्री मानने लग गये हैं। इसी प्रकार के जातिमिथ्याभिमान ने मनुष्यों को उत्तम कर्मों से पतित कर दिया है; क्योंकि वह अपने बड़प्पन के लिये केवल जाति को उपस्थित करते हैं, और गुणकर्मों का कोई ध्यान नहीं करते, जबकि ब्राह्मण केवल ब्राह्मण के घर जन्म लेने से, क्षत्री क्षत्री के वीर्य से उत्पन्न होने तथा कायस्थ चित्र-गुप्त की सन्तान होने से अपने को बड़ा मान रहे हैं, तो उनका गुण कर्म से कैसे प्रेम हो सकता था? शोक तो यह है कि इन्होंने अपनी झूठी प्रशंसा सिद्ध करने के लिये उन मिथ्या ग्रन्थों को, जिसको यह कभी भी किसी अन्य दशा में न मानते अब अपने हित के लिये, यद्यपि वे समूल बुद्धि विरुद्ध और सत्य से कोसों दूर हैं, सत्य मान लिया। यदि हमारे शिक्षित कायस्थों से कोई कहता है कि परमात्मा के जुडीशल आफिसर (न्यायाधीश) के यहाँ कोई मीर मुंशी (महामन्त्री) है तो वह भी तुरन्त ही बोल उठते कि सर्व-व्यापक और सर्व शक्तिमान् परमात्मा को अपने न्याय के लिये किसी अफ़सर की आवश्यकता नहीं, क्योंकि

जहाँ स्वयं परमात्मा न हो, वहाँ एजेंट रह सकते हैं और लेखन भूल के रोग का उपाय है, परन्तु जिस प्रभु को सर्वज्ञ और सर्वान्तरयामी कहा जाता है, उसके यहाँ भूल का होना नितान्त असम्भव है, परन्तु अब अपने कुल को सिद्ध करने के लिये इन असत्य बातों को भी वे सत्य मानते हैं।

प्रिय पाठकगण! इस प्रकार चारों वर्ण इस मिथ्या अभिमान के कारण आपस में एक दूसरे को बुरा कह रहे है, ब्राह्मण क्षत्रियों को बुरा बताते हैं, और क्षत्री ब्राह्मणों पर दोषारोपण करते हैं, कायस्थ वैश्यों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और वैश्य उनको उत्तम नहीं बताते। सब से अधिक खेद की बात तो यह है कि आर्यसमाज जैसे वैदिक धर्म के सदस्य, जो कि गुण कर्मों से वर्णों को मानते हैं, उनको इस रोग से, आरोग्यता प्राप्त नहीं हुई, ये भी जाति सभाओं में, जो कि भारतवर्ष में उन्नति की सबसे अधिक हानिकारक संस्था हैं, क्योंकि इस मिथ्याभिमान का बड़ा भारी कारण ये सभायें हैं, लीडिङ्ग-पार्ट (मुख्य भाग) ले रहे हैं, और अपनी जाति को बिना गुण कर्म की महत्ता के औरों से उत्तम बना रहे हैं। विशेष शोक तो इस पर है कि इस प्रकार के मूर्ख लोग जब आर्यसमाज में बैठते हैं, तो उस समय वर्णों को गुण कर्म से बनाने पर जोर देते हैं, परन्तु जब बाहर जाते हैं तो उसके विरुद्ध जाति-सभाओं में इसका खंडन करते हैं।

प्रिय पाठकगण! कहाँ तक लिखें—भारत के दुर्भाग्य ने इस मिथ्याभिमान को भारतवासियों के हृदय पर इस प्रकार अङ्कित कर दिया है कि जिसका दूर होना भी अति कठिन है और यावत् यह शुद्ध न हो जावे तावत् भारतवासियों के गुण कर्म शुद्ध ही नहीं हो सकते और जब तक गुण कर्म न सुधर जायँ तब तक भारत में जीवन ही नहीं आ सकता और बिना जीवन

उन्नति दुर्लभ है। सुतराम् आर्य समाजों और धार्मिक पुरुषों को उचित है कि इस मिथ्याभिमान को नष्ट करने का प्रयत्न करें, जिससे यह देश फिर पहिली अवस्था पर आ जावे और संसार में शान्ति फैल सके।

प्रिय पाठकगण! यद्यपि हम लाखों प्रकार का प्रयत्न करते हैं कि भारत में धर्म का प्रचार हो; परन्तु यावत् इस देश से मिथ्याभिमान का नाश नहीं होता तावत् भारत की अवनति दिन-दिन बढ़ती ही जायगी। यही नहीं कि मनुष्य केवल जाति के सम्बन्ध में ही मिथ्या अभिमान को करते हों वरन् और दशाओं में भी जैसे कि अंग्रेजी पढ़े हुए अपने आपको देश हितैषी तथा कुपढ़ मनुष्यों को मूर्ख और बुरा चीतनेवाला समझते हैं; परन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जावे तो यह भी उनकी बुद्धि की निर्बलता और मिथ्या अभिमान ही है; क्योंकि देश का वास्तविक लाभ तो केवल अनपढ़ कृषकों से ही होना है, यह तो केवल कृषकों की कमाई ठगकर खानेवाले हैं। जहाँ तक देखा जाता है—भारतवर्ष में मिथ्याभिमान की प्रबलता दीख पड़ती है और यही अभिमान जाति, विद्या और धन आदिक भिन्न-भिन्न साधनों से काम में लाया जाता है, इसी से यहाँ की उन्नति रुक गई। अतः हमें उचित है कि हर प्रकार के मिथ्याभिमानों का नाश करके देश को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करें।

महा अन्धेर रात्रि

प्यारे पाठकगण ! एक बार वर्षा ऋतु में जब कि चारों ओर घनघोर घटा छा रही थी और अँधेरा इस कदर हो गया था कि अपना हाथ भी दिखाई न देता था। उस समय एक स्त्री और पुरुष अपने घर में बेख़बर सो रहे थे, चोरों ने उनके घर में कूमल लगाकर बहुत रोशनी कर ली थी और बेतहासा उनका माल ले जा रहे थे। उन्हें अपनी और अपने माल की कुछ सुध न थी और न यह मालूम था कि हमारे घर में चोर घुस आये हैं। सोने के समय वे अपने घर को मज़बूत समझ कर निडर सोये थे, उस समय उन्हें कभी भी यक़ीन नहीं था कि ऐसे मज़बूत घर में किस तरह पर चोर आ सकते हैं; लेकिन वर्षा ऋतु के ज़ोर, जमाने के भाव ने उस मकान को ऐसा मज़बूत नहीं रहने दिया था, जैसा कि वह समझ कर सोये थे। चोरों ने मुख़्तलिफ़ रास्ते उस घर से माल निकालने के लिये पैदा कर लिये थे, जिनका हाल घरवालों से बिलकुल छिपा हुआ था। इस तरह पर जब एक चौथाई के करीब माल निकल गया और यकीन था कि शेष भी निकल जाता कि उस वर्षा में एक बिजली का गोला छूटा, जिसने सोते हुओं को गहरी नींद से जगा दिया और बिजली कड़की, पहले पुरुष जागा और उसने देखा कि घर में चारों ओर छेद हो रहे हैं। उसने उनको अच्छी तरह देखने के वास्ते कि किस क़दर माल गया है, सामान्य-रोशनी की तलाश शुरू की, कुछ तो अँधेरे के सबब से और दूसरे इस सबब से कि चोर सामान्य-रोशनी को पहले ही ले गये; क्योंकि वह उन स्त्री पुरुष के बल और पराक्रम

का इतिहास सुन चुके थे, उन्हें ख़्याल था कि जब तक ये सोये हुए हैं, तब तक हम इनका कुछ ले जा सकते हैं; लेकिन इनके जागने पर माल ले जाना तो क्या बल्कि जान बचाना भी मुश्किल होगा और रोशनी के न होने से अगर ये जाग भी जावें तो हमारा कुछ भी न कर सकेंगे; क्योंकि अव्वल तो अँधेरी रात में इनको हमारा स्वरूप ही नज़र न आवेगा—दूसरे अपने खोये हुए माल का बिलकुल हाल न मालूम होगा, जिसके लिये ये हमारा पीछा करने के लिये तैयार होंगे। उनका यह इरादा था कि वह उनका माल ले जाने के बाद उनको जान से भी मार डालें; लेकिन अभी तक उसका इन्तिज़ाम नहीं होने पाया था कि अचानक बिजली की कड़क ने उन्हें जगा ही दिया। पुरुष ने उठते ही रोशनी की तलाश शुरू की; लेकिन रोशनी की तलाश करना भी उसके लिये मुश्किल हो रहा था; किंतु बिजली की रोशनी उसको ज़रा-ज़रा-सी मदद दे रही थी, जिसके ज़रिये से उसने यह मालूम कर लिया था कि मेरे घर में चोरों ने बहुत से छेद कर लिये हैं और बहुत-सा माल भी ले गये हैं। उसने चाहा कि उन सूराख़ों को बन्द करके चोरों के पीछे अपना माल छीनने के लिये जावे और जिस कदर हो सके अपना माल वापस ले, उसका ख़्याल था कि जब तक यह सुराख बन्द नहीं होंगे, तब तक चोरों के हाथ से माल बचाना बहुत ही मुश्किल होगा। इतने में उसकी स्त्री भी उठ खड़ी हुई और उसने पुरुष से पूछा कि तुम क्या करना चाहते हो, उसने कहा कि इन सूराखों को बन्द करके इन चोरों को पकड़ने और माल लाने की कोशिश करूँगा। स्त्री ने कहा कि मैं हरगिज ऐसा न करने दूँगी यह सूराख तो घर का साज व सामान दूसरों को दिखलाते हैं। क्योंकि हमारे दरवाज़े से तो बहुत से लोग हमारे घर के पदार्थों को देख नहीं सकते

और तुम किसी चोर को मत पकड़ो अगर तुम्हारा कुछ माल ले गये तो ले जाने दो, वह हमारी किस्मत का नहीं वह उन्हीं का होगा, हमारे घर में कुछ कमी नहीं। पुरुष ने उसको समझाया कि अगर थोड़ा-थोड़ा इसी तरह ले जाते रहेंगे तो तुम एक दिन कंगाल हो जाओगी और इन सूराखों को बन्द करना तो भला काम है; क्योंकि उनकी राह से शत्रु आकर हमें बहुत हानि पहुँचा सकते हैं। स्त्री ने कहा ने सनातन से यह सूराख़ चले आते हैं। अब इनके बन्द करने की आवश्यकता नहीं और तुम जो कहते हो कि थोड़ा-थोड़ा माल चोरों के पास बराबर निकल जाने से तुम कंगाल हो जाओगी, तो मेरे पास इतना माल है कि हज़ारों वर्षों में ख़तम न होगा और आगे का हाल कौन जानता है। ग़रज़ की इसी तरह की बहस और प्रश्नोत्तर होते हुए स्त्री पुरुष के पीछे ऐसी पड़ी कि जिसको बाहर जाना और सूराखों को बन्द करना और अपना माल वापस लाना बहुत ही मुश्किल होगया। जब चोरों ने देखा कि स्त्री उसके पीछे भूतनी होकर चिपट गई है, वह किसी तरह भी अपना माल हमसे वापस नहीं ले सकता और न ऐसी दशा में हमसे सामना कर सकता है; तो उन्होंने दिलेर होकर पुरुष पर हमले करने शुरू किये और सूराखों के रास्ते और भी माल ले जाने लगे। बेचारे पुरुप को अपने बुजुर्गों का माल जाते हुए देखकर बहुत ही शोक हो रहा था पर क्या करे, इधर दुश्मनों का सामना, उधर स्त्री की ज़बरदस्ती और कटु वाक्य उस पर रोशनी की कमी, गरज़ कि एक मुसीबत हो तो उसका बन्दोबस्त भी हो सके, उसका हर एक पत्ता भी दुश्मन हो रहा था; लेकिन पुरुष जिसको अपने बुजुर्गों से मज़बूती और बुद्धिमानी से काम करने का सबक मिल चुका था, वह बराबर अपना काम करता चला गया। थोड़े अरसे में स्त्री जब उसको रोकते-रोकते थक गई

और उसने छोड़कर कहा जा—निपूते जा, मेरे घर से बाहर निकल तेरा यहाँ क्या काम! जा, चोरों के पीछे जा? अपना काम कर लेकिन ये सूराख जो हैं कभी बन्द न करने दूँगी और न उस असबाब को जो चोरों के हाथ में गया है, जिसके छूने से मुझे पाप मालूम होता है, इस घर में लाने दूँगी। मर्द ने कहा—यह तुम्हारी बात अच्छी नहीं, क्या तुम्हारा माल जो चोरों के हाथ में चला गया है, अब वह किसी तरह भी शुद्ध नहीं हो सकता। हमें उसकी शुद्धि के लिये कोशिश करनी चाहिये, जब कि तुम्हारे धम में जो अपवित्र होगई हो, उसके शुद्ध करने का तरीका मौजूद है, तो फिर तुम क्यों नहीं उस धर्म को मानतीं!

प्यारे पाठकगण! आप इस सिद्धान्त को सुन चुके, शायद आप में से कई सज्जन इस दृष्टान्त के मतलब को भी समझ गये होंगे; क्योंकि बहुत से भाइयों को इसके असल हाल जानने की इच्छा होगी, इसलिये मज़मून की असलियत की व्याख्या की जाती है।

प्यारे मित्रो! जब महाभारत के बाद भारतवर्ष में वेद का सूर्य्य छिप गया तो अज्ञान की घटाओं से महा अन्धकार हो गया और वाममार्ग की आचार व्यवहार की खराबी ने ऐसा जोर डाला कि भारतवासियों को धर्म कर्म का जरा भी ज्ञान न रहा। हर आदमी बेसुध आलस्य की नींद में मस्त होगया। भारत-वर्ष की ऐसी दशा हो गई कि वैदिक धर्म की जगह बहुत सी बनावटी सम्प्रदायें हो गईं और लोग अपने सम्प्रदायों के बुरे-से-बुरे कर्मों को भी अच्छा बतलाने लगे। बहुतों ने शराब, कबाब और भोग को धर्म बतला दिया, बहुतों ने इससे भी बहुत खराब बातों को जायज कर दिया। ऐसा होते ही चारों ओर से ग़ैर मज़-हब वालों के हमले भारतवर्ष पर होने लगे और उन्होंने वैदिक

धर्म के मानने वालों को अपने मत में लाना शुरू किया। वैदिक धर्म में वाममार्ग के साथ मुद्दत तक पड़ोस में रहने से उनकी बहुत-सी बातें आ गई थीं, जिससे वैदिक धर्म ऐसा मज़बूत नहीं रहा था जैसा कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत के ज़माने तक। इसकी कमज़ोरी और वाममार्ग की बू-बास ने यहाँ पर बौद्ध, जैनी, मुसलमान व ईसाई चारों मजहबों को वैदिक धर्म के अनुयायी यानी वेद के माननेवालों को अपने धर्म में लाने का मौक़ा दिया। यहाँ तक कि भारतवर्ष में बौद्ध और जैनमत के फैलने के बाद करीबन छः करोड़ आदमी मुसलमान हो गये और अरसा १५० साल में क़रीबन २५ लाख हिन्दू ईसाई धर्म में चले गये। ऐसी हालत में दुनिया के तमाम मजहबों का यह ख्याल था कि इसी तरह एक दिन वैदिक-धर्म का ख़ातमा हो जायगा और कुल वेद के माननेवाले ० रह जावेंगे; लेकिन परमात्मा को यह बात मंजूर नहीं थी कि उसका दिया हुआ ज्ञान संसार में से अलग हो जावे और लोग हमेशा के लिये ऐसी महा अँधेरी रात्रि में पड़े रहें। इस वास्ते उसने अपनी कृपा से इस घनघोर रात्रि में एक बिजली का गोला छोड़ा, जिसने एक दफा सारे संसार की नींद को दूर कर दिया। यद्यपि बहुत-से आदमी थोड़ी देर बाद फिर ख़्वाब में चले गये; लेकिन एकबार तो सबके लिये हलचल पड़ गई। वह गोला स्वामी दयानन्द के उपदेश का जोरदार शब्द था, जिसने भारतवासियों को नहीं बल्कि कुल संसार को धर्म की तहकीकात की तरफ़ रुजू कर दिया। अमेरिका और इङ्गलैंड के माद्दह परस्त (प्रकृति उपासक) मुल्कों में जहाँ पर नास्तिकता का ज़ोर हद से ज्यादा बढ़ गया था, हज़ारों आदमियों को धर्म की तहकीक़ात का शौक़ हुआ और लोग ईश्वरी ज्ञान की तहकीकात में लग गये। उस महात्मा के उपदेश से आर्य-समाज ने जागकर इस

बात की तलाश की कि किस तरह पर हमारे मुल्क की यह हालत हो गई है, लेकिन मुसलमानों ने हिन्दुओं के मजहब की कुल किताबें जो उनके हाथ लगीं जला दी थीं और बहुत-सी किताबें हिन्दुस्तान की जर्मन वग़ैरह योरोप के देशों में चली गईं। इसलिये आर्य-समाज को बड़ों की किताबों की तलाश की बहुत जरूरत मालूम हुई, जिससे वह अपने भाइयों को जो वाममार्ग से पैदा हुई बुरी रीतियों को देख वैदिक धर्म को छोड़ ईसाई और मुसलमान मज़हब में जा रहे हैं; किसी तरह उन रीतियों को दूर कर उनको वैदिक धर्म से पतित होने से बचावें और जो लोग वैदिक धर्म से पतित हो चुके हैं, उनको वापस लाने की कोशिश करें, ताकि वैदिक धर्म फिर वैसी ही हालत में आ जावे, जैसा कि वह महाभारत के पहले था; लेकिन आर्य समाज के बाद ही एक स्त्री, धर्म सभा के नाम से उठी, जिसने आर्य-समाज का दामन पकड़ लिया और कहा—खबरदार! तुम इन बुराइयों को दूर मत करो इनसे हमारे धर्म की खूबी और बुजुर्गी ज़ाहिर होती है और तुमको क्या पड़ी है? कोई धर्म पर रहे या न रहे। परंतु आर्य समाज का जो ख्याल था कि वैदिक धर्म के माननेवाले जो ईसाई मुसलमान इत्यादि मजहबों में अपनी ग़लती या किसी विषय के लालच से गये हैं। जो हमारी तरह ऋषियों की औलाद हैं; लेकिन अपने बुजुर्गों के सच्चे धर्म को बसबब नादानी के हानि पहुँचा रहे हैं; उनको समझाकर और प्रायश्चित कराकर फिर उनको ऋषि सन्तान बना दिया जावे कि श्रीमान् स्वर्गवासी महाराज जम्बू काश्मीर ने काशी इत्यादि के पण्डितों से साबित करा दिया है कि धर्म के न जानने से जो ईसाई वा मुसलमान हो जावें, उनको प्रायश्चित्त करके शुद्ध कर लेना बिलकुल धर्मशास्त्र और वेदों की आज्ञा के अनुसार है, जिसके लिये महाराज ने (रणवीर रत्नाकर)

नामी पुस्तक पर बहुत से पण्डितों के हस्ताक्षर भी करा दिये हैं। लेकिन भारतवर्ष के कुदिन ने अब भी धर्म सभा के मूर्ख और अपस्वार्थी मनुष्यों को प्रायश्चित्त का शत्रु बना रक्खा है। जिससे वैदिक धर्म की वह कमी जो मुसलमान बादशाहों की जबरदस्ती से पैदा होगई थी, पूरी होनी कठिन ज्ञात होती है। बावजूद कि धर्म सभा में ऐसे लोग भी मौजूद हैं, जो मुसलमान डाक्टरों की दवाई स्तेमाल करते हैं, जिसमें उनका पानी मिला होता है। मुसलमानों के हाथ का सोडावाटर पी लेते हैं, मुसलमान वेश्याओं के साथ खा लेते हैं, इस क़िस्म के मुसलमानों के साथ खानेवाले तो शुद्ध हैं और जो लोग धर्म-रक्षा के लिये मुसलमान और ईसाइयों को जो पहले हिन्दू थे शुद्ध करके मिला लेते हैं, वह अशुद्ध हैं। सच है घोर कलियुग का यही धर्म है कि रक्षक अपवित्र और वेश्यागामी और शराबी और कवाबी पवित्र। अगर इतना अज्ञान न छा जाता तो भारत का दुर्भाग्य किस तरह कामयाब होता।

प्यारे पाठकगण ! आर्यसमाज जो भारतवर्ष के धम और विद्या का बचानेवाला है, जिसका उद्देश्य ही सम्पूर्ण संसार को सुख पहुँचाना है और अपने तन, मन से आपकी सेवा में लग रहा है, उसको अपस्वार्थियों ने झूठी गप्पों और धोखे की चालों से ऐसा बदनाम कर दिया है, जिससे भारतवासी अपने परमहित-कारक को नफ़रत की निगाह से देखते हैं। जहाँ पर इस क़िस्म की महा अन्धेर रात्रि हो, वहाँ उन्नति की आशा करना बहुत ही कठिन है। अफ़सोस की बात तो यह है कि आज ऋषियों की सन्तानों का धर्म रोटियों पर बिक रहा है, सब लोग ऐसे मूर्ख हैं कि वह धर्म के शब्द की असलियत से भी जानकार नहीं हैं, और लोग जानते हैं कि उनका रोजगार अभी खराबियों और बुरी रीतों पर क़ायम है, अर्थात् इस ख्याल में हैं कि आज हम सचाई की

ओर ध्यान देंगे तो लोगों में हमारी विद्या की पोल खुल जायगी, वह कहेंगे कि आज तक पण्डित होकर ग़लत कायदों के कायल रहे। गर्जेकि पढ़े लिखे और पण्डित तो इस आफत में फँसे हैं और अनपढ़ और मूर्खता के कारण मँझधार में डूब रहे हैं, इन लोगों के अपस्वार्थ (खुदगर्जी) और बेवकूफ़ी से वैदिक धर्म प्रतिदिन तबाह होता चला जाता है। ये लोग यह नहीं सोचते कि उनकी बेवकूफ़ी से छः करोड़ हिन्दू मुसलमान हो गये और पच्चीस लाख आदमी ईसाई हो गये। आज जिस कदर हानि हिन्दू मुसलमानों के झगड़ों से हो रही है, अगर ये भाई जो मुसलमान हुए हैं न होते तो कभी मुमकिन न था कि भारतवर्ष की यह दशा होती। लेकिन आज आधी ताकत जिससे कुछ मुल्क का फायदा होता, आपस के झगड़ों में खर्च हो रही है, जो आर्यसमाज ने इस बात की कोशिश की कि हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई होने से बचाये और जो लोग ग़लती से हो चुके हैं, उनको प्रायश्चित्त करा कर वापस ले तो यह अपस्वार्थी लोग बेवकूफ़ लोगों को वहकाकर आर्यसमाज को धर्म रक्षा से बाज रखने की कोशिश करते हैं।

प्यारे पाठकगण ! सनातन धर्म सभा अगर किसी अच्छे काम का प्रचार करती तो आर्यसमाज को बहुत मदद मिलती ; लेकिन यह तो बजाय उपकार के झगड़े में डालने का बन्दोबस्त करती है। यद्यपि आर्यसमाज प्रतिदिन बहुत उन्नति करता चला जाता है ; लेकिन धर्मसमाज के झगड़ों ने आर्यसमाज की गति को बिलकुल बदल दिया है। आर्यसमाज का उद्देश्य यह नहीं था कि वह वैदिक धर्म के माननेवालों में और झगड़े उपस्थित करे इसका उद्देश्य तो केवल वैदिक धर्म की रक्षा करना था और जो छिद्र जैन, बौद्ध, ईसाई और मुसलमान लोगों की तालीम से वैदिक धर्म में पैदा हो गये हैं, उनको बिलकुल अलग करके शुद्ध

वैदिक धर्म को जिसके सामने संसार के किसी मत का बल नहीं कि अपने मत को उपस्थित रख के संसार भर में फैला दे। लेकिन शोक तो यह है कि भारतवर्ष में उत्तम वर्ण और सब से श्रेष्ठ कक्षा के मनुष्य यानी ब्राह्मण और साधु अब उन्हीं अशुद्धियों के बचाने वाले हो गये हैं, जो और मतों के सम्बन्ध से पैदा हो गई हैं।

प्यारे पाठकगण! क्या कोई सनातन धर्म का पण्डित बतला सकता है कि वेद और वेदानुकूल पुस्तकों में कहीं मुसलमान मुर्दों की कबर की पूजा लिखी है? आप में से कोई इसका सबूत दे सकता है? कदापि नहीं? क्या कोई बतला सकता है कि सनातन ऋषि मुनि इसी भाँति पर धर्म से अलग रह कर केवल संसार का धन कमाने को ही धर्म कर्म मानते थे? जैसा कि आजकल हमारे बहुत से भाई कर रहे हैं, क्या यह रामलीला का खेल कोई सनातन धर्म सिद्ध कर सकता है, क्या अपने बुजुर्गों को चोर और जार बतला सकता है? जिस तरह हमारे सनातन धर्मी लोग महात्मा कृष्ण जैसे योगिराज को बतला रहे हैं, क्या कहें एक बात हो तो बतलावें, जिधर देखो उधर काम चौपट हो रहा है, केवल इस लिये कि हमारे देश के खत्री बनिये अपनी धर्म पुस्तकों के पढ़ने के लिये विद्या की आँख नहीं रखते। इन कारणों से उनको अन्धे की भाति दूसरे की अन्धाधुन्ध तालीम होनी चली जाती है। जिस प्रकार एक अन्धा दूसरे अन्धे के अन्धा होने को नहीं जान सकता, ऐसे ही यह मूर्ख लोग अनपढ़े ब्राह्मणों और और साधुओं की मूर्खता और अशुद्ध तालीम को नहीं समझ सकते। इसलिये हर एक आदमी को हौसला पैदा होगया है कि वह जो चाहे शास्त्रों का नाम लेकर उनको समझावे।

प्यारे पाठकगण! यद्यपि शास्त्रों और बुजुर्गों में इनकी श्रद्धा

प्रशंसनीय है, लेकिन ज्ञान की कमी से हानिकारक हो रही है। अगर ये मनुष्य वेद विद्या की कुछ तालीम पाकर कुछ विचारते और उस पर इसी श्रद्धा से अमल करते, जैसा कि आज कल करते हैं तो जरूर मोक्ष पद के भागी होते; लेकिन अफ़सोस तो यह है कि ये धर्म सभा के लोग ऐसे खुदगरज़ हो रहे हैं कि अपने क़ायदों की आप जड़ काटते हैं, कहते तो यह हैं कि वर्ण उत्पत्ति से है और आर्यसमाज से दिन रात इस बात पर झगड़ा करते हैं कि गुण कर्म से वर्ण नहीं बल्कि वीर्य से है; लेकिन अमली तरीक़ा इसके बिलकुल खिलाफ़ है, इनकी सभा के बड़े-बड़े उपदेशक बढ़ई, रोड़े इत्यादि जातियों के हैं, जो कोई तो सागर संन्यासी बन गया है और कोई उदासी कोई निर्मला गरजे कि लोगों ने साधुओं का भेष बदल लिया है अब जरा से भेष से तो उनका वर्ण बदल गया कि अब उनके धर्म सभा के ब्राह्मण तक स्वामीजी महाराज कहते और उनकी इज्जत मिस्ल अपने गुरु संन्यासियों के करते हैं और यह ख्याल नहीं करते कि वह वीर्य से बढ़ई हैं या शूद्र हैं, उनको वर्ण से कोई गरज़ नहीं सिर्फ भेष से गरज है।

प्यारे पाठकगण! अपनी ग़लत समझ से मेम्बरान (सभासद) सनातन धर्म सभा अमल वही करते हैं कि जो आर्य समाज के अनुसार है; लेकिन जबानी तौर पर दिन रात स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे धर्मात्मा परोपकारी को जिसने कि वैदिक धर्मियों की काया पलट दी अर्थात् जो वैदिक धर्मी मुसलमान और ईसाई उनके मुक़ाबिले में बहस करने से घबराते थे आज मुसलमान और ईसाई उनसे बहस करने में घबरा रहे हैं और पहले हिन्दू लोग दिन रात मुसलमान ईसाई हो रहे थे, अब बहुत ही कम लोग हैं, जो धर्म समझ कर मुसलमान और ईसाई

हों। बल्कि उनका कमजोर धर्म समझ कर वापस आ रहे हैं। कई हजार आदमी वापस आ चुका है। यह सनातन धर्म के पंडित जानते हैं कि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त बिलकुल वेद के अनुकूल हैं और उन्होंने ऋषियों की राय के विरुद्ध कुछ नहीं लिखा है। उनकी मेहनत और गालियों से आर्य्यसमाज का कुछ नुकसान नहीं हो सकता लेकिन फिर भी अपने रोजगार की हानि समझ कर ऐसे अधर्म को कर रहे हैं। परमेश्वर! इस महारात्री को मिटा कर हमारे भाइयों को बुद्धि दे, जिससे वे सनातन वैदिक धर्म को ग्रहण करके उसका प्रचार करें।

डाकू

प्यारे आर्यवर्त्त के रहनेवालो ! आजकल आर्यवर्त्त के चारों ओर यह धूम मची हुई है कि अमुक स्थान पर डाकू आये और अमुक मनुष्य को मार कर इतना धन लूट ले गये । प्रत्येक मनुष्य के मुख से डाकू शब्द सुना जाता है ; परन्तु बहुत थोड़े मनुष्य हैं, जो इस शब्द के वास्तविक अर्थ को जानते हैं ।

प्रिय पाठकगण ! डाकू की शिक्षा यह है कि वह सर्वदा धनोपार्जन करना अपने जीवन का उद्देश्य समझता है, वह जहाँ पर कोई राजकीय कर्मचारी देखता है अथवा कोई और शस्त्रास्त्र से सुसज्जित शक्ति सन्मुख आती है वहाँ से तुरन्त हट जाता है। उसे जहाँ कष्ट की सम्भावना हो और धन मिलता हुआ न दीखे, वहाँ वह भूल कर भी नहीं जाता । उसकी दृष्टि में समस्त नष्ट हों अथवा प्रसन्न रहें कुछ बात नहीं, उसका उद्देश्य तो येन-केन प्रकारेण आनन्द को प्राप्त करना तथा अपनी कीर्ति फैलाना है ।

प्रिय पाठकगण ! डाकू शब्द संस्कृत भाषा के दस्यु शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है, जिसका अर्थ यह है कि अपनी शक्ति से दूसरे का धन छीनकर खाना और स्वयं पैदा करने का यत्न न करना । जब विचार किया जाता है तो शक्ति चार प्रकार की है:—शस्त्र बल, विद्याबल, बुद्धिबल और अनुभवबल ! हाँ पाँचवाँ धन का बल और है, इन्हीं पाँच शक्तियों द्वारा मनुष्य दूसरों के माल को प्राप्त करके आप लाभ उठाता है । परन्तु आज-कल शस्त्र के बल से जो किसी का धन हरण करता है, उसी को डाकू कहते हैं अन्य को नहीं । यह स्पष्टतया पक्षपात और अन्याय है ।

मैं जहाँ तक देखता हूँ, लट्ठ का बल सब से हीन है। उदाहरणार्थ एक कृषक ने अपने सम्पूर्ण वर्ष के परिश्रम से दो सौ मन अन्न उत्पन्न किया। इसमें से लगभग एक तिहाई तो गवर्नमेण्ट और जमींदारों ने छीन लिया, बहुत-सा भाग बौहरे ने ब्याज में किस्तों से ले लिया, बहुत-सा मुकदमेबाजी में वकील साहब और न्यायालय के डाकू अर्थात् घूँसखोरों ने उड़ा लिया और बहुत-सा दुकानदारों ने वस्तुओं के मुनाफे के रूप में अर्थात् एक रुपये के पदार्थ का डेढ़ रुपया ऐंठ लिया। इसी प्रकार लुटते लुटाते दो सौ मन अन्न में से २५ मन अन्न बचा, अब बताइये तो सही वह दीन क्या तो आप खावे, क्या बैलों को खिलावे, किससे कुटुम्ब का पालन करे और क्या बचावे। जिससे कि दुर्भिक्ष के लिये भोजन, पशुओं के मरने का व्यय तथा विवाह और मृत्यु में जो धन की आवश्यकता होती है, उसे पूर्ण कर सके। ऐसी दशा में जब वह लाचार हो जाता है और देखता है कि और प्रकार की शक्तिवाले तो आनन्द और चैन से धन लूटते और मौज करते हैं परन्तु मैं अनादर और उपेक्षा की नदी में डूब रहा हूँ, उस समय वह यही सोचता है कि अन्य मनुष्य तो अपनी शक्तियों को प्रयोग में लाते हैं, केवल मैं ही अपनी शक्तियों को निकम्मा खो रहा हूँ। ऐसे विचारकर और अपनी विपत्ति को सन्मुख रखकर (मरता क्या न करता) इस कथन के अनुसार जो कुछ उससे बन पड़ता है, कर डालता है, यद्यपि गवर्नमेण्ट का भय उसे धमकी देता है। परन्तु जब गवर्नमेण्ट के भय से अन्य शक्तियोंवाले नहीं डरते तो फिर मुझे क्या भय है, वह ऐसा सोचता है ? वह देखता है कि वकील न्यायालय में सरासर झूठे मुकदमें लेते हैं ; परन्तु उनको अपनी बुद्धि के लट्ठ से सत्य कर दिखाते हैं। जिसके कारण सैकड़ों दीन घर से बिना घर के होजाते हैं और धनी उनके रक्त से आनन्द

करते हैं। वह सोचता है कि क्या कारण कि यह तो न्यायालय में बैठे लूटते हैं और फिर भी कोई इन्हें नहीं पूछता? फिर विचार करता है कि इनके साथ तो गवर्नमेंट का भाग है; क्योंकि यदि ५) सैकड़ा वकील साहब को दिया जाता है तो साथ ही ७।।) सैकड़ा का कोर्ट-फीस (शुल्क-न्यायालय) गवर्नमेंट भी तो ले लेती है। इसके अतिरिक्त छोटी दरख्वास्तों पर जो टिकट लगाये जाते हैं, वह सब मिलकर १०) सैकड़ा से थोड़ा ही न्यून है, मानों उन दीनों के नाश करने में जो धन प्राप्त होता है, उसमें से ।।) गवर्नमेंट का और ।।) वकीलों का है। सुतराम वह समझ जाता है कि उन्हें गवर्नमेंट से डरने का कोई कारण नहीं? फिर वह देखता है कि पुलिस और न्यायालय के छोटे-छोटे कर्मचारी सरकारी नौकर होते हुए भी निशिदिन घूँस खा रहे हैं, उनको भी गवर्नमेंट से कोई भय नहीं? क्यों, यह देखता है कि पुलिस तो गवर्नमेंट के भय का बड़ा भारी साधन है और यह बहुत से मनुष्यों को नष्ट भी करदे तो भी कोई नहीं पूछ सकता; क्योंकि सरकारी कर्मचारी तो अन्तर्यामी नहीं और पुलिस के अधिकार इतने बढ़े हुए हैं कि इनका कोई पारावार नहीं। एक खूनी (हत्यारे) को छोड़ देना और उसके स्थान पर किसी निर्दोष सभ्य को जिससे शत्रुता हो मिथ्या दोष लगा कर फाँसी दिला देना तो यह अपने बायें हाथ का कार्य समझते हैं! और एक सभ्य मनुष्य का मान भंग कर देना अथवा उसके धन तथा जीवन को खतरे में डाल देना तो साधारण कार्य है। भला फिर किसके बुरे दिन आये हैं, जो इनकी करतूतों को राजकीय कर्मचारियों के समक्ष में उपस्थित करे, अथवा किसको अपना जीवन भार प्रतीत होता है कि जो इन यमदूतों से सानुरोध सर्वदा के लिये उत्पन्न करे और अपने धन और जीवन को एक भयानक अवस्था में डाल देवे। अतः पुलिस को गवर्नमेंट से भय रखने का

कोई कारण नहीं। रहे न्यायालय के कर्मचारी, सो यह तो राजकीय कर्मचारियों के बल में हैं। भला इनसे शत्रुता करके भी कहीं न्याय की आशा हो सकती है इसलिये उनकी। बात भी अधिकतर छिपी रहती है, इस कारण इनके न डरने का अचंभा करना बड़ी भारी भूल है, वह देखता है कि धनी (साहूकार) किस्तों के द्वारा वर्ष भर में १००) के १०५) लेते हैं और गुमास्ते बहुधा झूँठे काग़ज़ बनाते हैं, भला फिर यह राज्य से क्यों नहीं डरते ? फिर सोचता है कि यह भी गवर्नमेंट को अपनी आय पर कर देते हैं और मुक़द्मेबाजी द्वारा भी गवर्नमेंट के कोष को भरने की कल भी तो यही है। यदि यह झूँठे काग़ज़ न बनावें और सौ देकर दो सौ न लिखें तो मुक़द्मेबाजी चले कैसे ? और यदि मुकद्मेबाज़ी न चले तो गवर्नमेंट का कोष कैसे भरे ? इसके पीछे वह बाज़ार के दुकानदारों की ओर ध्यान देता है, और कहता है कि यह तो गवर्नमेंट से सम्बन्ध नहीं रखते, फिर किस प्रकार छोटे-बड़े नापने के गज़ और लेने देने के पृथक्-पृथक् बाँट रख सकते हैं ? क्या कारण कि इनके हृदय में गवर्नमेंट का तनिक भी भय नहीं, जब तनिक विचार-पूर्वक देखता है तो समझ लेता है कि प्रथम तो चुंगी की आमदनी का बड़ा भारी जरिया (साधन) यही लोग हैं, दूसरे रेल की आमदनी अधिकतर इन्हीं के काम पर निर्भर है, तीसरे विलायत के व्यवसाय का बड़ा भारी कारण यही मनुष्य हैं।

यदि यह न हों तो कैसे हो सकता है कि भारत की रुई तीन सेर की विलायत को जा रही है और उस बदले में रुपये की १ छटांक मलमल आती है, जिसका यह आशय है कि एक रुपये की रुई के ४८) विलायतवालों को पहुँच जावें और इस पर भी इन दुकानदारों का लाभ अलग रहा, और फिर यह भी तो गवर्नमेंट को इन्कमटैक्स (आमदनी पर 'कर') देते हैं; भला

जब प्रत्येक अवस्था में ये लोग गवर्नमेंट और उसके देश वासियों को लाभ पहुँचाते हैं, तो फिर दीन कृषकों के लूटने से इन्हें क्या भय हो सकता है। अब रहे ज़मींदार, सो तो अपनी आय में से ५८) सैकड़ा राज्य को देते हैं, वह जितनी आमदनी बढ़ावेंगे उतना ही गवर्नमेंट को लाभ होगा। भला इन्हें तब क्या भय हो सकता है। अब वह अपने विषय में विचार करना आरम्भ करता है कि मेरी शक्ति का गवर्नमेंट के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं और मुझसे सीधा गवर्नमेंट को कोई लाभ नहीं पहुँचता, सुतराम् गवर्नमेंट लट्ठ के बल से छीननेवालों को दण्ड देती है, और अन्य शक्तियों से कोई चाहे समस्त संसार को लूट खाय, गवर्नमेंट तनिक भी बीच में नहीं बोलती। फिर सोचता है कि गवर्नमेंट भी तो सजाति है, वह भी तो लट्ठ के बल से शासन करते हैं, उसकी सम्पूर्ण शक्ति भी तो लट्ठ के आसरे ही है, वह विचारता है कि क्या कारण है कि गवर्नमेंट हमारा व्यवसाय सहयोगी होकर हमें नष्ट करना चाहता है, फिर समझता है कि संसार में मनुष्य अपने हम पेशे को देखकर यह सोचते हैं कि इसके कारण हमारे व्यवसाय में हानि पहुँचेगी, कदाचित् इसी प्रकार हमारे लट्ठ के बल को देखकर गवर्नमेंट को भी सूझा है।

प्रिय पाठकगण! एक समझदार डाकू, जिसके विचार कि मैं ऊपर दिखा चुका हूँ, एक समय किसी जगह जा रहा था, मार्ग में उसकी एक साहूकार (धनिक) एक वकील, एक ज़मींदार और एक दुकानदार से भेंट हो गई। डाकू ने प्रत्येक से उसका हाल और पेशा पूछा, जब प्रत्येक ने अपना-अपना पेशा और हाल बता दिया तो उन्होंने डाकू से उसका पेशा और हाल पूछा, डाकू ने सम्पूर्ण हाल कह सुनाया और कहा—'भ्राताजी! हम और

तुम सब एक काम के करनेवाले हैं, यद्यपि हमारे तुम्हारे काम करने के साधन भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं ; परन्तु बुद्धि जान सकती है कि हमारे तुम्हारे जीवन का एक ही उद्देश्य है, अर्थात् दूसरों की कमाई से धन प्राप्त करना और उससे आनन्द भोगना, इसलिये मैं प्रार्थी हूँ कि हम सब को उचित है कि मिलकर रहें और दूसरे साथियों में मेरे आदर को बढ़ाया जावे।

प्रिय पाठकगण ! डाकू की इस बात को सुनकर सेठजी मारे क्रोध के अंगारा हो गये और घबराकर कहा:—

सेठ—क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि तुम नित्य प्रति सैकड़ों दीनों का गला काटते हो और उनके घरों की वस्तुओं को लूटते हो, उनको सुख देकर लाभ नहीं उठाते वरन् सर्वदा नष्ट करने का प्रयत्न करते हो, और फिर हमारी समानता का दावा करते हो तथा हमें अपना हमपेशा समझते हो। इससे तुम्हारी मूर्खता का परिचय मिलता है, क्या हमने भी तुम्हारी भाँति किसी को नष्ट किया है ?

डाकू—महाशय ! क्षमा कीजिये मैंने भूल की, क्योंकि आप हमारे हमपेशा नहीं वरन् सर्दार हैं, हम धनवानों को लूटते हैं और आप दीनों का लोहू पीते हैं, हमने आज तक किसी का घर नीलाम नहीं कराया और न ज़मीन बिकवाई, ताज़ा-ताज़ा माल जो धनाढ्यों से मिला छीन लिया, हममें यह शक्ति नहीं कि घर ज़मीन छीन सकें, यह आप ही से हो सकता है।

सेठ—हम किसी को लूटते नहीं वरन् पहिले अपने रुपये को जोखम में डालते हैं, फिर कुछ ब्याज लेते हैं, जिसको आवश्यकता होती है ले जाता है।

डाकू—सेठजी ! आप तो रुपये को जोखम में डालते हैं, परन्तु हम आपसे बढ़कर अपने प्राणों को जोखम में डालते हैं।

सेठ—भाई ! हमारे रुपये तो बहुधा मारे जाते हैं और १००) में १०) तो अवश्य ही मारे जाते हैं, फिर सरकार का खर्च, मुकद्दमे का खर्च सब हमको ही देना पड़ता है, बहुधा अमले वालों को (न्यायालय के) छोटे-छोटे कर्मचारियों को भेंट होती है।

डाकू—सेठजी ! आप क्या कहते हैं ! यहाँ तो पचास से अधिक जीव जाते हैं और फिर भी सफलता नहीं होती।

सेठ—तुम तो सहस्रों मनुष्यों के निरपराध प्राण लेते हो, तुम से देश को बड़ी भारी हानि पहुँचती है, हमसे देश का मान और लाभ होता है, भला फिर हम और तुम किस प्रकार समान हैं ?

डाकू—आप तनिक सोचकर बात कहें, क्या बहुत से मनुष्य ब्याज से घबड़ाकर आत्म-घात नहीं कर लेते, हत्या तो हम तुम दोनों करते हैं, अन्तर केवल इतना है कि तुम इतना दुःख देते हो कि वे दीन दुखित होकर प्राण देने पर स्वयं उतारू हो जाते हैं और हम बिना दुखाये स्वयं मार डालते हैं। रहा आप से देश का गौरव और लाभ सो यह दोनों झूठ हैं, क्योंकि यदि देश को कभी किसी के अत्याचार से बचाया है तो हमीं ने बचाया। देखो शिवाजी और रणजीतसिंह आदिक ने पहिले शत्रुओं पर डाके मारे तत्पश्चात् उनको जीत लिया मानों शाही छोटे हमले का नाम डाका और बड़े का नाम बादशाही हमला (राजकीय-आक्रमण) है। देखो हजरत मुहम्मद ने भी प्रथम विपत्तियों को इसी भाँति जय किया और अन्त में बली होकर अरबदेश को लाभ पहुँचाया, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। नादिरशाह ने भी यहाँ से बादशाही प्राप्त की। महाशय ! हमारी जाति से तो देश को लाभ ही है, महानुभाव ! हम अपने देश का धन किसी

दूसरे देश को नहीं पहुँचाते ; वरन् धनी बलवानों से छीन कर दीनों और निर्बलों को देते हैं।

यह सुन कर वकील साहब बोल उठे। तुम दोनों मनुष्य मूर्ख हो, तुमसे कभी देश और जाति को लाभ नहीं पहुँच सकता, जितने शिक्षित और आज़ाद पेशा (स्वतन्त्रोपजीवी) मनुष्य बढ़ते जायँगे, उतना ही देश को लाभ होगा।

डाकू—सत्य है ! श्रीमान् से अवश्य ही देश को लाभ पहुँचता है ; क्योंकि प्रथम तो ७॥) सैकड़ा कोर्ट-फ़ीस और लगभग २॥) सैकड़ा तलबाना आदि के गवर्नमेंट को दिये जाते हैं पीछे ५) सैकड़ा स्वयं श्रीमान् को मिलते हैं। मानो जब देश को १५) की हानि पहुँच लेती है तब श्रीमान् को ५) प्राप्त होते हैं। अब आप विचारिये कि यदि श्रीमान् १०००) मासिक कमाते हैं, तो देश को २४०००) वार्षिक की हानि पहुँचती है।

वकील—तुम्हारी यह बात सर्वथा असत्य है। हम कभी गवर्नमेंट को रुपये नहीं दिलाते वरन् प्रथम लोग मुकदमा दायर (प्रविष्ट) करते हैं और फिर हमारे पास आते हैं, हम किसी के घर पर जाकर नहीं कहते कि मुक़दमा लड़ो वरन् उलटे पापी अभियुक्तों को मुक्त कराकर उन्हें यातनाओं से छुड़ाते हैं देखो हम इतना धन व्यय करते हैं। श्रम करके विलायत जाकर बैरिस्टरी की परीक्षा देते हैं। हमारा यह सब परिश्रम देश के हितार्थ है।

डाकू—बाबूजी आपके न्याय की बलिहारी। यथार्थ में आप विलायत जाकर श्रम करके देश का बड़ा हित करते हैं, प्रथम जब आप विलायत जाते हैं तो देश का १५०००) तो पहिले पहिल भेंट करते हैं और देश की रीति भाँति को नमस्कार कर देश को दूसरा लाभ पहुँचाते हैं और यहाँ लौटकर धर्म कर्म से पृथक् होकर देश को तीसरा लाभ पहुँचाते हैं और देश में मुकदमे-

बाजी बढ़ाकर और घर में फूट डलवाकर देश को चौथा लाभ पहुँचाते हैं और पीछे देश के धन से विलायत की वस्तु खरीदकर और उनसे ड्राइंग-रूम सजाकर देश को नष्ट करके पाँचवाँ लाभ पहुँचाते हैं।

वकील—तू मूर्ख मनुष्य ! बुद्धि शून्य ! नहीं समझ सकता कि देश का हित बिना स्वतन्त्रता के नहीं हो सकता और हम लोग देश को स्वतन्त्र करते हैं। भारतवर्ष जो जाति, पांत और धर्म के बन्धन में पड़कर नष्ट हो गया था, हम उसको छुड़ाकर उन्नति पर लाने का प्रयत्न करते हैं।

डाकू—बाबू जी ! देश की उन्नति किस चिड़िया का नाम है और वह कितने पर का पक्षी है। क्या आप इस बात को जानते हैं, आप सोचकर देखें पक्षपात को छोड़ें। बाबू जी देश की उन्नति का यह अर्थ है कि देश का धन बढ़े, देश की विद्या बढ़े, देश की भाषा और रीति भांति सुधार पर रह कर देश के लिये उपयोगी सिद्ध हों। देश का बल बढ़े, मैं तो आप से किसी पदार्थ की उन्नति नहीं देखता। देश भाषा और रीति भांति के तो आप पूर्ण शत्रु हैं और देश का धन सर्वदा आप से हानि ही को प्राप्त होता है और देश का बल तो केवल हम लोगों के ही आधार पर है, अथवा आप लोगों के आधार पर है। आप लोगों में तो बल का नाम भी नहीं।

वकील—हम लोग स्पष्ट रीति से अपना काम करते हैं। समस्त देश के लोग और गवर्नमेंट हमारा दर्द करती है और तुम लोग सर्वदा छिपे रहते हो। समस्त देश और गवर्नमेंट तुम्हारी शत्रु, फिर तुम कैसे कह सकते हो कि तुम से देश को लाभ पहुँचता है और हम से हानि।

डाकू—साहब, जो मैंने ऊपर कहा था कि आप से देश का

किसी प्रकार का बल अर्थात् आर्थिक, शारीरिक एवं विद्या सम्बन्धी आदि नहीं बढ़ता, इसका तो आपने उत्तर नहीं दिया और यह जो आपने कहा कि 'गवर्नमेंट हमारा सन्मान करती है' इसका कारण यह है कि तुम देश को हानि तथा गवर्नमेंट को लाभ पहुँचाते हो ! रहा यह कि लोग आपका आदर करते हैं, सो वही जो आपको वास्तविक रूप में नहीं जानते, आपकी प्रशंसा करते हैं !

वकील—खैर, हमसे किसी का काम निकलता है, किसी से हमको लाभ पहुँचता है, यह तो आप मान चुके। परन्तु आप से किसको लाभ पहुँचता है। ऐसा तो कोई नहीं, जिससे प्रत्येक मनुष्य प्रसन्न रहे।

डाकू—महानुभाव ! पहिला दावा तो श्रीमान् का मिथ्या ठहरा कि हम से देश को लाभ पहुँचता है, प्रश्न यह था कि देश को किससे लाभ पहुँचता है और किससे हानि, सो देश को हानि और गवर्नमेंट को लाभ पहुँचाना आपने मान लिया और सर्व साधारण को हानि तथा जो कामवाला आपको रुपया दे, उसको लाभ पहुँचाना भी आपको मानना ही पड़ा। सुतराम् आपसे आपको लाभ पहुँचता है कि गवर्नमेंट को, देश को तो हानि ही पहुँचती है।

वकील—तुम्हारी व्यर्थ की बातों से क्या होता है, जब तुम्हारा काम पड़ता है तब तुम भी तो आकर हाथ जोड़ा करते हो, इस समय तुम चाहो जितनी बातें बनाओ परन्तु अन्त में—

डाकू—सत्य है, बाबू जी, सत्य अवश्य कड़वी लगती है, और काम पड़े पर तो हम स्वपच की भी विनय करते हैं ; परन्तु बात तो जब है कि कोई बिना प्रयोजन प्रशंसा करे, जिस प्रकार हम लोग औरों को रुपया देकर उनसे काम ले लेते हैं, इसी

प्रकार तुम से क्या, हमने तुम्हारे बुलाने के लिये दलाल नियत किये हैं, अथवा साइन बोर्ड (आदर्शपट) लगाया है, जिससे कि हमारी गरज (उद्देश्य) सिद्ध हो, इसके अतिरिक्त जब आप नहीं थे तब भी हमारा काम चलता था ; परन्तु यदि हम लोग अर्थात् मुक़द्दमेवाले न हों तो तुम्हारा काम चल ही नहीं सकता। बस तुम्हारे अन्नदाता और पोषक न हों तो क्या हो। तुमको हमसे प्रयोजन है, हमें तुमसे कोई नहीं।

प्रिय पाठकगण ! डाकू की यह बातें सुन कर वकील साहब तो यह कह कर कि ऐसे मूर्ख से कौन शिर मारे चुप हो गये ; परन्तु ज़मींदार बोल उठा।

ज़मींदार—अरे समझ कर बात नहीं करना, हमारी और तेरी समानता ही क्या ?

डाकू—सत्य है मेरी और आपकी समानता ही क्या मैं धनवानों में लूटता हूँ और तुम दीन कृषकों का ख़ून चूसते हो।

ज़मींदार—अरे हमने तो उन्हें धरती दी है, उनका पोषण करते हैं, न कि उनका ख़ून चूसते हैं।

डाकू—तुम उनका क्या पोषण करते हो, वरन् वह तुम्हारा पोषण करते हैं, वे नित्य प्रति श्रम करके खेत जोतने, कुएँ चलाते, बीज डालते, सारांश यह कि सर्व प्रकार के परिश्रम से कमाते हैं और तुम बैठे मौज उड़ाते हो। फिर डाकू ने दूकानदार से कहा कि कहो भाई मैं सत्य कहता हूँ कि नहीं।

दुकानदार—कैसे माना जावे कि सत्य कहता है, देखो, हम रुपये का माल देकर एक आना का फ़ायदा (लाभ) उठाते हैं, और तू मुफ़्त में उड़ाता है।

डाकू—तुम तो देश का बहुत-सा धन अपने थोड़े से हित के लिये विदेश को पहुँचा देते हो, मानो हम तो अपनी आवश्यकता-

नुसार दूसरों से लेते हैं, परन्तु तुम सोचो कि यदि तुमको दस रुपये का लाभ होता है, तो भारतवासियों को न्यून-से-न्यून तीन सौ की हानि होती है, फिर बताओ कि हम तुमसे किस प्रकार बुरे हैं, जब कि हम से देश की कोई हानि नहीं, केवल धनवानों से छीन कर निर्धनों को देते हैं और तुम धनी और दीन सबों से लेकर विदेशियों को लाभ पहुँचाते हो यह सुनकर दुकानदार आदिक ने कहा कि अच्छा आज तो जाते हैं, फिर किसी दिन बहस (विवाद) करेंगे।

समाज किस प्रकार चल सकता है

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

इस वेद मंत्र में ईश्वर जीवों को इस बात का उपदेश करते हैं कि यदि तुम अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हो तो अपने व्यवहारों को इस प्रकार चलाओ अन्यथा सफलता कठिन है, अर्थात् तुम सब मिलकर एक साथ चलो। अपने जीवन का उद्देश्य एक बनाओ; क्योंकि दो विरुद्ध स्थानों को जानेवाले कभी भी मिलकर चल ही नहीं सकते और जहाँ मिलकर चलने की शक्ति नहीं, वहाँ सफलता किस प्रकार हो सकती है; परन्तु संसार में देखा जाता है कि एक ही उद्देश्य रखनेवाले मनुष्य भी अज्ञान के कारण परस्पर झगड़ते हैं, जैसे कि जिसको संस्कृत में परमात्मा बताया है, उसी को यवन लोग खुदा कहते हैं; परन्तु एक ही पदार्थ होने पर भी वह उसे अर्श पर बैठा हुआ मानते हैं और संस्कृतवाले सर्वव्यापक मानते हैं, जो उसे एक ही स्थान पर बैठा हुआ समझते हैं, उन्हें उसके कामों को चलाने के लिये एजण्टों की आवश्यकता होती है; क्योंकि एकदेशी वस्तुओं में अपरिमित शक्ति नहीं हो सकती। इसलिये फ़रिश्तों और पैग़म्बरों (दूतों) से काम लेना पड़ता है; परन्तु सर्वव्यापक माननेवालों को किसी प्रकार के सहायक की आवश्यकता नहीं, अब एक ही पदार्थ के माननेवालों का भाषाओं के इस्तलाही (अर्थभेद) अन्तर से विरोध होना सम्भव था। अतः परमात्मा ने बताया कि तुम एक

ही भाषा को बोलो ; परन्तु एक ही भाषा के बोलनेवालों में भी विद्या की न्यूनता और अधिकता के कारण विरोध हो सकता है जैसे कि एक मनुष्य ने, लघुकौमुदी को पढ़ा है और दूसरे ने महाभाष्य। अब यद्यपि दोनों ने एक ही संस्कृत भाषा के व्याकरण को पढ़ा है ; परन्तु जहाँ वैदिक संस्कृत में व्यत्यय का नियम आवेगा दोनों में विरोध हो जायगा। क्योंकि जिसने 'लघुकौमुदी' पढ़ी है, उसको इस नियम का ज्ञान ही नहीं है, वह इस शब्द को अशुद्ध बतायेगा। जिसने महाभाष्य पढ़ा है, उसको ज्ञान है। अतः वह शुद्ध कहेगा। परिणाम यह होगा कि एक भाषा होते हुए भी उनमें भी विरोध हो जायगा, इसी कारण वेद ने कहा कि तुम सब एक सा ज्ञान उत्पन्न करो, अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम एक उद्देश्य बनाकर मिलकर चलने और एक भाषा बोलने तथा एक ही प्रकार की विद्या प्राप्त करने से काम किस प्रकार करें ? इसका उत्तर दिया कि जिस प्रकार देवता लोग एक ही यज्ञ में से अपना-अपना भाग ले लेते हैं, इसी प्रकार तुम काम करते हुए अपने प्रारब्धानुसार जो भाग मिले, उस पर सन्तोष रखो ; क्योंकि परमेश्वर प्रत्येक देह को बनाने के साथ ही उसके जीवन भर का भाँग बाँटते हैं, जैसा कि लिखा है। देखो ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ४८ मंत्र १

अहम्भुवं वसुनःपूर्व्यस्पतिरहं धनानिमंजयामि शश्वतः।
मांहवन्तेपितरं न जन्तवोऽहंदाशुषे विभजामि भोजनम् ॥

अर्थ—परमात्मा जीवों को उपदेश करते हैं कि मैं सम्पूर्ण जगत् के पहिले विद्यमान और समस्त संसार का पति हूँ और जगत के उपादान कारण प्रकृति और सम्पूर्ण धन को जीतने वाला हूँ, मैं ही मनुष्य को धन का देने हारा हूँ। जिस प्रकार सब

अज्ञानी जीव दुःख के समय अपने पिता को पुकारते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक जीवों को दुःखों से बचने के निमित्त मुझे पुकारना उचित है; क्योंकि जगत् को पालन करने के लिये सुखों को देनेवाले भोगों का बाँटनेवाला मैं हूँ, इसके अतिरिक्त यजुर्वेद अध्याय ४० के इस मंत्र से भी सिद्ध है कि ईश्वर के दिये हुए धन को मनुष्य भोगते हैं :—

"ईशा वास्य मिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्" ॥

अर्थ—"यह जितना जगत् अर्थात् संसार के पदार्थ हैं, समस्त ब्रह्माण्ड यह सब ईश्वर के रहने का स्थान है। संसार में कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ कि परमात्मा न हो। सब जीव उसी का दिया हुआ प्रारब्ध रूपी भोगते हैं, इसलिये तू किसी का धन लेने की इच्छा मत कर।"

प्रश्न—क्या प्रारब्ध को मान कर कर्म करना ही नहीं चाहिये ? यदि ऐसा ही मान लिया जावे, तो समस्त संसार पूर्ण आलसी हो जावे।

उत्तर—नहीं कर्म दूसरों की भलाई के लिये प्रत्येक समय करना उचित है, कभी भी परोपकार के कर्म से रहित नहीं रहना चाहिये; क्योंकि उसके करने में मनुष्य स्वतंत्र है; परन्तु अपना भोग बदलने के लिये कर्म करना निरी मूर्खता है; क्योंकि भोग पिछले कर्मानुसार परमात्मा का दिया हुआ है, जिस दुःख का भोगना ईश्वर ने नियत कर दिया है, उसका छूट जाना मानो परमात्मा की आज्ञा का टूट जाना है, जो कि असम्भव है। परमात्मा के निर्धारित अटल नियम काम कर रहे हैं। जो मनुष्य परोपकारार्थ काम करता है। वास्तव में वही मनुष्य अपने जीवन को यथोचित व्यतीत करता

है और जो अपने स्वार्थ साधन के लिये काम करता है, वह अपने जीवन को नष्ट करता है। जहाँ परमात्मा ने नियम का वेदों में वर्णन किया है, वहाँ मनुष्य को अपने शरीर में दिखा दिया कि दूसरों की भलाई के कारण अपने जीवन का साधन तथा अपने लिये काम करना मृत्यु है। जिस प्रकार संसार में समाज के अंग मनुष्य हैं, इसी प्रकार शरीर के अंग अर्थात् भाग इन्द्रियाँ हैं। जिस समय प्रत्येक इन्द्रिय दूसरा के लिये काम करती है, तब शरीर जीवित रहता है; परन्तु जब यह अपने लिये काम करती है, तब शरीर मृतक हो जाता है और देह के मृतक होने के कारण वह इन्द्रिय भी मृतक होती है। उदाहरणार्थ देह में चक्षु जो देखने की इन्द्रिय हैं, वह हाथ और पाँव को पदार्थ तथा मार्ग दिखाती हैं और देखने से स्वयं कुछ भी लाभ नहीं उठातीं। इसी प्रकार हाथ में जो उठाने की शक्ति है वह केवल दूसरों के हितार्थ है अर्थात् हाथ जो कुछ उठातीं है, उसे या तो मुख में डाल देता है या शरीर पर मल देता है या किसी दूसरे को दे देता है और अपने पास कुछ नहीं रखता। इसी प्रकार जो वस्तु मुख में डाली जाती है मुख भी उसे पेट को सौंप देता है आप कुछ भी नहीं रखता। यही दशा पेट की है, उस में जो कुछ डाला जाता है, वह उसका रस बना कर सम्पूर्ण शरीर को बाँट देता है, स्वार्थ नहीं करता इस प्रकार जब तक ये शरीर के भाग अपना काम दूसरे के लिये करते हैं, शरीर जीवित रहता है; परन्तु जहाँ इन में कोई इन्द्रिय स्वार्थी हो जाय, बस वह नाश का कारण होती है, जैसे यदि चक्षु यह विचार लें कि हम अपनी शक्ति का दूसरों के लिये व्यय न करेंगे, तो पाँव को मार्ग और हाथ को वह वस्तु न दीखेगी, जिसका परिणाम यह होगा कि हाथ उस वस्तु को न उठा सकेंगे; जब हाथ उठायेंगे नहीं, तो वह पदार्थ मुख में भी न जायगा और जब मुख में न जायगा, तो पेट में किस

प्रकार रस बनेगा और जब रस ही न बनेगा, तो सम्पूर्ण इन्द्रियाँ आहार न पहुँचने के कारण निर्बल हो जावेंगी, जिसका परिणाम मृत्यु होगा। तो कहना यह है कि एक आँख के स्वार्थ से सब शरीर का नाश हो जायगा।

इसी प्रकार यदि हाथ यह विचार करें कि मैंने जिस वस्तु को उठाया है, उसे अपने पास रखूँगा, किसी दूसरे को न दूँगा तो परिणाम क्या होगा? वही मृत्यु, क्योंकि हाथ मुख में वस्तु न डालेगा तो वह पेट में कहाँ से देगा और जब पेट में आहार न जायगा तो रस किस प्रकार बनेगा, और जब रस ही न बना तो किस प्रकार इन्द्रियों को आहार मिलेगा। हाथ स्वयं भी रस न मिलने के कारण अपनी शक्ति का नाश करेगा, इसी प्रकार आप मुख और पेट के स्वार्थ पर भी विचार कर लीजिए, परमात्मा ने शरीर को समाज का चित्र बनाकर स्पष्ट रूप से दिखा दिया है कि जिस समाज में एक सभ्य भी स्वार्थी हो जायगा, वह समाज अवश्य नष्ट हो जायगी और साथ ही साथ वह सभ्य भी। कतिपय मनुष्य परोपकार का अर्थ अपनी जाति का उपकार ही करते हैं; परन्तु यह विचार भी नाश का हेतु होता है। क्योंकि अपना और पराया यह दो विरुद्ध हैं। अतः जो अपना है वह पराया कैसे हो सकता है, इस कारण जब निज जाति पराई नहीं तो उसका उपकार परोपकार किस प्रकार कहा सकता है। इसीलिये परमात्मा ने शरीर रूपी चित्र में दिखा दिया है कि अपनी जाति के उपकार से उन्नति होना अति कठिन ही नहीं वरन् नितान्त असम्भव है। उदाहरणार्थ इस शरीर में दो प्रकार की इन्द्रियाँ हैं, एक ज्ञानेन्द्री दूसरी कर्मेन्द्री है, यह मानों दो जाति विद्यमान हैं। आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पाँव, जिह्वा, गुदा एवं उपस्थ यह पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, यदि

ज्ञानेन्द्रियाँ यह विचार लें कि अपनी जाति का ही उपकार करना हमारा कर्त्तव्य है तो वह ज्ञानेन्द्रियों की ही सहायता करेंगी, जिसका परिणाम समय को नष्ट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि यदि आँख नाक की सहायता करना चाहे तो उससे नाक को क्या लाभ हो सकता है? क्योंकि आँख में जो देखने की शक्ति है, उससे नाक कोई भी लाभ नहीं उठा सकती। हाँ, यदि वह हाथ पाँव की सहायता करे, तब तो उससे भी लाभ हो और साथ ही साथ सम्पूर्ण शरीर को भी। क्योंकि ज्ञानेन्द्रिय जिससे लाभ उठा सकती है, वह शक्ति कर्मेन्द्रिय में तो है; परन्तु ज्ञानेन्द्रिय में नहीं, यही कारण है कि आजकल योरोपीय जातियाँ जो अपनी जाति के हित का ही ध्यान रखती हैं, इस समय ऐसी भयानक स्थिति में हैं कि दिन रात तोप, बंदूक डायनामेंट के गोले तथा बिना धुआँ की बारूद बनाने पर भी उनके हृदय से युद्ध का भय दूर ही नहीं होता और वह अपनी वर्त्तमान उन्नति को जिसे कि भारतवासी बहुत ही उत्तम समझ रहे हैं, अपने लिये पर्य्याप्त नहीं समझते। इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है कि तोप, बन्दूक और डायनामेंट के गोले मानवी आवश्यकता नहीं हैं, वरन् मानवी जातियों को भय का रोग लग रहा है और उससे बचने का उपाय इसे लोग समझे हुए हैं। परन्तु यह भी भ्रम है; क्योंकि ऐसी वस्तुयें जितनी एक जाति बनाती है; दूसरी भी उससे बचने के लिये उससे भी विशेष इसी प्रकार के पदार्थ बना लेती है, और तीसरी उससे भी अधिक। सारांश यह कि इसी प्रकार की खेंचातानी अन्त समम तक होती रहेगी; परन्तु इसकी चिकित्सा योरोप वालों की शक्ति से परे है, क्योंकि उन्हें सर्वदा अपनी जाति को दूसरी जाति से बढ़ाने का विचार रहता है, जिसके कारण ईर्षा, द्वेप उत्पन्न करके, लड़ाकर मारने के

अतिरिक्त और कोई फल नहीं निकल सकता। इसलिये यावत् समस्त संसार को एक ही दृष्टि से न देखा जावे, प्रत्येक की उन्नति में अपनी उन्नति न समझी जावे और प्रत्येक मनुष्य यह न समझ ले कि मेरा अस्तित्व मेरे लिये नहीं, वरन् दूसरों के उपकार के हेतु है तावत् मनुष्य समाज शान्ति से नहीं चल सकता और न मनुष्य असफलता के कष्ट से बच सकता है। जो लोग दूसरों के लिये बिना किसी स्वार्थ के काम करते हैं, उन्हें असफलता हो ही कैसे सकती है, क्योंकि यदि कोई इच्छा होती है तो उसके पूर्ण न होने से असफलता कहाती है, परन्तु जब कि कोई कामना ही नहीं तो असफलता कैसी? इसीलिये महात्मा भर्तृहरि ने कहा था:—

एके सत्पुरुषाः परार्थ घटकाः स्वार्थंपरित्यज्य ये। सामान्यास्तु परार्थ मुद्यमभृतः स्वार्था विरोधेन ये॥ तेऽमी मानुष राक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्त ये। ये निघ्नन्त निरर्थकं परहितं ते के न जानी महे ॥७८॥

अर्थ—मनुष्य चार प्रकार के हैं—एक तो सत्पुरुष अर्थात् देवता हैं, जो अपने जीवन को सफल करते हैं और जीवन से पूर्ण लाभ उठाते हैं। वह कौन हैं जो अपने जीवन में स्वार्थ छोड़कर परोपकार में लगते हैं। क्योंकि दाना खेत में डालकर नाश न किया जावे उस समय तक उससे बाल उत्पन्न नहीं हो सकती? जो बीज गलता है वही फलता है, जो गलता नहीं सो फलता भी नहीं! परन्तु जब पृथ्वी के नीचे जाकर बीज गलता है तभी फलता है। पृथ्वी के ऊपर गलने से भी नहीं फलता, इसी प्रकार यदि कोई परोपकार करके भी प्रकट करता फिरे अथवा सम्मान और कीर्ति की कामना रखे तो लाभ नहीं हो सकता?

उस सम्पूर्ण बलिदान का फल उस कीर्ति में ही समाप्त हो जाता है। दूसरे वह मनुष्य हैं जो अपनी हानि न करके दूसरों को लाभ पहुँचाना चाहते हैं, ऐसे साधारण मनुष्य हैं; परन्तु जो अपने हित के लिये दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, वह राक्षस कहाते हैं। आर्य्य-गण! क्या आप में ऐसे मनुष्य नहीं हैं, जो अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये दूसरों को हानि पहुँचा रहे हैं? चौथे वह हैं कि बिना किसी लाभ के भी दूसरों को हानि पहुँचाना चाहते हैं। वेद तो यह बताता है कि सबका भला करने से ही अपना भला होगा! प्राकृतिक नियम कहता है कि गलने से ही फल सकते हैं; परन्तु हम हैं कि वैदिक धर्म में उन्नति करना चाहते हैं पर सबको अपने समान समझने के लिये प्रस्तुत नहीं! मिथ्या जाति अभिमान दिन रात हमारे मस्तिष्क को चक्कर देता है। काम पड़े पर कलवारों तक की नहीं, चमारों तक की खातिर (सत्कार) करें। यदि कोई मनुष्य जिसे हम अपनी मूर्खतावश नीच कहते हैं, तहसीलदार अथवा डिप्टी कलेक्टर होकर आ जाय और हम कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने का अभिमान रखते हुए अपनी थोड़ी विद्या अथवा गुण कर्म के कारण उसके नीचे हों, तो क्या हम सलाम (प्रणाम) नहीं करते? अवश्य करते हैं। उसको आफ़ीसर नही जानते? अवश्य जानते। क्या उसकी आज्ञा पालन नहीं करते? अवश्य करते हैं! हाँ! फिर वैदिक धर्म ने ही कोई अपराध किया है कि आप गुण-कर्म-स्वभाव से वर्ण मानने के लिये अपने जाति अभिमान को त्याग के लिये तैयार नहीं! आप लोगों की इस निर्बलता और स्वार्थ ने ही वैदिक-धर्म को इस अवनति की दशा में पहुँचा दिया है कि राधा-स्वामी और थ्योसोफ़िकल सोसाइटी आदिक जो वैदिक धर्म के सामने कुछ नहीं, इसको पलटा देते हुए चले जा रहे हैं।

यदि आपका यह विचार हो कि वैदिक-धर्म को हानि पहुँचा कर आप स्वयं कोई लाभ उठा सकें, तो यह आपका भोलापन है। जिस प्रकार एक इन्द्री स्वार्थ के कारण देह को हानि पहुँचा कर आप भी नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार आप भी जाति अभिमान को लिये हुए वैदिक-धर्म को हानि पहुँचा कर स्वयं भी गिर जायँगे। यदि आप वैदिक-धर्म की रक्षा के लिये जाति अभिमान को भी नहीं तोड़ सकते, तो धर्म के लिये तन, मन, धन किस प्रकार दे सकोगे? प्यारे ब्राह्मण, क्षत्री कहलानेवाले भाइयो! क्या तुम्हारा इस प्रकार वैदिक-धर्म को हानि पहुँचाना तुम्हारे लिये हितकर होगा? क्या तुम ऋषियों की सन्तान होने का दावा करते हुए इस स्वार्थ को न छोड़ कर ऋषियों के नाम को कलङ्कित नहीं कर रहे हो? क्या जाति अभिमान आपको अमर कर देगा? क्या मृत्यु समय इस मिथ्या जाति अभिमान से कोई काम निकलेगा? क्या कोई स्वार्थ को न छोड़ कर भी परोपकारी ऋषियों की सन्तान होने का दावा कर सकता है? प्रथम तो आप इस अधर्म प्रणाली को समाजों में चलाही नहीं सकते। जब आपकी चाल लोगों पर प्रकट हो जायगी, तो वे ब्राह्मण जाति से घृणा करने लगेंगे। जिस प्रकार कि लोग पण्डित भीमसेनजी के गुरु द्रोही और स्वार्थी होने से खिन्न हो गये और आज कोई भी उनका विश्वास नहीं करता, यही दशा आपकी होगी। सुतराम् जाति अभिमान और स्वार्थ को त्याग कर संसार का उपकार करते हुए आदर्श बन कर दूसरों को परोपकारी बनाओ, जिससे कि समाज की जय हो।

भोला यात्री

प्यारे पाठकगण ! एक बार एक भोला पथिक घर से बहुत से रत्न लेकर इस बात के लिये निकला कि दूसरे देशों में जाकर इनको बेचकर ऐसी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ खरीदकर लाऊँगा, जिससे बहुत लाभ होगा। वह बेचारा अभी घर से थोड़ी दूर गया ही था कि उसे भाँग का वन मिला, उसे उस समय दातून करने की जरूरत हुई। उसने इधर-उधर देखा तो सिवाय भाँग के और कोई पेड़ न पाया, लाचार होकर उसी की एक डाली तोड़कर दातून करनी आरम्भ कर दी, यद्यपि यह यात्री जानता था कि भाँग मादक वस्तु है और उसके पीने से मनुष्य बेहोश हो जाते हैं; लेकिन इसे उतना ज्ञान न था कि इसकी दातून करने से भी वह बेहोश हो जायगा। अन्त को थोड़ी देर में उसे नशे ने बेहोश कर दिया और वह अपने मूल अर्थ को बिलकुल भूल गया। उसे यह ध्यान बिलकुल न रहा कि मैंने भाँग का प्रयोग किया है और वहाँ से झूमता-झामता मस्ती से स्वयं बुद्धिमान् व्यापारी सचमुच पागल बनकर चला। थोड़ी देर में किसी शहर में पहुँच गया। शहर के लड़कों ने इसे बेहोश समझकर उसकी हँसी उड़ानी शुरू की। उसने उन्हें डाटा और कहा कि क्या तुम मुझे पागल समझते हो, लड़के उसकी इस बात पर हँस पड़े और उन्होंने कंकड़ उठाकर मारने शुरू कर दिये। यह भोला पथिक उन लड़कों के कंकड़ों से बचने के लिये एक मकान में जा छिपा लेकिन उस मकान में चन्द खिड़कियाँ थीं, जिनके बन्द करने की शक्ति उस भोले पथिक में नहीं थी। जब उसने देखा कि यहाँ

भी कंकड़ बराबर हानि पहुँचा रहे हैं तो उसने यह सोचकर कि अगर कंकड़ वापस फेकूँगा तो यह कंकड़ कभी समाप्त न होंगे, अपने लाल लड़कों की तरफ मारने शुरू कर दिये। लड़कों ने उसके लालों को उठाना शुरू कर दिया और यह समझकर कि इसके लाल अवश्य समाप्त हो जायगे खूब जोर-जोर से जल्दी-जल्दी कंकड़ फेंकने लगे और उनकी इस बात को देखकर इसने भी जल्दी-जल्दी लाल फेंकने शुरू कर दिये, आखिर थोड़ी देर में इसके तमाम लाल पूरे हो गये और इस बिचार में जो उन लड़कों के कंकड़ों से पैदा हुआ था, कुछ देर में उसका नशा भी उतर गया अब तो उसे अपनी भूल और पागलपन का हाल मालूम हुआ ; लेकिन अब क्या हो सकता था, लड़के तमाम लाल लेकर भाग गये थे जिनमें अब एक भी वापस आना सम्भव न था, अब व्यापारी हैरान था कि क्या करे और किस मुँह से अपने शहर में वापस जावे।

प्यारे मित्रो ! उस भोले पथिक की दुर्दशा पर आपको कैसा खेद होता होगा। क्या आपका दिल उसके भयानक मामले से कुछ उपदेश प्राप्त करना चाहता है अथवा आप इस मामले को देखकर भी कोई नतीजा निकालना नहीं चाहते। क्या तुम उस पथिक के मूल कारण को मालूम करना चाहते हो कि वह कौन था ? और कहाँ से आया था ? क्या तुम्हें उस शहर के लड़कों से जान-पहचान करनी जरूरी मालूम होती है या नहीं कि जिन्होंने इस भोले यात्री के कुल लाल कंकड़ मार-मारकर छीन लिये थे। क्या तुम्हें इस यात्री के मन्द भाग्य पर कुछ अफ़सोस भी आता है या नहीं यदि तुम में से किसी एक के साथ यही मामला पेश आये तो तुम्हारी क्या हालत हो। पहले तो हमारे बहुत से पाठकगण ऐसे होंगे जिनको इस पथिक की तरह भांग आदि नशे के प्रयोग से

ज़रा भी होश न होगा, जो कुछ होशमन्द आदमी होंगे वह कह उठेंगे कि इस प्रकार के यात्री की हालत बेशक काबिल अफ़सोस है। हाँ क्या तुम ऐसे लड़कों से जिन्होंने कंकड़ फेंकर भोले यात्री के लाल छीन लिये, कभी मिलना पसन्द करोगे। मेरे ख़्याल में तो कोई उनसे मिलना पसन्द नहीं करेगा। क्या तुम्हारे पास भी अगर ऐसे ही लाल हों और इस क़िस्म के लुटेरे लड़के तुम्हारे साथ लगे हों, तो क्या तुम उनको दूर भगाने की कोशिश करोगे। अगर तुम उनको सचमुच दूर भगाना चाहो, तो हम तुम्हें बतलावें कि वह भोला पथिक कौन है और उसके लाल क्या हैं? लड़के कौन हैं? उसके कंकड़ किस तरह के हैं? और किस तरह यह भोला यात्री भाँग के प्रयोग मे बेहोश हो जाता है, तो हम तुमको यह तमाम बातें बतलाये देते हैं, इस मामले मे डर जाना या फल निकालना तुम्हारे वश में है।

प्यारे मित्रो! यह जीवात्मा ही भोला पथिक है। आप शंका करंगे कि भोला तो मूर्ख होता है, तुम इस ज्ञानस्वरूप जीवात्मा को किस तरह भोला बतलाते हो। इसका जवाब यह है कि भोला थोड़े ज्ञानवाले को कहते हैं बिलकुल जड़ को नहीं कहते चूँकि जीवात्मा अल्पज्ञ है, इसलिये इसे भोला कहा गया। अब आप फिर कहेंगे कि जीवात्मा को मुसाफ़िर क्यों कहा, इसका जवाब यह है कि जो परिमित और थोड़े शंकाओं को पूरा करने के लिये क्रिया किया करे उसे यात्री कहते हैं; क्योंकि सर्वव्यापक को पथिक कह सकते हैं।

जीवात्मा ही भोला पथिक है और ये जीवात्मा अपनी आयु के साँस जो बहुमूल्य लाल हैं, उनको लेकर इस संसार में नेकी या ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने का सौदा ख़रीदने के लिये आता है जिससे वह अपने आपको अल्पज्ञ से सर्वज्ञ बना ले;

लेकिन इस संसार में जो प्रकृति भाँग का बन है जीवात्मा उसकी शरीर रूपी दातून को ग्रहण करता है वहीं उसका ज्ञान कम होने लगता है। यद्यपि जीवात्मा जानता है कि इस प्रकृति से ज्ञान प्राप्त नहीं होता ; बल्कि अज्ञान मिलता है ; लेकिन तो भी वह अपने शरीर को प्राकृत न समझ कर उसका बहुत देर तक रहना पसन्द करता है और जितनी अधिक देर तक जीवात्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है, उतनी ही अधिक उसे अज्ञानता और मूर्खता बढ़ती जाती है और वह अधिकतर फँसता चला जाता है।

प्यारे पाठकगण ! जीवात्मा की अवस्था ऐसे बहुमूल्य लाल हैं कि यदि चक्रवर्ती राजा या बड़ा भारी शाहंशाह अपनी मृत्यु के समय अपनी सारी हुकूमत और धन के बदले पाँच मिनट जीवन भी माँगे, तो सम्भव नहीं कि वह किसी पर भी उसको प्राप्त कर सके, इसलिये मनुष्य का जीवन बहुत ही बहुमूल्य लाल हैं ; लेकिन यह अल्पज्ञ जीवात्मा अपनी भूल से जो प्रकृति के सम्बन्ध से पैदा हो चुकी है, ऐसे जीवन की क़दर नहीं जानता और जब वह संसार के शहर में प्रकृति के सम्बन्ध से बेहोश होकर आता है या पाँचों भूत जो इस संसार के शहर के लड़के हैं। जीवात्मा को मूर्ख देखकर अपने-अपने गुणों के कंकड़ जो विषय रूप हैं, इस जीवात्मा को मारना शुरू करते हैं, तब जीयात्मा इन प्राकृत असरों से बचने के लिये शरीर रूपी मकान में दाखिल हो जाता है ; लेकिन इस शरीर में चन्द खिड़कियाँ हैं, जिन्हें इन्द्रियाँ कहते हैं ये पञ्चभूत अपने गुणों के कंकड़ों को इन्द्रियों के द्वारा जीवात्मा पर फेंकते हैं और जीवात्मा अपनी बेहोशी में इन कंकड़ों के बदले अर्थात् विषय भोग में जो भूतों के गुणों से हासिल होता है अपना थोड़ा-थोड़ा वक्त देना शुरू करता है और समझता है कि ये विषय तो खतम हो जावेंगे ; लेकिन मेरा जीवन का वक़्त पूरा नहीं होगा

इस तरह जीवात्मा अपनी सारी आयु इन विषयों के बदले ख़र्च कर डालता है, जब मृत्यु निकट आती है, तब इसे होश आता है कि शोक मैंने अपनी सारी उमर निष्प्रयोजन ही खो दी, उस समय उसका कुछ इलाज नहीं हो सकता ; क्योंकि जो जिन्दगी विषयों के बदले ख़र्च हो गई है, वह किसी तरह वापस नहीं आ सकती, जब जिन्दगी नहीं वापस आती तो जीव को सिवाय अफ़सोस के क्या मिल सकता है। किसी कवि ने सच कहा है।

"गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं"

प्यारे मित्रो ! क्या तुमको अपनी सारी उमर उस भोले पथिक की तरह खोकर अफ़सोस करना पड़ेगा या तो बीच में जब बहुत कुछ बाकी है, व्यतीत हुए को छोड़कर भविष्यत् का प्रबन्ध कर लोगे और अगर तुम अपने जीवन को बचा लोगे तो तुमसे बढ़कर कोई अहोभाग्य नहीं ; क्योंकि ज़िन्दगी का थोड़ा वक़्त भी ऐसी चीज़ है, जिसे आइन्दा की उम्मेदों को पूरा करने की तरफ़ लगा सकता है और इस आदत के घोड़े की ज़रा-सी लगाम फिर जाने पर उसकी चाल में ज़मीन आसमान का अन्तर आ जाता है, क्या हमको दूसरों की हालत देखकर पाप से न बचना चाहिए, देखो महमूद गज़नवी बादशाह जैसे संसार पर जुल्म करके रुपया इकट्ठा करते हुए चले गये, क्या वह रुपया उनके साथ गया, क्या उस रुपये पर उनको अब भी स्वत्व है, क्या उस रुपये से उनको अब कुछ फ़ायदा हो सकता है, हरएक मनुष्य कहेगा बिलकुल नहीं अगर दर हकीकत ये दुनिया के विषय और माल व दौलत की कामनायें ऐसी खराब चीज़ हैं कि जिससे मनुष्य को फ़ायदे के बदले नुकसान पहुँचता है तो क्यों आप उसे खुद छोड़कर स्वतंत्रता हासिल नहीं करते।

प्यारे मित्रो ! कैसे खेद का स्थान है कि हम दूसरों को मूर्ख

कहते हैं और स्वयं मूर्खता के काम करते हैं। हम जानते हैं कि संसार की झूठी धूम से हमें कुछ फ़ायदा नहीं होगा जब तक कि यथार्थ में हमारी आत्मा शान्त न हो जावे; लेकिन क्या हम कभी आत्मा की शान्ति का प्रयत्न सोचते हैं, क्या हम उन पर अमल करते हैं? बिलकुल नहीं इससे बढ़कर और कोई बेवक़ूफ़ी नहीं हो सकती है। बहुत से नहीं करीबन कुल संसार के मनुष्यों को यह भी मालूम नहीं कि हमारा उद्देश्य क्या है। अनपढ़ और मूर्ख ही इस रोग में ग्रसित वरन् नहीं हैं। बड़े-बड़े विद्वान् और ज्ञानवान् बी० ए० साइंटिस्ट और फिलास्फर भी इस रोग से नहीं बचे। वह हर एक आदमी को पैदा होना और मरता देखते हैं और जागने की हालत में फिकर, डर और दुख को समझते हैं और सोते हुए बिलकुल आराम पाते हैं; लेकिन इस साइंस से नतीजा कुछ भी नहीं निकालते। कैसे शरम की बात है कि दुनिया के आलिम हैं लेकिन अपना इल्म नहीं रखते और न विद्या के अर्थ को ही जानते हैं। साइंस पढ़ी है लेकिन अपनी साइंस को बिलकुल नहीं जानते और न साइन्स के उन फ़ायदों को जो जागने और सोने से मालूम करना चाहिए, समझ सकते हैं। पण्डित है लेकिन पंडितपने का असर सिर्फ दूसरों पर असर रखता है। अपने हाल से कुछ सम्बन्ध नहीं।

प्यारे पाठकगण! अगर गौर से सोचा जावे तो इस संसार में बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो उस भोले मुसाफिर की तरह अपने कीमती वक्त को बर्बाद नहीं करते। बहुत आदमी दौलत के बदले अपना वक्त खोते हैं और वह अपने आपको बड़ा अकलमन्द मानते हैं। नहीं-नहीं बल्कि दुनिया के लोग भी उन्हें दाना और कारीगर जानते हैं; लेकिन क्या दौलत के बदले वक्त खोनेवाला सचमुच अकलमन्द है हमारे ख़्याल में तो इससे बढ़कर

कोई भी गलती नहीं ; क्योंकि जिस ज़िन्दगी से हम दौलत खरीदते हैं अगर वह ज़िन्दगी दौलत से हासिल हो सकती तो हम मान लेते कि बेशक धन मिलना जीवन का व्यर्थ खोना नहीं, लेकिन हम दौलत से जीवन प्राप्त होता नहीं देखते। बड़े-बड़े राजा और ज़ार जैसे बादशाह चालीस-चालीस लाख फ़ौज और तोप-खाना रखते हुए करोड़ों रुपयों की मालियत होने पर संसार से खाली हाथ जाते हैं। न तो इस दौलत से ज़िन्दगी वापस मिल सकती है और न ये दौलत ही साथ जाती है। फिर दौलत के बदले ज़िन्दगी खोने वाले को बेवकूफ़ न कहें, तो और क्या कहा जावे। हमारे बहुत से मित्र आक्षेप करेंगे कि क्या दौलत कमाना बुरी बात है। अगर दौलत न कमावें, तो संसार के व्यवहार कैसे चल सकते हैं ?

प्यारे पाठकगण ! ऐसा कहनेवाले हमारे मित्र सचमुच भोले मुसाफ़िर हैं, वह नहीं जानते कि जेलखाने की मज़बूती और स्वतंत्रता हासिल करने मे क्या सम्बन्ध है ; क्योंकि जिस क़दर जेलखाना मज़बूत होगा उसी क़दर स्वतंत्रता मुश्किल हो जायगी इसी तरह जिस क़दर संसारी सामान अधिक होंगे उसी क़दर मुक्ति दूर होती चली जायगी ; लेकिन बाज़े दोस्त कह उठेंगे कि संसार को जेलखाना कहना तुम ऐसे ख़ब्ती का काम है वरना दुनियाँ तो ऐश व आराम की जगह है ; लेकिन यह दोस्त बहुत ही भोले हैं ; क्योंकि वह नहीं जानते कि दुनियाँ क्या चीज़ है। अगर दुनियाँ ऐश की जगह होती, तो कोई भी एक हालत को छोड़ना ही पसन्द न करता ; क्योंकि संसार में हर आदमी अपनी हालत पर सन्तुष्ट नहीं, जिससे मालूम होता है कि वह जिस हालत में है वह उसे पूरा आराम और ऐश न समझता और न अपनी हालत को अपनी ज़िन्दगी का उद्देश्य ख़याल करता है बस जब कि कोई शख़्स अपनी हालत अपनी ज़िन्दगी का उद्देश्य नहीं जानता और उसको

छोड़कर आगे चलने की कोशिश करता है, तो साफ़ मालूम होता है कि संसार मनुष्य की जिन्दगी का उद्देश्य नहीं सिर्फ़ बीच का रास्ता है। अगर कोई मुसाफिर राह में आराम करता है, तो मंजिल में ही पड़ा रहता है। सफर मिस्ल सिफर है वह जगह आराम की कहना ग़लती है।

प्यारे पाठकगण! संसार में मनुष्य की उमर से बढ़कर कोई क़ीमती चीज नहीं। मनुष्य जो कुछ ख़रीदता है वह उमर के बदले ख़रीदता है चूँकि बुद्धिमान् और ज्ञानी मनुष्य अपने थोड़े समय से बहुत ज्यादा फ़ायदा उठाता है और बेवकूफ़ तथा मूर्ख आदमी अपने बहुत से वक्त से बहुत थोड़ा फ़ायदा उठाता है, जिससे मालूम होता है कि मनुष्य की अवस्था में जिस क़दर ज्यादा इल्म होगा उसी क़दर अधिक कीमत होगी। मसलन जो आदमी बिलकुल अनपढ़ और अज्ञान है वह दिन भर में मिहनत करके चार रुपये माहवार पैदा कर सकता है और अगर उसे जरा भी इल्म हो जावे तो वह आठ तक पहुँच जाता है। इसी तरह कारीगर और व्यापार का इल्म रखनेवाला सौ-पचास रुपया माहवारी पैदा करता है और जहाँ तक इल्म बढ़ाता है वहाँ तक मिहनत कम और फ़ायदा ज्यादा होता है। जिससे साफ़ मालूम होता है कि मनुष्य की क़दर बक़दर उसकी इल्मियत के होती है या यह कहो कि जिस कदर इलम होता है उसी क़दर वह उम्र की कदर को जानता है; लेकिन अफ़सोस तो यह है कि हम चाहे किसी कदर संसारी इल्म हासिल कर लें तो भी हम अपनी उमर की कदर को नहीं जान सकते और यही वजह है कि हम अपनी उमर के बेश-कीमती जवाहरात बहुत कम कीमती चीज़ों के बदले में बेचते हैं।

प्यारे पाठकगण! ये तो आपको हम पहले बता चुके हैं कि जिन्दगी का एक दिन भी बड़े-बड़े राज्यों के बदले नहीं मिल

सकता तो हम चाहें लाख रुपया माहवार क्यों न तनख्वाह पावें तो भी वह हमारी ज़िन्दगी की असली क़ीमत नहीं हो सकती। इससे साफ़ मालूम होता है कि संसार के सम्पूर्ण मुसाफिर चाहे वह अपने आपको कैसा ही बुद्धिमान् क्यों न मानते हों दरहक़ीक़त भोले मुसाफ़िर हैं। क्या ऐसे भोले मुसाफ़िर जो अपनी ज़िन्दगी की कीमत और अपने उद्देश्य या मार्ग की रुकावटों से नावाक़िफ़ हैं, किसी तरह काबिल पैरबी हो सकते हैं? बिल्कुल नहीं, खुद अज्ञानी दूसरों को क्या समझा सकता है। जो खुद भूले हुए हैं उनसे मार्ग बताने की क्या उम्मीद हो सकती है, इस वास्ते संसार के ख्वाहिशमन्द जो मनुष्य जीवों की कदर से नावाकिफ़ हैं, उनकी पैरवी करना हर एक मनुष्य के वास्ते हानिकारक है। मनुष्य का फ़र्ज़ है कि वह ऐसे मुसाफिरों की तलाश करे जो उद्देश्य और उसके रास्ते से ठीक-ठीक वाकिफ हों और साथ ही राह के लुटेरों और धोखेबाज़ों के हालत से भी जानकार हों जिनको न तो शहर दुनियाँ के लड़के सता सकते हों और न वह अपने मकान की मोरियाँ बन्द करके उन लड़कों से बचने का भी इलाज जानते हों।

प्यारे पाठकगण! इस संसार में केवल योगी और वह लोग जिन्होंने संसार को त्याग दिया है। तालीम की उत्तम दौलत से मनुष्य जीवन के उद्देश्य को ठीक तौर पर जान लिया है और जिनको इस मञ्जिल का रोशन रास्ता यानी वैदिक धर्म का भी ज्ञान है और वह अपने मकान की खिड़कियों को बन्द करने अर्थात् इन्द्रियों को भी रोकने की लियाकत रखते हैं। इस किस्म के महात्मा योगी इन भोले मुसाफिरों के वास्ते काबिल पैरवी हो सकते हैं। जिनके पीछे लगकर ये लोग भी अपने उद्देश्य को पहुँच जावें ऐसे मनुष्यों की पहचान यह है कि वह अपनी

जिन्दगी की कदर को जानकर किसी संसारी चीज़ के बदले में तो नहीं बेचते बल्कि दूसरे लोगों की तरक्की में अपने बेशकीमती समय को खर्च करते हैं। जो अपनी इज्ज़त, हुकूमत और नामवरी इत्यादि किसी किस्म की ग़र्ज को देखकर संसार में काम करते हैं। वह तो दुनियाँ के बन्दे और भोले मुसाफिर हैं, उनके पीछे लगना जिन्दगी को ख़राब करना है और जो लोग संसार से अलग और बन्देखुदा हैं, जिनकी इन्द्रियाँ उनके इख्तियार में हैं और जो अपनी आत्मा को शरीर का राजा समझते हैं और तमाम इन्द्रियों और मन को उसकी खिदमत का साधन समझते हैं और उसके मार्ग अर्थात् धर्म के खोज में रात दिन लगे रहते हैं, उनको वक्त से अधिक प्यारा सिवाय धर्म के और कोई चीज नहीं। वह किसी संसारी चीज़ के बदले अपनी जिन्दगी का प्यारा वक्त नहीं खोना चाहते हैं, उनके ख्याल में तमाम दुनियाँ की चीज़ें तुच्छ हैं। वह आत्मा की उन्नति के सच्चे साधन का इल्म हासिल करके उसको पूरे तौर से करते हैं।

प्यारे पाठकगण! अब आप सोच लें कि आप अपने आपको भोला मुसाफिर बनाकर मार्ग में लुटवाना पसन्द करते हैं या अपनी जिन्दगी के उद्देश की तरफ़ चलकर सच्चे सुख को हासिल करना चाहते हैं, भोले मुसाफिर की तरह नशे की दशा में तो आपको संसार की ख्वाहिश अच्छी मालूम होगी लेकिन उसका नतीजा मिलने पर आप सिवाय अफसोस के और कुछ भी न कर सकेंगे इसलिये आपका फर्ज है कि उद्देश्य और मार्ग की तलाश के वास्ते वैदिक सूर्य्य की रोशनी को हासिल करें और इस रोशनी के सहारे बराबर अमल करते जावें जब तक कि आप उस मञ्जिल पर न पहुँच जावें जो शारीरिक जीवन का उद्देश्य है।

भोगवाद

संसार में कार्य करने के लिये जब तक मनुष्य चिन्ता रहित नहीं, तब तक अपना कार्य नहीं कर सकता। चिन्ता उसके कार्य (अप्राप्त इष्ट) तक चलने में पग-पगपर रुकावट डालती है, कभी उसको प्यास का ध्यान, कभी क्षुधा का भय, कभी मृत्यु का भय, पग-पगपर सङ्कल्प बदलता है और संसार के सम्बन्ध अनन्त हैं, उनको समाप्त करके अप्राप्त इष्ट की ओर चलना असम्भव है। निदान न तो कोई मनुष्य इन वर्तमान कार्यों को समाप्त कर सकता है और न उस मुक्ति के लिये साधन करने का अवकाश मिल सकता है, निदान मनुष्य आगे के लिये निराश हो रहा है, परन्तु ईश्वर हमारे सामने एक और दृश्य सम्मुख करता है, जिसको देखकर मनुष्य की आशायें पुनः हरी-भरी हो जाती हैं अर्थात् एक मनुष्य कृषि करता है जब उस बोनेवाले मनुष्य को कोई दृष्टिगोचर करता है तो उसे ख़याल आता है कि यह बड़ा ही मूर्ख है जो अपने आहार को पृथ्वी के ऊपर बखेर रहा है; परन्तु थोड़े काल में जब कृषि पक जाती है तब वह मनुष्य जिसने अपने अन्न को प्रत्यक्षवादि होने के कारण पृथ्वी पर नहीं डाला था क्या देखता है कि बोनेवाले ने जितना बीज बोया था, उससे सतगुणा अन्न अपने घर में ला रखा है और जो अपने अन्न का केवल खाने में ही व्यय कर रहा था, उसका अन्न कम हो गया, निदान खाने का नाम भोगना और बोने का नाम कर्म समझना चाहिए।

यद्यपि प्रत्यक्ष में खानेवाला अपने अनाज को ठीक ही काम

में लाता है और बोनेवाला ठीक नहीं काम में लाता; क्योंकि अन्न क्षुधा के लिये ही बनाया गया है : परन्तु वास्तव में बोने वाला अपनी आयु के आगे का प्रबन्ध करता है; क्योंकि केवल प्रत्यक्षवादि ही नहीं, परन्तु खानेवाला यद्यपि अन्न को ठीक प्रकार से सेवन करता हुआ सम्मुख है तथापि वास्तव में अपनी आगे की दशा को खराब कर रहा है; क्योंकि वर्तमान सामान तो किसी न किसी दिवस समाप्त होनेवाला है; क्योंकि इसमें खाने से अल्पता होती है और उन्नति का मार्ग जो बोना है उसे प्रत्यक्ष अर्थात् वर्तमान दशा में निष्फल जानकर उसने छोड़ दिया है वास्तव में संसार में मनुष्यों की बुद्धि दो प्रकार की है एक प्रत्यक्षवादि जो वर्तमान का प्रबन्ध करता है और भविष्यत् पर कुछ विश्वास नहीं रखता है और परोक्षवादी वर्तमान पर ध्यान नहीं देता है; क्योंकि वह जानता है कि जो कुछ पूर्वले वर्ष में बोया था वही घर में उपस्थित है अथवा वह पका हुआ खेत खड़ा है। अतः बोने के ही ध्यान में लगा हुआ है वह जानता है कि जो मैंने बो लिया है वह पक चुका है और अब वह मेरे श्रम से बदल नहीं सकता उसको तो भविष्यत् में जो बोना है उसकी ही चिन्ता है। अतः प्रत्यक्षवादि को सदैव से शास्त्रकार नास्तिक कहते हैं और सर्वदा प्रत्यक्षवादि मूर्ख होते हैं और परोक्षवादि विद्वान् जैसे कि लिखा है—

परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः।

जितने देवता अर्थात् विद्वान् हैं वह परोक्ष से मित्रता और प्रत्यक्ष के शत्रु होते हैं और मूर्ख लोग इसके विरुद्ध होते हैं, सम्पूर्ण कर्म फिलास फीकी जड़ परोक्ष के आश्रय है प्रत्यक्षवादी कर्म कर ही नहीं सकता; क्योंकि फल आनेवाला क्षण परोक्ष

है, जिस पर उसे विश्वास ही नहीं अतः प्रत्यक्षवादि नास्तिक होते हैं कर्म करने की नास्तिक में शक्ति ही नहीं होती ; परन्तु भोगवादि आस्तिक होने से कर्मों के फल का नाम भोग ख्याल करता है जैसा कि लिखा है—

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः । योगदर्शन

पूर्व जन्म के कर्मरूप मूल से तीन फल मिलते हैं एक जाति अर्थात् जन्म (पशु या मनुष्य का) । दूसरा आयु अर्थात् कितने स्वाँस तक इस शरीर रूपी जेल में रहना होगा । तीसरा भोग अर्थात् दुःख सुख निदान कर्म का पका हुआ फल यह तीन वस्तु हैं ।

न तो कोई मनुष्य अपना शरीर बदल सकता है । आयु नहीं बदल सकती है और न भोग बदला जा सकता है । क्योंकि यह तीनों पदार्थ अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त नहीं हो सकते ; किन्तु यह फल कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से ही मिलता है— यदि जीवों की इच्छा अनुसार शरीर मिलता—तो कोई जीव भी नीच योनि में नहीं जाता कोई आदमी बदशकल लूला लँगड़ा और कोढ़ी दृष्टिगोचर नहीं होता यदि जीव के आधीन में भोग होता तो कोई भी संसार में दुखी न होता । जीवों को अल्प आयु में मरनेवाला दुखी और कुरूप देखकर अनुमान होता है कि जीव ने इन वस्तुओं को अपनी इच्छा से स्वीकार नहीं किया ; किन्तु सम्पूर्ण शास्त्रकारों का सर्व तन्त्र सिद्धान्त है कि यह पदार्थ हमको पराधीनता से मिले हैं अर्थात् हमारा यह शरीर जेलखाना है । क्योंकि जहाँ हम अपनी इच्छा से जाते हैं उसे घर आदिक से प्रसिद्ध करते हैं । परन्तु जहाँ हम जाना नहीं चाहें और जाना पड़े तो उसे विरुद्ध इच्छावाले मकान जेल ही कह सकते हैं शास्त्र-

कारों ने तो सारा संसार ही जेल बनाया है। जिसमें जीव ममता अर्थात् मोहरूपी जञ्जीर में बँधा हुआ क़ैद है, महर्षि पतञ्जलि तो सारे संसार बनाने का फल ही भोग और अपवर्ग अर्थात् मुक्ति बतलाते हैं जैसा कि पतञ्जलिजी लिखते हैं।

भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

इस संसार के अभ्यन्तर तीन प्रकार की योनियाँ हैं। एक भोग योनी, जैसे गाय, महिषि, अश्वादि—जीव जो वेदों की शिक्षा से ईश्वर नियमानुसार अनभिज्ञ रहते हैं यह सम्पूर्ण पूर्व ले कर्मों का फल भोगते आगे के वास्ते कुछ नहीं कर सकते दूसरे कर्म योनी मुक्ति से लौटकर संसार में बिना माता पिता के जन्म लेते हैं वह केवल भविष्यत के वास्ते ही कर्म करते हैं उनका पूर्वला-भोग कुछ नहीं होता। तीसरा उभय योनि जो पिछले कर्मों का फल भोगते हैं और भविष्यत के वास्ते करते हैं वह मनुष्य हैं; परन्तु मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र होते हैं। कर्म योनिवाले नितान्त स्वतन्त्र और भोग योनीवाले नितान्त परतन्त्र हैं। निदान यह संसार पशुओं को अपने पूर्वले कर्मों का फल भोगने के वास्ते और कर्मयोनियों को पुनः मुक्ति प्राप्त कराने के योग्य कर्म कराने के वास्ते और मनुष्यों को पूर्वले कर्म भोगने के वास्ते और आगे के वास्ते कर्म कराने के लिये परमात्मा ने संसार बनाया है, जब यह अच्छे प्रकार ज्ञात हो जावे कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र हैं तो भोग की अपेक्षा मनुष्य का शरीर भी एक जेलखाना है। कैदियों को क्या जेलखाना में-रोटी की चिन्ता करनी योग्य ? कदापि नहीं क्यों कि जो गवर्नमेन्ट किसी कैदी को जेलखाने में भेजती है, वह भोजन ज़रूर देती है; क्योंकि उसकी आज्ञा बिना खुराक दिये पूरी नहीं

हो सकती। जैसे एक मनुष्य की दो वर्ष की क़ैद है यदि गवर्नमेन्ट उसे खुराक नहीं दे तो वह बहुत शीघ्र मर जावेगा। जिससे सरकार की यह आज्ञा कि वह दो वर्ष तक जेल में रहे पूरी नहीं हो सकती निदान अपनी आज्ञा को पूरा करने के वास्ते गवर्नमेन्ट आपही खाने को देगी। अजतक आर्य्यावर्त में इतने अकाल पड़े परन्तु किसी भी दुर्भिक्ष में कैदियों को क्षुधापीड़ित नहीं देखा। क्या कैदियों का कर्तव्य अपनी बीमारी के वास्ते औषधि करना है, कदापि नहीं क्योंकि यह जिम्मेवारी भी गवर्नमेस्ट ने ले रक्खी है। कैदी का कर्तव्य छूटने का उपाय करना है निदान जो कैदी रोटी औषधि के ध्यान में लगा रहता है, वह अपना समय व्यर्थ खोता है। प्रायः मनुष्य प्रश्न करते हैं कि कैदी को छूटने की चिन्ता क्यों करनी चाहिये, क्योंकि इयत्ता (मियाद) नियत पर तो गवर्नमेंट स्वयं ही छोड़ देगी ; परन्तु यह विचार ठीक नहीं क्योंकि गवर्नमेन्ट इस समय तो नियत इयत्ता पर छोड़ देगी परन्तु उसका स्वभाव ऐसा हो चुका है कि जिससे पुनः कारागार में आवे छूटने से अभिप्राय जेल में दोबारा न आने का है। अतः महर्षि पतञ्जलि ने योग-दर्शन में बतलाया है—

हेयं दुःखमनागतम् ।

भविष्यत दुःख त्यागने योग्य है जब तक मनुष्यों के हृदय में यह ठीक निश्चय न हो जावे कि मैं कर्म्म करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र हूँ तब तक मनुष्य मुक्ति पद को प्राप्त करने योग्य नहीं होता ; क्योंकि भोग उलटा करने की इच्छा में जितना समय व्यर्थ किया जाता है वह सब व्यर्थ जाता है जैसे एक गृह जो बहुत कठिन धातु का बना हुआ है यदि कोई उस मकान के द्वार के मार्ग से जाना चाहे तो सुगम है ; परन्तु यदि दीवारों

में से निकलना चाहें तो समय को व्यर्थ खो देना है, इस कर्तव्य और भोग के लिते परमात्मा ने कृषी का दृष्टान्त दिया है बोना कर्म है और काटना भोग है बोने में मनुष्य स्वतन्त्र है चाहे जौ बोवे या गेहूँ अथवा चना। चाहे पचास बीघे बोवे या १० बीघे; परन्तु काटने के खेत को गेहूँ बनाने के वास्ते यत्न करे तो सौ वर्ष पर्यन्त के श्रम से भी वह वर्षो का खेत गेहूँ नहीं बन सकता; परन्तु हाँ गेहूँ का द्वितीय खेत करके हम दूसरे वर्ष में गेहूँ उत्पन्न कर सकते हैं, निदान जो कर्म का पका हुआ फल है, उसके बदलने की शक्ति किसी में नहीं, उसके बदलने के वास्ते परिश्रम करना आयु को व्यर्थ खोना है। संसार में चाहे कैसा ही विद्वान् राजा अथवा बली हो; परन्तु भोग के बदलने में सब परतन्त्र हैं। क्या आपने नहीं देखा कि हमारा चक्रवर्ती एडवर्ड-सप्तम सबसे बड़ा राजा है, जिसके राज्य में ११४००००० वर्ग मील पृथ्वी है, जिसकी प्रजा चालीस करोड़ मनुष्यों से अधिक है, जो लन्दन जैसे बड़े नगर में रहता है। जहाँ बड़े-बड़े डाक्टर और पदार्थ विद्या के विद्वान् रहते हैं। परन्तु उस नगर में रहते हुए भी इतने अधिक बलवान् राजा का लड़का युवावस्था में मृत्यु को प्राप्त हो गया; परन्तु क्या कोई पदार्थ विद्या का ज्ञाता (साइंटिस्ट) या कोई सेना उसकी रक्षा कर सकी? जब इतना महान् राजा इतना सामान होते हुए भी अपने पुत्र की रक्षा न कर सका, तो क्या वह मनुष्य मूर्ख नहीं जो थोड़ी सी पूँजी के विश्वास पर अथवा स्थिरकोष (मुस्तकिल फण्ड) के भरोसे पर यह आशा रखते हैं कि वह भोग बदल लेंगे। यह बात भी किसी से छिपी हुई नहीं कि एडवर्ड सप्तम के गद्दी पर बैठने का दिवस २६ जून नियत हुआ था। लन्दन की पार्लमिंट के उत्तम प्रबन्ध से रुपये पैसे की कोई कमी न थी। परन्तु भोग ऐसा बलवान दृष्टिगोचर

हुआ कि महाराज ऐडवर्ड को २६ जून के स्थान में १६ अगस्त को तख़्त पर बैठना पड़ा और उत्सव भी २६ जून की जगह १६ अगस्त को हुआ। परन्तु क्या महाराजा की गद्दी का दिवस रुपये की कमी के कारण विकल्प को प्राप्त हुआ ? कदापि नहीं, क्या पार्लमेंट का प्रबन्ध ठीक नहीं था ? कदापि नहीं, क्या किसी शत्रु ने कोई झगड़ा डाला जो उत्सव को पीछे हटाया, नहीं ! तो स्पष्ट उत्तर देना पड़ता है कि भोग ने रोक दिया। महात्मा रामचन्द्रजी की दशा तो सबको ज्ञात है कि प्रातःकाल गद्दी पर सुशोभित होंगे, यह आज्ञा हो चुकी थी। सारे नगर में उत्सव मनाये जा रहे थे। परन्तु वह कौन-सी शक्ति थी कि जिसने राजा, मन्त्री, सभासद् और प्रजा की इच्छा के विरुद्ध रामचन्द्रजी को गद्दी पर बैठने के स्थान में बनवास दिलाया। जिधर विचारो, स्पष्ट शब्दों में भोग की प्रबल शक्ति सिद्ध होती है। संसार में कोई शक्ति नहीं जो भोग को बदल सके। क्योंकि भोग उस प्रबल शक्ति की आज्ञा का नाम है कि जिसकी आज्ञा को महाराज ज़ार रूस जैसे (जिसकी चालीस लाख सेना हो डाइनामेंट के गोले तोपख़ाना और बन्दूक तैयार करने के प्रबन्ध जिसके यहाँ हों) एक क्षण भर भी नहीं रोक सकते, यद्यपि भोग हमारे ही पुरुषार्थ से बनता है। अतः भोग से पुरुषार्थ बड़ा है ; परन्तु जब भोग उत्पन्न हो चुका तो पुनः पुरुषार्थ से बदला नहीं जा सकता। जिस प्रकार जो हमारे ही पुरुषार्थ से बोये गये थे : परन्तु जब पक चुके तो अब उनको हमारा परिश्रम किस भाँति बदल सकता है ? नहीं बदल सकता, एक दो चार दृष्टान्त ही नहीं ; किन्तु पग-पग पर इतिहास भोग की प्रबल शक्ति को सिद्ध कर रहा है।

प्रश्न—स्वामी दयानन्द और तमाम ऋषियों ने तो पुरुषार्थ को बड़ा बतलाया है, तुम भोग को प्रबल बतलाते हो।

उ०—स्वामीजी ने लिखा है कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और भोगने में परतन्त्र हैं। निदान जहाँ स्वतन्त्र हो उसी में कर्म करना आवश्यक है। क्योंकि स्वतन्त्रः कर्ता स्वतन्त्र ही कर्ता होता है और जहाँ परतन्त्र हैं, उसमें काम करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि यदि काम करने से कृतकार्यता हो जावे, तो परतन्त्रता न रही और जिसमें कृतकार्यता की आशा नहीं, उसमें प्रयत्न करना मूर्खता है। क्योंकि भोग पुरुपार्थ से बनता है। अतः भोग की अपेक्षा पुरुपार्थ को गुरुत्व दिया है; परन्तु पुरुषार्थ जीव के आधीन में है, चाहे करे चाहे उलटा करे।

भोग जीव के आधीन नहीं; क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा नहीं जो दुःख भोगना चाहता हो; परन्तु न चाहते हुए भी बड़े-बड़े बादशाह, राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार बड़े-बड़े योधा बहादुर सब ही दुःख भोगते हैं; कोई भी अपने पुरुषार्थ से भोग को बदल नहीं सकता। कोई मनुष्य नहीं जो सुख प्राप्त करने का श्रम नहीं करता हो; परन्तु सब यत्न करते हुए भी सुख नहीं प्राप्त होता, प्रायः दुःख ही प्राप्त होता है।

प्रश्न—क्या मनुष्यों को भोग पर विश्वास करके पुरुपार्थ को नितान्त छोड़ देना चाहिए।

उ०—मनुष्यों को एक क्षण के लिये भी पुरुषार्थ से रहित नहीं रहना चाहिए। किन्तु पुरुपार्थ अनागत उन्नति के लिये करना चाहिए, वर्तमान भोग को बदलने के लिये पुरुपार्थ करना मूर्खता है कारण यह कि भोग में परतन्त्र होने से कृतकार्यता नहीं होती। केवल दुःख और आपत्ति ही प्राप्त होती हैं और जो अनागत के लिये पुरुषार्थ करता है, वह यदि ज्ञान के विरुद्ध न हो तो अकृत-कार्य नहीं हो सकता और उसे किसी दशा में निराश भी नहीं होना पड़ता।

प्रश्न—यदि सब ही भोगवादी हो जावें, कोई दूकानदारी भी न करें, जिसका फल यह होगा कि संसार के सम्पूर्ण प्रबन्धों में गड़बड़ हो जावेगी और लोग आलसी होकर भूखों मरने लगेंगे।

उत्तर—यह विचार ठीक नहीं कि भोगवादी आलसी होता है, कारण यह कि इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है कि खानेवालों से बोनेवाला अधिक पुरुपार्थी होता है। द्वितीय यह बात है कि यदि सब भोगवादी हो जावें तो संसार के सम्पूर्ण प्रबन्धों में गड़बड़ हो जावे यह और भी मिथ्या है। कारण यह कि भोगवाद किसी कार्य को नहीं रोकता; किन्तु नियत बदलता है। अब जो कार्य स्वार्थी अपने भोग बदलने के लिये करते हैं, वह दूसरों को लाभ पहुँचाने की इच्छा से किये जायेंगे।

प्रश्न—वर्तमान के लिये तो कार्य को प्रत्येक ही कर सकता है। अतः पुरुषार्थ प्रत्येक ही कर सकता है; परन्तु अनागत के लिये सबको निश्चय नहीं हो सकता। अतः प्रत्येक पुरुपार्थ नहीं कर सकता।

उत्तर—विद्वान् और सुशिक्षित मनुष्य तो अनागत के लिये ही पुरुषार्थ करते हैं; परन्तु मूर्ख मनुष्य वर्तमान के लिये जैसे यह सबका माना हुआ सिद्धान्त है कि देवता बोते हैं खाते नहीं, मनुष्य खाते और बोते हैं और पशु केवल खाते हैं बोते नहीं। देवता का अर्थ विद्वान् जो पूर्णतया वेदों का ज्ञाता हो और जो भविष्यत के लिये ही प्रबन्ध करता हो, जैसा कि महर्षि शङ्कराचार्य से प्रश्न किया गया कि जब तुम संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहते हो कि जिससे सब ही विरुद्ध हैं, रोटी का भी प्रबन्ध किया। जिसका उत्तर स्वामी शङ्कराचार्यजी यह देते हैं।

प्रारब्धाय समर्पितं निजवपुः।

अर्थात् मैंने यह शरीर तो भोग के ऊपर छोड़ दिया है, अब मैं केवल अपना कार्य करूँगा।

जबकि स्वामी शङ्कराचार्य के मानसिक सङ्कल्प ऐसे उत्तम थे कि वह केवल वैदिक धर्म को फैलाते और अपने लिये कुछ भी नहीं करना चाहते थे। वास्तव में भोगवाद कृतकार्यता की तालीम है, जो इसको समझ लेता है तो दुःखों से मुक्त हो जाता है और वह यह जानता है कि भोग ही ऐसा है तो वह मित्रता-शत्रुता से भी मुक्त हो जाता है, वह समझ लेता है कि भोग के अतिरिक्त जो मेरे कर्मों का फल है, दूसरा मनुष्य मुझको सुख-दुःख दे ही नहीं सकता। जब कि कोई दुःख का देनेवाला ही नहीं तो शत्रु किसको समझे और किसको मित्र। और सुपुरुष जितने भोगवादि होंगे इतना ही उस धर्म को कृतकार्यता प्राप्त होती है और उन धर्मियों के मन में ईश्वर का विश्वास और और शान्ति होगी और जिन मनुष्यों का भोग पर विश्वास नहीं है, वह मुक्ति को किसी दशा में भी प्राप्त नहीं कर सकते। कारण यह कि सांसारिक आवश्यकताओं से उनको अवकाश ही नहीं मिल सकता है। जब कि वह मुक्ति के लिये पुरुषार्थ करें, भोग ऐसा अटल है कि उसके विरुद्ध किसी को कृतकार्यता प्राप्त हो नहीं सकती। अतः जो पुरुषार्थ भोग बदलने के लिये किया जाता है, वह व्यर्थ जाता है। उसमें अकृतकार्यता होने के कारण दूसरी ओर काम कर ही नहीं सकता। यूरोप में में जितनी अशान्ति है, उसका कारण भी नास्तिकता अर्थात् भोगवाद का अभाव है। यूरोप निवासियों का अनुकरण (नकल) करनेवाले ऐंगलो वैदिक मनुष्यों में जो अशान्ति है, उसका कारण भी भोगवाद से अरुचि है; परन्तु भोगवाद को प्रत्येक मूर्ख पुरुष नहीं समझ सकता। इसको समझने के लिये ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, कर्मफल विद्या, (कर्म फिलासफी) पर दत्तचित्त

होकर विचारने की आवश्यकता है, जो मनुष्य इन विद्याओं से रहित हैं, उनके लिये यह सिद्धान्त केवल हँसी करने के अधिक लाभदायक नहीं हो सकता ; परन्तु विद्वान् के विचार में यही भोगवाद शान्ति का कारण और कृतकार्यता की कुंजी और ईश्वर विश्वास का लक्षण है।

प्रश्नोत्तर

महाशयगण ! एक दिवस एक नवीन वेदान्ती और आर्य में जीव ब्रह्म की एकता पर प्रश्नोत्तर हुए, जो सर्वजनों के लाभार्थ अङ्कित किये जाते हैं, जिसमे वेदान्त के मूल से सज्जन भिज्ञ हो जावें।

आर्य—क्यों महाशय जीव-ब्रह्म में भेद है अथवा नहीं ?

वेदान्ती—अज्ञानी लोग तो भेद मानते हैं; परन्तु ज्ञानियों के विषय भेद नहीं।

आर्य—महाशय ज्ञानी किसे कहते हैं ?

वेदान्ती—जिसे सत्यासत्य का विवेक हो ?

आर्य—जब ब्रह्म एकही दूसरा कोई पदार्थ नहीं तो असत्य कोई पदार्थ नहीं, फिर सत्यासत्य का विवेक कैसे हो सकता है ?

वेदान्ती—भ्राता ! यह जगत् जो प्रतीत होता है, यह असत्य है और ब्रह्म सत्य है एवम् सत्यासत्य का विवेक यही ज्ञान का स्वरूप है ?

आर्य—महाशय ! जो जगत् प्रतीत होता है, वह असत्य कैसे हो सकता है ?

वेदान्ती—जो आदि में न हो और अन्त में भी न रहे, वह मध्य में भी नहीं होता। जगत् क्योंकि उत्पत्ति से पूर्व नहीं था और नाशान्तर नहीं रहेगा। अतएव वर्त्तमान में भी असत्य है ?

आर्य—क्या इस जगत् की उत्पत्ति से प्रथम कभी जगत् था अथवा नहीं ?

वेदान्ती—जगत् न कभी प्रथम था न अब है और न आगे

होगा। केवल भ्रम में प्रतीत होता है—जैसे रस्सी में सांप अथवा सीप में चाँदी का भ्रम होजाता है।

आर्य—महाशय! जब सर्प एक सत्य पदार्थ है और रस्सी भी है तो रस्सी में सर्प का आभास अथवा भ्रम होता है, जब कोई पदार्थ ही नहीं तो उसका भ्रम से कैसे ज्ञान हो सकता है?

वेदान्ती—जैसे स्वप्न में पदार्थाभाव पर भी ज्ञान होता है एवम् पदार्थों के न होने पर भी ज्ञान हो सकता है।

आर्य—स्वप्न में उन्हीं पदार्थों का ज्ञान होता है, जो जागृत दशा में दृष्टि परे हों?

वेदान्ती—स्वप्न में अपना मूड़ कटा हुआ देखते हैं, जो जागृत में कभी नहीं देखा।

आर्य—जब किसी का सर कटा देखा है, तभी सर कटे का ख्याल पैदा होता है और उस कल्पना को अपने साथ मान लिया है।

वेदान्ती—तमाम शास्त्रकारों का सिद्धान्त अर्थात् आखिरी फैसला अभेदवाद में है।

आर्य—न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग-मीमांसा इत्यादि यह सारे ही भेद को प्रकट करते हैं।

वेदान्ती—न्याय इत्यादि तो वेद के विरोधी हैं, वेदान्त-शास्त्र अर्थात् उपनिषदों और शारीरिक सूत्र से तो स्पष्ट अभेद-सिद्ध होता है, वेद का तो सिद्धान्त ही अभेद है?

आर्य—वेद में कहाँ लिखा है कि जीव ब्रह्म का अभेद है?

वेदान्ती—सामवेद में "तत्त्वमसि" महावाक्य मौजूद है।

आर्य—इसको महावाक्य किसने कहा है यह किसी आर्ष-ग्रन्थ का प्रमाण दिया है, सामवेद का वचन तो नहीं यही सामवेद

में है तो दिखलादो, यह छान्दोग्य उपनिषद् का वाक्य है बतलाओ कि इसके अर्थ से किस प्रकार अभेद सिद्ध होता है ?

वेदान्ती—वेदान्त के ग्रन्थों में निश्चलदास इत्यादि ने इसको महावाक्य लिखा है और छान्दोग्य उपनिषद् भी सामवेद ही है और इसका अर्थ यह है "तत्" के अर्थ सो "त्वम्" "असि" अर्थात् सो ब्रह्म तू है।

आर्य—वाक्य के अर्थ तो यह होते हैं कि 'सो तू है' आप ब्रह्म कहां से ले आये हम कहते हैं सो जीव तू है।

वेदान्ती—तत् शब्द पूर्व वाक्य के अर्थ आता है, इससे प्रथम छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्म का वर्णन है एवम कहा कि वह ब्रह्म जिसका वर्णन हो चुका है जीव तूही है।

आर्य—छान्दोग्य उपनिषद् में नौ स्थानों में यह शब्द आया है, जिसकी दृष्टि से विदित होता है कि प्रथम जीव का विषय है और उद्यालकजी ने अपने पुत्र श्वेतकेतु, को जिसको शरीर में आत्मा का भ्रम था, उसको शरीर से पृथक् आत्मा दिखाने के हेतु लिखे हैं।

वेदान्ती—अजी तुम कुछ पढ़े लिखे हो नहीं, व्यर्थ क्यों गप्प मारते हो ? छान्दोग्य में इस वाक्य से प्रथम ब्रह्म ही का वर्णन है नहीं तो निश्चलदास पण्डित क्या झूठ लिख सकता है ?

आर्य—महाशय ! हाथ कङ्कन को आरसी क्या है ? आप छान्दोग्य निकाल कर देख लें, आपको स्वयम् विदित हो जावेगा कि निश्चलदास इत्यादि ने सत्य लिखा अथवा झूठ।

वेदान्ती—देखो विचार सागर इत्यादि में इसको महावाक्य और तत् शब्द से ब्रह्म ही का ग्रहण है, छान्दोग्य हमारे पास इस समय नहीं है, नहीं तो अभी दिखला देते कि तुम्हारी सब कल्पना असत्य है।

आर्य—तुमने कभी सामवेद अथवा छान्दोग्य देखा भी है धर्म से कहना।

वेदान्ती—कर्म तो भ्रमजाल है, हमने छान्दोग्य उपनिषद् तो देखा है; परन्तु सामवेद को नहीं देखा।

आर्य—यदि तुमने छान्दोग्य उपनिषद् को देखा है तो उसके प्रथम का पाठ स्मरण होगा, बताओ इससे प्रथम किस विषय का वर्णन है ?

वेदान्ती—हमने छान्दोग्य उपनिषद् को देखा तो है; परन्तु इस स्थल को नहीं विचारा।

आर्य—जब आपने यह प्रकरण विचारा नहीं तो किस प्रकार कहा कि इससे प्रथम ब्रह्म का विषय वर्णन है। यदि छान्दोग्य उपनिषद् होती तो निकालकर दिखला देते।

वेदान्ती—क्या तुमने छान्दोग्य उपनिषद् का यह प्रकरण देखा है ?

आर्य—हां देखा है।

वेदान्ती—बताओ कैसा पाठ है ?

आर्य—

अस्य यदेका ँ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्धीति हो वाच। जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स एषोऽणिमैतदात्म्य मिद ँ सर्वंतत्सत्य ँ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।

अर्थ—जब इस शरीर के एक भाग को जीव त्याग देता है

तब वह सूख जाता है, जब द्वितीय भाग को त्यागता है तब वह शुष्क हो जाता है, जब तृतीय भाग को त्यागता है तब वह शुष्क हो जाता है, जब सारे शरीर को त्यागता है तब सारा शरीर शुष्क हो जाता है। उद्यालक जी ने कहा इस प्रकार समझो।

आर्य—जीव के पृथक् हो जाने से शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है जीव निश्चय नहीं मरता। जब इस अंश को उद्यालक मुनि कह चुके तब प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जिसके त्यागने से यह शरीर शुष्क होकर मर जाता है, वह कभी नहीं मरता। वह क्या है तब उसके उत्तर में उद्यालक मुनि ने कहा वह जो सूक्ष्म रूप है जिसका यह शरीर "आतिम्य" अर्थात् निवास-ग्रह है और उस ग्रह का निवासक आत्मा है वह सत्य है और शरीर में व्यापक है और हे श्वेतकेतु वह आत्मा अर्थात् जीव तू है शरीर नहीं है।

वेदान्ती—तुम आत्मा शब्द से जीवात्मा का क्यों ग्रहण करते हो ?

आर्य—शरीर में व्यापक होने से वह आत्मा जीव है और जो जगत् में व्यापक है ; उसे परमात्मा कहते हैं।

वेदान्ती—यहाँ जब कि आत्मा का विशेषण सत्य दिया गया तो फिर जीवात्मा कैसे हो सकता है ; क्योंकि जीव तो सत्य नहीं अविद्या रूप उपाधि से ज्ञात होता है।

आर्य—यह अविद्या क्या वस्तु है, गुण है, अथवा द्रव्य सत्य है अथवा असत्य।

वेदान्ती—अविद्या सत् असत् से पृथक् और अनिर्वचनीय अर्थात् जिसके विषय कुछ कथन नहीं कर सकते, ऐसा पदार्थ है।

आर्य—क्या तुम्हारे इस अविद्या के होने में कोई प्रमाण है यदि प्रमाण है तो वह प्रमेय है अर्थात् एक-एक पदार्थ अनिर्वच-

नीय किस प्रकार हो सकता है, यदि कोई प्रमाण नहीं तो उसके होने का क्या प्रमाण है।

वेदान्ती—हमारे मत में अविद्या वह वस्तु है जो ब्रह्म के एक देश में रहती है और उसको सत् असत् कुछ भी नहीं कह सकते।

आर्य—क्या ब्रह्म में अविद्या रहती है और ब्रह्म से पृथक् है अथवा ब्रह्म ही है।

वेदान्ती—हम प्रथम ही कह चुके हैं कि वह अनिर्वचनीय है एवम् ब्रह्म से पृथक् नहीं कह सकते, क्योंकि इस दशा में द्वैव सिद्ध होता है—जैसे जल में बुलबुला अथवा लहर उठती है क्या वह जल से पृथक् होती है हम तो इसे अनिर्वचनीय ही कहेंगे; क्योंकि वह न तो जल से पृथक् है और न वह जल ही है।

आर्य—ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं जो सत असत से पृथक् हो। अतएव तुम्हारी अविद्या का होना ही सिद्ध नहीं।

वेदान्ती—हम तो वैशेपिक की भाँति षट् पदार्थ वादी हैं और न न्याय की भाँति १६ पदार्थ मानते हैं, एवम् तुम हमारी अविद्या का खण्डन नहीं कर सकते।

आर्य—

अनियतत्वेपिनऽयौक्तकस्य संग्रहोऽन्यथा वालोन्मत्तादिसमत्वम् ॥ सां० सू० ॥

अर्थ—चाहे तुम नियत पदार्थ न भी मानो तो भी अयुक्त पदार्थ को नहीं ले सकते, यदि अयुक्त पदार्थों को ग्रहण करोगे तो तुम्हारे अविद्यालक और उन्मत्त कहने में क्या भेद होगा, तब पागल की व्यर्थ वार्तों को ठीक मानना पड़ेगा।

वेदान्ती—अजी यह सब बातें तो व्यवहार की हैं, परमार्थ में यह सब मिथ्या हैं; क्योंकि हम तो यह जानते हैं:—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः । ब्रह्म-सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलः ॥

अर्थ—हम उस विषय को अर्ध श्लोक में कहेंगे, जिसको करोड़ों ग्रन्थों में कहा गया है, वह विषय यह है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, जीव केवल ब्रह्म है और कुछ नहीं।

आर्य—क्योंजी यह जगत् सर्वथा मिथ्या है ?

वेदान्ती—हाँ सचमुच मिथ्या है।

आर्य—तो तुम्हारा श्लोक सत्य है अथवा मिथ्या।

वेदान्ती—यह भी मिथ्या है।

आर्य—तुम्हारा वचन सत्य है अथवा मिथ्या।

वेदान्ती—मिथ्या है।

आर्य—तो जगत् सत्य सिद्ध हो गया; क्योंकि जिस वाणी से आपने कहा, वह जब मिथ्या हुई और जो श्लोक है वह मिथ्या है तो जिसको तुमने मिथ्या वाणी से मिथ्या कहा वह सत्य सिद्ध हो गया और जब जीव को कहना मिथ्या हुआ तो जीव ब्रह्म भी सत्य सिद्ध हो गया।

वेदान्ती—जब तक अज्ञान है, तब तक भेद है जब ज्ञान हो जाता है तो भेद स्वयम् ही दूर हो जाता है।

आर्य—ज्ञान किसे कहते हैं।

वेदान्ती—भ्रम से जो भेद ज्ञात होता है और अपने आप को जीव समझता है यह अज्ञान और जब स्वयम् ब्रह्म समझने लग जावेगा तो ज्ञान हो जावेगा जैसे एक शेर का बच्चा किसी गड़रिये के हाथ आ गया और उसने उसे बकरियों के साथ चराना आरम्भ किया, वह शेर अपने आपको बकरी समझने लगा एक दिवस अन्य शेर आ गया, उसे देखकर बकरी भयभीत

होकर भागने लगीं, वह शेर भी उनके साथ भागने लगा, तब शेर ने देखा कि वह अज्ञान से अपने को बकरी समझता है, एवम् उसने उसका रूप पानी में दिखलाकर कहा कि तू बकरी नहीं शेर है, तब उसका अज्ञान जाता रहा, ऐसे ही जीव ब्रह्म हैं : पर भ्रम से जीव समझता है।

आर्य—यह तुम्हारा दृष्टान्त सत्य है या मिथ्या।

वेदान्ती—व्यवहार दशा में सत्य है और परमार्थ दशा में मिथ्या है।

आर्य—तुम्हारा यह व्यवहार और परमार्थ दशा का ज्ञान सत्य है अथवा मिथ्या।

वेदान्ती—मिथ्या।

आर्य—एवम् तुम्हारा तो मिथ्या ज्ञान हो गया और ज्ञान का भेद है अथवा अभेद।

वेदान्ती—जिस प्रकार बहुत से घड़ों में सूर्य का प्रतिबिम्ब ज्ञात होता है, अज्ञानी तो यह समझते हैं कि बहुत सूर्य हैं और ज्ञानी समझता है कि सूर्य तो एक है, उपाधि से पृथक्-पृथक् ज्ञात होते हैं।

आर्य—तुम्हारी उपाधि सत्य है अथवा असत्य और ज्ञान का फल अभेद कैसे कह सकते हो ; क्योंकि ज्ञान तो सत्य को सत्य और असत्य को असत्य और सत्यासत्य में भेद बतलाता है, अन्धा जिसको रूप ज्ञान नहीं, उसको सबका रूप अभेद है और आँखवाले को रूप में भेद ज्ञात होता है।

वेदान्ती—उपाधि व्यवहार दशा में सत्य और परमार्थ में मिथ्या है।

आर्य—तुम्हारे व्यवहार परमार्थ दशा का भेद ज्ञान है अथवा अज्ञान।

वेदान्ती—ज्ञान है।

आर्य—तुम प्रथम कह चुके हो कि भेद अज्ञान का फल है, अब तुम भेद को ज्ञान मानते हो।

वेदान्ती—यह ऐसा विषय है जिसको कुछ कह नहीं सकते; क्योंकि जो कुछ कहा जायगा, वह जगत् में होना और जगत् मिथ्या है। अतएव ज्ञान अनुभव का विषय है।

आर्य—तुम कितने पदार्थ अनादि मानते हो।

वेदान्ती—हम ६ पदार्थ अनादि मानते हैं।

आर्य—कौन ६ पदार्थ ?

वेदान्ती—जीव, ईश्वर, ब्रह्म और उनका भेद और माया और उनका उनमे मिलाप यह ६ पदार्थ अनादि हैं।

आर्य—जीव किसे कहते हैं और ईश्वर किसे कहते हैं ?

वेदान्ती—शुद्ध सत्य प्रधान तो ईश्वर है और मलिन सत्य प्रधान जीव है अथवा माया उपाधि से युक्त चैतन्य को ईश्वर कहते हैं और अविद्या उपाधि युक्त चैतन्य को जीव कहते हैं।

आर्य—क्या अविद्या और चैतन्य का योग अनादि हो सकता है; क्योंकि योग क्रिया है, जो बिना काल के हो नहीं सकती और जो काल की सीमा में आ गया, वह अनादि कैसे हो सकता है और जो अनादि है वह नित्य भी होता है।

वेदान्ती—यह सब अज्ञान की बातें हैं, हम ५ को अनादि सअन्त और एक को अनादि अनन्त मानते हैं।

आर्य—क्या तुमने कभी एक किनारे की नदी देखी है ?

वेदान्ती—नहीं देखी।

आर्य—तो अनादि सान्त कैसे हो; क्योंकि जो पैदा होता है, वही नाश होता है और जो उत्पन्न नहीं होता, वह नाश भी नहीं होता, अतएव जिसका आदि है उसका अन्त है, जिसका

वेदान्ती—हम सर्व जगत् को आत्मा स्वरूप समझते हैं; क्योंकि उससे शान्ति की प्राप्ति होती है।

आर्य—क्या तुम अचैतन्य पदार्थों को भी आत्मा समझते हो ?

वेदान्ती—यह चैतन्य वा अचैतन्य कहना केवल भ्रान्ति है; किन्तु कोई चैतन्य और अचैतन्य नहीं, केवल ब्रह्म है।

आर्य—तुम्हारे ब्रह्म का क्या स्वरूप अथवा लक्षण है ?

वेदान्ती—ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है।

आर्य—सच्चिदानन्द किसे कहते हैं ?

वेदान्ती—सत् कहते हैं तीन काल में रहने वाले को, चित् कहते हैं ज्ञानवाले को, आनन्द कहते हैं दुःख रहित को।

आर्य—तुम इतना क्यों कहते हो केवल सत् क्यों नहीं। कहते हो; क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ सत् है ही नहीं

वेदान्ती—यद्यपि हमारे मत में ब्रह्म से पृथक् कोई पदार्थ नहीं; परन्तु सांख्यवाले प्रकृति को न्यायवाले परमाणु को सत् मानते हैं अतएव प्रकृति से पृथक् करने के लिये चित् कहना पड़ा और न्यायवाले जीवात्मा को भी चैतन्य मानते हैं और सत् भी कहते हैं। अतएव हमने आनन्द कहा—बस अब प्रकृति और जीव से ब्रह्म पृथक् हो गया और लक्षण पृथक् कर्ता को कहते हैं।

आर्य—तब लक्षणानुसार तो भेद जाता रहा, अब तो जीव, ब्रह्म और प्रकृति को पृथक्-पृथक् मान लिया।

वेदान्ती—यह लक्षण आदि सब व्यवहार दशा में हैं, परमार्थ में सब मिथ्या हैं और अज्ञान दशा में भेद हम भी मानते हैं।

आर्य—तुम्हारा यह कहना सत्य है या मिथ्या।

वेदान्ती—मिथ्या है।

आर्य—बस मित्र ! जब तुम्हारी प्रत्येक बात मिथ्या है तो

तुम्हारा अद्वैतवाद अर्थात् जीव ब्रह्म के एक होने का मामला किस प्रकार सत्य हो सकता है; क्योंकि मिथ्या प्रमाण से जो ज्ञान हो, उसे कोई बुद्धिमान् सत्य नहीं मान सकता।

वेदान्ती—अच्छा अब आज तो हम जाते हैं; पुनः किसी दिन आकर तुमसे बातचीत करेंगे।

आर्य—मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने इतनी देर तक सत्यासत्य का निर्णय किया।

कनफुकवे गुरू, बैल का पूँछ

प्यारे पाठको ! आप इस बात को तो भली भाँति समझते होंगे कि भारतवासियों का एक अखण्डित वर्णाश्रमी धर्म जो बहुत समय अर्थात् सृष्टि के आदि से लेकर केवल वेदों के आधार पर चला आता था सो ईश्वरेच्छा या भारत दुर्भाग्य नष्ट हुआ वैदिक कर्मों का लोप होकर साम्प्रदायिक प्रणाली ने सर्वथा धर्म का नाश कर दिया, हमने वेदों को तिलाञ्जली देकर कल्पित सम्प्रदायों को धर्म समझ मृगतृष्णा से प्यास मिटानेवाले मृग की भाँति धर्माभास में पड़कर अपना अनमोल मनुष्य जन्म और देश का गौरव नष्ट कर लिया ! इस अविद्या का यह फल हुआ कि राज-काज बिगड़ा, धर्म नष्ट हुआ, ऐक्य नष्ट हुआ यहाँ तक तो हुआ कि वर्णाश्रम की तो बात ही क्या है मनुष्यत्व भी नष्ट हो गया। जो महात्मा "तन मन धन गुसाईंजी के अर्पण" को प्रसादी को जानते होंगे, उनको पूरा-पूरा विश्वास हो जायगा कि उनके शिष्यों में मनुष्यता का नाम भी नहीं। कोई आदमी मूर्ख भी क्यों न हो क्या वह अपनी स्त्री, बेटी और भगनी आदि को प्रसादी में जाने की आज्ञा दे सकता है ? परन्तु विवेक के अभाव से यह सम्भव हो गया। क्या कोई विपय्या शक्ति मनुष्यों को ईश्वर मुक्ति प्रदाता मान सकता है ? जड़ के समीप रहने से जिनका चित्त जड़ हो गया हो, ऐसे महात्माओं के इन गड़रिये गुरुओं की लीला के अनुकूल एक दृष्टान्त लिखता हूँ।

गड़रिये गुरू, बैल की पूँछ

एक दिन किसी धनी पुरुष का बालक सुन्दर वस्त्र और भूषण

पहने घर के द्वार पर खेल रहा था। उस समय चोर उसको मूर्ख जानकर थोड़ी-सी मिठाई का लोभ देकर वहाँ से उठा ले गये और किसी भारी बन में लेजाकर उसके सब भूषण उतार आँखों में पट्टी बाँधकर चलते हुए। जब बालक दुःख से रोने चिल्लाने लगा और माता पिता की सुधि करके अति दुःखित हो विलाप करने लगा, तब इतने में वहाँ एक गुरुघण्टाल आ निकले और उसकी इस व्यवस्था को देखकर आपने कहा—हे! बालक क्या हुआ चिल्लाकर क्यों रो रहा है? उसने उनसे सब वृत्तान्त कह दिया और अपने माता पिता से मिलने की इच्छा प्रगट की, तब उस गुरू ने उसकी आँखें खोल दी और कहा यदि तू कुछ हमें दे तो हम तुझे तेरे घर पहुँचा दें, बालक ने कहा महाराज मेरे पास तो कुछ नहीं है; परन्तु मेरे माता पिता धनी हैं, वे अवश्य देंगे आप मुझे पहुँचा दीजिये। तब गुरू ने कहा यह तो हम नहीं मानते कारण यह था कि गुरूजी को उसका घर ज्ञात न था, चाहते थे जो कुछ मिल जावे और मेरे हाथ में केवल एक अँगूठी रह गई है, अस्तु उसने उसे झट उतार कर उनको भेंट की। गुरूजी ने अँगूठी लेली और एक जंगली बैल जो वहाँ चरता था, उसकी पूँछ उसको पकड़ा दी और कहा छोड़ना मत, यह तुमको तुम्हारे घर पहुँचा देगा। बालक दिन भर उस बैल की पूँछ पकड़े घूमता रहा। बैल कभी झाड़ी कभी काँटों में जाता ठीक मार्ग पर नहीं चलता था, शरदी और थकावट से बेचारा बालक अत्यन्त दुःखी हो गया, तब उसने विचारा कि चोर तो मुझे थोड़े से काल में ले आये थे; परन्तु यहाँ इतनी देर घूमते बीत गई और घर न पहुँचा—अब बेचारा बालक बैल की पूँछ को छोड़ भूख प्यास से व्याकुल हो माता पिता को याद कर दिन भर के दुःखों को सोच फूट-फूटकर रोने लगा, तब उस बन के एक तपस्वी ने

उस पर दया करके पूँछा कि हे बालक ! तू क्यों रोता है ? तब उस बालक ने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया और रोते-रोते उस महात्मा के पावों पर गिर पड़ा, जब उस महात्मा ने इसकी व्यवस्था को बिचारा तो अत्यन्त शोकाकुल हुआ, एक तो रात्रि का समय, जिसमें अन्धकार के कारण से कुछ सूझता ही न था, दूसरे वन के सिंह व्याघ्रों का प्रबल नाद, तीसरे बालक की दीन दशा अब उस महात्मा ने विचारा कि इस समय यह बालक घर पर नहीं पहुँच सकता, रात्रि भर इसको रक्षा के स्थान में रखना चाहिये। सूर्योदय होने पर घर पहुँचा दिया जावे। तब उस महात्मा ने बालक से कहा कि ऐ बालक ! इस समय एक तो अँधेरी रात्रि के कारण तू मार्ग नहीं जान सकेगा, दूसरे तेरा शरीर भी शिथिल हो रहा है, तीसरे बन पशु भी अधिक हैं, चौथे मार्ग कठिन है। इससे उचित है कि तू किसी वृक्ष पर चढ़ जा जिससे रात्रि बीत जावे जब सूर्योदय होगा तब तू घर पहुँचा दिया जावेगा—

अब दृष्टान्त तो पूरा हो गया। इसका सारांश यह है कि वह जीव रूपी बालक अपने माता पिता प्रकृति पुरुष के द्वार पर विचरता है अर्थात् जब उससे अविवेक की ओट में चला जाता है तब काम क्रोध लोभ मोह अभिमानादि दोष रूपी चोर उसको संसार के घोर बन में ले जाते हैं और उसके ज्ञान रूपी चक्षुओं में अज्ञान की पट्टी बाँधकर उसको संसार में छोड़ देते हैं। जब जीव संसार के दुःखों से अत्यन्त दुःखी होकर और ईश्वर को स्मरण करके उससे मिलने की अभिलाषा में जिज्ञासा रूपी रुदन करता है तो यह संसार के भेषधारी गुरू महात्मा, जिनको सदा चेला बनाने और वृत्ति करने की ध्वनि लगी रहती है, उस जिज्ञासु से कहते हैं, कि हम तुम्हें ईश्वर को मिला दें तो तू हमको

क्या देगा ? तब बेचारे संसारी जन जो सदा व्यापार की छाया में लोभ के गर्त (गढ़) में गिरे हुए हैं, जिनके ज्ञान रूपी नेत्रों पर कामादि ने अज्ञान की पट्टी बाँध दी है, वे बेचारे इनसे कहते हैं— महाराज ! साक्षात् ईश्वर का रूप गुरू है, भला हम आपको क्या दे सकते हैं ? केवल बुद्धि रूपी एक अँगूठी है। तब गुरूजी महाराज कहते हैं—अच्छा "तन मन धन अर्पण कर" हमारी सेवा करना, हमारे व्यवहारों में कभी तर्क न करना ; क्योंकि तर्क करनेवाली बुद्धि अब हमारी है—हे शिष्य ! यदि गुरू लोभी हो तो बामन के समान है, यदि कामी हो तो कृष्ण के समान, यदि क्रोधी हो तो परसराम के समान समझो और कोई तुलसी की माला, कोई मुद्रा कोई रुद्राक्ष इस तरह का कोई चिन्ह देकर अर्थात जड़ पदार्थ का सेवन रूपी बैल की पूँछ उसको पकड़ा देते हैं।

जब जीव इन भेषधारियों के जाल में फँसकर इनके भेष रूपी बैल की पूँछ पकड़े बहुत दुःख पाता है और इनके दुराचारों को देखकर महा दुखित होता तथा अपने मन को धिक्कारता है। और ईश्वर को स्मरण करके रोता है, तब संसार रूपी बन में जो कोई महात्मा ; योगीराज, परोपकरी, धर्मवर्द्धक, ईश्वर से भयभीत, सबके आत्मा को अपने आत्मा के समान देखनेवाले, अपनी हानि करके भी दूसरों का भला करनेवाले, वेद-विद्या से विभूषित वर्णाश्रमी, ब्राह्मण वा सन्यासी मिल जाते हैं, तो उसको उपदेश करते हैं कि हे भाई ! तेरी बुद्धि में अज्ञान रूपी रात्रि का प्रवेश है, तेरा पुरुषार्थ रूपी बल बहुत न्यून हो रहा है। संसार के विषय वासना रूपी बन पशु घूम रहे हैं, जिसको अकेला अर्थात् कार्य से शून्य पाते हैं, झट उठा ले जाते हैं; और योग बल न होने से मनुष्य इन्द्रियों को रोक नहीं सकता यह सदा दुःखी रखते हैं और उस परमात्मा का मार्ग अर्थात् आत्मज्ञान अत्यन्त कठिन है।

इससे उचित है कि हे जीव ! तू किसी शास्त्र रूपी वृक्ष पर चढ़कर अपने ज्ञान रूपी रात्रि को व्यतीत हो जाने दे अर्थात् विद्या पढ़ते-पढ़ते ज्ञान हो जायगा और आत्मानात्मा वा नित्यानित्य पदार्थों का बोध हो जायगा और योगबल आ जाने से इन्द्रियों के दमन की भी शक्ति उत्पन्न हो जायगी, तब हे जीव ! तू परमात्मा को प्राप्त होकर सुख भोग करेगा। प्यारे देशवासियो ! आप विचार करो और अपने धर्म की रक्षा करो—देखो वेद में बराबर लिखा है।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

उसी परमात्मा को जानकर अति मृत्यु अर्थात् त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्ति रूप मोक्ष को प्राप्त होता है। प्यारे देशवासियो ! जब वेद पुकार-पुकारकर आपको एक मार्ग दिखलाता है, फिर आप क्यों सम्प्रदाय के झगड़ों को फैलाकर संसार को दुःख देते और वेद विहित कर्म को छोड़कर अधर्म में धर्म की सदा बुद्धि करके दुःख पाते हो, क्यों सर्वोपरि वर्णाश्रमी धर्म को छोड़कर व्यर्थ सम्प्रदायी बखेड़ा करते हो ? ब्राह्मणो ! अपने ऋषि मुनियों के बनाये धर्म शास्त्रों को निकाल उनके अनुकूल अपने नित्य नैमित्तिक कर्म करने में तत्पर होओ। क्षत्रियो ! अपने राजा महाराजों, महाराजा रामचन्द्रादि महानुभावों के अनुकूल आचरण करो। वैश्यो ! आप भी अपने पूर्वज धर्मज्ञतुलाधारवात् सनातन धर्मानुकूल आश्रमों को ग्रहण करो और इन कनफुकवे गुरुओं की की कण्ठी जो बैल की पूँछ के समान सदा दुखदायी है छोड़ दो और धर्म-कर्म को विचारो, तुम्हारी जगत् में प्रसिद्धि है, फिर क्यों धोखा खाकर अपनी जाति की लाज गँवाते हो ? देखो, धन क॰ ाने में और

सुवर्ण के परखने में, जो केवल इस जन्म में कमाने, तुम्हें थोड़ी-सी सहायता देता है, उसमें चित्त लगाते और धर्म विचार में जो इस संसार और दूसरे जन्मों में भी सहायक है, उसकी कुछ भी प्रतीक्षा नहीं रखते, ईश्वर तुम्हें विचार शक्ति दे।

क्या हम जीवित हैं ?

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते । प्रशिषं यस्य देवाः यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

यजुर्वेद, अध्याय २५, मन्त्र १३ ।

इस वेद मन्त्र में ईश्वर जीवों को इस बात का उपदेश करते हैं कि किस प्रकार से मनुष्य मृतक (मुरदह) कहलाता है ? और किस प्रकार से अमृत होता है ?

अर्थ—(यः) जो (आत्मदा) आत्मा का देने वाला है ।

यहाँ प्रश्न होता है कि जब जीवात्मा नित्य है, तो उसका देने वाला परमात्मा कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि आत्मा शब्द के अर्थ व्यापक के हैं, जब तक व्याप्य न हो तो वह व्यापक कहला ही नहीं सकता, इस लिये शरीर के बिना उसको जीव तो कह सकते हैं ; किन्तु जीवात्मा उस दशा में कहलायेगा, जब कि वह शरीर में व्यापक होगा । कतिपय मनुष्य यह शङ्का करेंगे कि शरीर तीन हैं ? प्रथम—स्थूल शरीर, दूसरा—सूक्ष्म शरीर, तीसरा—कारण । यद्यपि स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर उत्पत्ति वाले होने से अनित्य हैं, उनकी उत्पत्ति से प्रथम तुम उसे जीवात्मा न कहो ; क्योंकि जिसमें आत्मा व्यापक रहै, वह शरीर विद्यमान् नहीं, परन्तु कारण शरीर में व्यापक होने से वह आत्मा कहला सकता है । इस कारण वेद में जो परमात्मा को आत्मा के देनेवाला बतलाया है, वह सत्य नहीं । इसका उत्तर यह है कि

कारण शरीर सब जीवों का समान है, इस में कोई शान्त आत्मा व्यापक नहीं कहला सकता। जीव को जो आत्मा कहा जाता है, वह स्थूल शरीर में व्यापक होने के कारण कहते हैं अथवा सूक्ष्म शरीर में व्यापक होने के कारण जीव आत्मा कहलाता है। कारण शरीर के होने से तो परमात्मा ही व्यापक कहला सकता है।

(बलदा) जो बल का देने वाला है।

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार "गवर्नमेन्ट" का तीन रुपये का एक चपरासी बड़े से बड़े धनो को ले आता है, यद्यपि उन धनी के दर्शों भृत्य विद्यमान् रहते हैं, कुटुम्बी जन भी विद्यमान रहते हैं, परन्तु किसी को उस चपरासी के दूर हटाने की शक्ति नहीं होती। बताओ चपरासी में यह बल कहाँ से आया ? कहना होगा कि राजा की नौकरी से, इसी प्रकार जो परमात्मा के नियमों पर चलते और उसके आश्रय पर रहते हैं, उनमें भी यह बल आ जाता है कि समस्त सृष्टि का सामना कर सकता है, सृष्टि उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

श्री स्वामी शङ्कराचार्य तथा श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज का वृत्तान्त किसी से गुप्त नहीं, इन महात्माओं के पास ईश्वरीय नियमों के जानने के अतिरिक्त तथा उनके अनुसार आचरण करने के अतिरिक्त और क्या था ? समस्त संसार के मनुष्य उनसे विरोध करते रहे तो भी कार्य्य सिद्धि की।

(यस्य विश्व उपासते) जिसकी समस्त सृष्टि के विद्वान् प्रशंसा करते हैं, जो सब जगत् का अन्तर्यामी है।

(यस्यच्छायाऽमृतम्) जिसकी छाया अर्थात् आज्ञानुसार चलना ही (अमृतम्) मुक्ति का कारण है, (यस्य मृत्युः) जिसकी आज्ञा के अनुसार न चलना ही (मृत्युः) अर्थात् दुःख का हेतु है।

(कस्मै) आनन्द के लिये (देवाय हविषा विधेम) उसी परमात्मा की उपासना कर्त्तव्य है।

जब कभी मैं इस मन्त्र के विषय पर विचार करता हूँ, तो मेरे हृदय में यह प्रश्न होता है कि "क्या मैं जीवित हूँ ? या क्या हम जीवित हैं" मेरे बहुत से मित्र इस प्रश्न को सुनते ही कहेंगे कि यह विचित्र पागल उपहासक है कि जो बोलता है, खाता पीता चलता है, फिर भी कहता है कि हमारे जीवित होने में सन्देह है ; परन्तु हमारे वे मित्र कुछ गम्भीरता के साथ बिचारें तो उन्हें स्वयम् भी अपने विषय में यही सन्देह उत्पन्न होगा।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या बोलने वाला जीवित नहीं ? क्योंकि बहुत से मतवाले बोलता पुरुष मानते हैं ; परन्तु सोचना चाहिये कि यदि बोलने का नाम ही जीवित होता तो हमारा शब्द तो कदाचित् दस वा बीस गज पर्य्यन्त जा सकता है ; परन्तु इञ्जन कि जिसका शब्द अनेक कोस पर्य्यन्त जाता है, तो वह अवश्य ही जीवित कहला सकता है। परन्तु इस स्थान पर कहा जाता है कि इञ्जन तो केवल अनर्थक शब्द करता है, परन्तु जिस शब्द में सार्थक वाक्य निकलें, वह जीवित होने का चिन्ह है।

ऐसा मानने पर भी आर्गन बाजा और फोनोग्राफ को जीवित मानना पड़ेगा। क्योंकि उनमें से निर्विघ्न शब्द तथा राग निकलते हैं ; परन्तु इस अवसर पर वादी कह सकता है कि इनमें जो कुछ भर दिया जाता है, वही शब्द प्रकट होता है, तो इसका उत्तर यह है कि यदि वादी सोच कर देखे तो वह आप भी वही शब्द और वाक्य विचार वाणी से निकल सकता है कि जो उसमें भरा है। क्या जिस भाषा को वादी ने नहीं पढ़ा, उसके शब्द बोल सकना अथवा जिस विद्या के सिद्धान्त को नहीं सीखा, उसको बतला

सकता है ? कदापि नहीं। इस कारण यह बात फोनोग्राफ और मनुष्य में तुल्य है। सिद्ध हुआ कि बोलने के कारण फोनोग्राफ जीवित नहीं कहला सकता, इसी कारण बोलने से हम भी जीवित नहीं कहला सकते।

यदि कोई कहे कि हम चलते हैं तो क्यों जीवित नहीं ? तो इसका उत्तर यह है कि आप तो घंटे में दो वा तीन मील जा सकते हैं, परन्तु इञ्जन एक घंटे में चवालीस से ८० मील पर्य्यन्त सहस्त्रों मन भार लेकर चला जाता है, तो उसे जीवित कहना चाहिये ; परन्तु इञ्जन को कोई जीवित नहीं कहता। आप कहेंगे कि हम खाते हैं, पीते हैं, जीवित क्यों नहीं ? परन्तु हम तो अधिक से अधिक सेर भर खा सकते हैं ; परन्तु वहाँ इञ्जन सहस्त्रों मन कोयला खा जाता है और सहस्त्रों मन पानी पी जाता है, तो इतना खाने पीने पर भी इञ्जन को जीवित नहीं कहते तो सेर भर खाने या पीनेवाले को किस प्रकार जीवित कहेंगे ?

पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट प्रकट होता है कि खाने पीने बोलने चलने का नाम जीवित नहीं, किन्तु जीवित होना इन से कोई पृथक् वस्तु है, क्योंकि यह गुण तो जड़ वस्तु में भी पाये जाते हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि इन बातों का नाम जीवित नहीं, तो किस बात का नाम जीवित होना है ? इस का उत्तर यह है कि जीवात्मा (स्वतन्त्र) की सत्ता का नाम जीवित होना है, इस लिये कि इञ्जन में भी एक ड्राइवर विद्यमान् है, जिसके कारण इञ्जन चलता खाता पीता बोलता है और जैसे ड्राइवर चलाता है, वैसे ही इञ्जन चलता है। यदि ड्राइवर जीवित हो, तो इञ्जन उसके आधीन होगा कि जहाँ चाहे नियमानुसार ठहरादे, चाहे पीछे लौटा दे ; परन्तु जब ड्राइवर चलती हुई गाड़ी में मर जावे, तो ड्राइवर ही इञ्जन के आधीन हो जावेगा। उस

समय इञ्जन का ठहराना ड्राइवर के आधीन नहीं रहेगा ; किन्तु जहाँ इञ्जन ठहरेगा, वहीं ड्राइवर को भी ठहरना होगा।

बस इस दृष्टान्त से स्पष्ट सिद्ध होता है कि "यह शरीर जो कि इञ्जन के समान है और जीवात्मा ड्राइवर के समान है। यदि जीव के अधीन शरीर और उसके समस्त प्रदेश (मन इन्द्रियादि) हैं तो वह जीवित हैं।" यदि मन इन्द्रिय और शरीर के अधीन जीव है, तो वह मृतक है। दूसरा चिन्ह जीवित मृतक का यह पाया जाता है कि जीवित अपने शरीर की किसी वस्तु को पृथक् नहीं होने देता। यदि किसी जीवित के शरीर से एक भी बिन्दु रक्त की निकल जावे तो वह घबरा जाता है। स्वेच्छा से रक्त का निकलना स्वीकार नहीं करता तथा बाह्य वस्तुओं को पचा जाता है ; परन्तु मृतक की दशा इस के विरुद्ध हुआ करती है, वह बाहर की वस्तुओं को पहिचान नहीं सकता और उसके शरीर में से कितना ही भाग निकल जावे, उसे उपेक्षा रहती है। बहुत से मनुष्य यह कहेंगे कि यह इञ्जन का दृष्टान्त शरीर के तुल्य नहीं, क्योंकि यह मन गढ़न्त है।

इसका उत्तर यह है कि जो सम्बन्ध जीवों का और शरीर का इस स्थान पर बतलाया है, वह कठोपनिषद् में भी लिखा है:—

"आत्मानं रथिनम्बिद्धि शरीरं रथमेवतु। बुद्धितु सारथिं बिद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥"

कठोप० अ० १ व० ३ मं० ३ ॥

अर्थ—यह शरीर एक गाड़ी है और जीवात्मा इस गाड़ी में बैठकर चलने वाला पथिक है, बुद्धि सारथी है, इन्द्रिय घोड़े हैं तथा मन (प्रग्रह) अर्थात् बागें हैं।

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह शरीररूपी गाड़ी

जीव को अभीष्टोद्देश्य पर पहुँचाने के लिये दी गई है। जो जीव अपने को शरीर के अधीन कर लेता है, वह वास्तव में मृतक है, इस कारण कि हम अहर्निश शरीर के आधीन रहते हैं, इस लिये मृतक हैं, जीवित नहीं। यदि हम में जीवन होता तो हमारे ६ कोटि भाई यवन तथा ३० लक्ष क्रिश्चियन न हो जाते। हमारे धर्म-रूपी काया में से इतने भाग का निकल जाना और हम में भी दूसरी जातियों को सम्मिलित शक्तियों का न होना स्पष्ट मृतक होने का प्रमाण है। यही कारण है कि हम अपने हृदय में किसी कार्य्य को पूर्ण करने की तथा उसका निर्वाह करने की शक्ति ही नहीं रखते, यद्यपि जड़, प्रकृति, चेतन जीवात्मा का किंकर है तथापि मृतक होने के कारण हम ही प्रकृति के दास बन गये। न तो हमें अपने परिश्रम पर विश्वास है और न ही अपने भाइयों की सहायता पर विश्वास है। ईश्वर का विश्वास तो होने ही क्यों लगा था। क्योंकि वेद मन्त्र में स्पष्ट बतला दिया है कि जो ईश्वर के आश्रय पर रहता है। वह मृतक है, जो ईश्वर को त्याग देता है. वह मृतक है, क्योंकि हम लोगों ने ईश्वर के स्थान में प्रकृति का आश्रय लिया है।

यदि धन न हो तो हमारा कोई काम दृढ़ ही नहीं, जो ईश्वर के नियमानुसार न होने से उसके आश्रय पर हम किसी काम को दृढ़ ही नहीं समझते।

इसीलिये हम सरल मार्ग को छोड़कर वाम अर्थात् उलटे माग पर चलने लगे हैं।

कतिपय मनुष्यों को यह शंका होगी कि हम वाममार्गी कैसे हैं? न हम मद्य पीते हैं, न मांस खाते हैं, परन्तु स्मरण रक्खो कि शास्त्रकारों ने स्त्री को पुरुष का वाम भाग बतलाकर समस्त रचना को दो भागों में विभक्त कर दिया।

जिस प्रकार वाम और दक्षिण दोनों विरोध हैं (जो वाम है वह दक्षिण नहीं तथा जो दक्षिण है वह वाम नहीं)।

जिस कारण से कि प्रकृति परमात्मा के विरुद्ध गुण युक्त है परमात्मा चेतन है, उस की उपासना से ज्ञान बढ़ता जाता है, प्रकृति जड़ है, उस की उपासना से ज्ञान-ह्रास होता है, परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, उस की उपासना से जीव का बल बढ़ता है। प्रकृति निर्बल है उस की उपासना से शक्ति ह्रास होती है। इस प्रकृति और परमात्मा को बहुत से मनुष्यों ने विष्णु तथा लक्ष्मी के नाम से बतलाया। किसी ने शिव तथा शक्ति के नाम से कहा अर्थात् शिव के माननेवाले दक्षिण मार्गी, और शक्ति के मानने वाले बाममार्गी हैं। जिस कारण कि हम लोगों ने भी आर्ष एवं वेदोक्त मार्ग को छोड़कर वाम-मार्ग को स्वीकार कर लिया, इसलिये धर्म-रूपी जीवन से शून्य होकर मृतक होगये।

अनेक जन आग्रह पूर्वक अपने को महात्मा मानते हैं, यह साक्षात वेद के विरुद्ध हैं। क्योंकि यजुर्वेद ४० वें अध्याय में स्पष्ट लिखा है:—

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम्मुखम् ॥"

अर्थ—आभासामयओं के इच्छा-रूपी आवरण से सत्यता का मुख आवृत हुआ है, यदि तुम चाहते हो कि सत्य धर्म को प्राप्त होकर उन्नति को प्राप्त हों तो उस पर्दे को उठा दो। क्योंकि इस आवरण की उपस्थित में सत्य-धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता और सत्य धर्म के ज्ञान के बिना तदनुसार आवरण नहीं हो सकता, एवं आवरण के बिना जीवन नहीं हो सकता। क्योंकि हम में सद्धर्म का ज्ञान एवं आचरण भी नहीं।

अतः हम जीवित कैसे कहला सकते हैं? जब तक परमात्मा

की छाया में आकर अमृत न बन जावें। यद्यपि हमें परमात्मा की छाया के नीचे लाकर बहुत से महर्षियों ने जीवित बनने का प्रयत्न किया; परन्तु वाम-मार्ग की उपासना से हमें कभी परमात्मा पर विश्वास ही नहीं हुआ। हम अपने लेख में बहुत से वाक्य ईश्वरीय विश्वास सम्बन्धी लिखते हैं; परन्तु आचरण में रुपये पर ही विश्वास रखते हैं।

सृष्टि प्रवाह से अनादि है।

आर्यसमाज का सिद्धान्त यह है कि जीव ब्रह्म और प्रकृति-स्वरूप से अनादि है अर्थात् इनका कोई कारण नहीं है; परन्तु सृष्टि प्रवाह से अनादि है, जिसका उत्पन्न करनेवाला ईश्वर है। शब्द अनादि का अर्थ जिसका आदि न हो अर्थात् जिसका कारण कुछ न हो और सृष्टि का अर्थ है जो पैदा करी गई हो, इस स्थान पर वादि तर्क करता है कि आर्यसमाज का यह सिद्धान्त ठीक नहीं; क्योंकि इसमें नीचे लिखे दोष ज्ञात होते हैं प्रथम तो प्रत्येक कार्य के पूर्व क्रिया का होना आवश्यकीय है और प्रत्येक क्रिया से पूर्व इच्छा का होना आवश्यकीय है और इच्छा से पूर्व-कर्ता में उस गुण का होना (लाज़मी) है कि जिससे स्पष्ट प्रकट है कि कार्य से क्रिया पूर्व होगी और कार्य पश्चात् होगा, क्रिया और कार्य का एकसाथ होना असम्भव है और क्रिया से इच्छा (इरादा) पहिले होगी और क्रिया पीछे। क्रिया और इच्छा का एक समय होना भी असम्भव है, इच्छा से उस पूर्वोक्त गुण का पूर्व होना भी आवश्यकीय है; क्योंकि असम्भव पदार्थों की इच्छा नहीं होती। अतः सृष्टि का अनादि होना और ईश्वर का अनादि होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता और सृष्टि को प्रवाह से अनादि कहना भी कोई आशय नहीं रखता। क्योंकि यह सम्बन्ध सगुण (तोसीफी) है; क्योंकि प्रवाह सृष्टि का गुण है और गुण किसी दशा में द्रव्य के बिना नहीं रह सकता। अतः प्रवाह से सृष्टि अनादि है, इसका अभिप्राय यही लेना होगा कि सृष्टि अनादि है; क्योंकि सृष्टि अनादि है, जिसका आशय यह है

कि उसका कोई कारण नहीं। जब सृष्टि का कोई कारण नहीं तो ईश्वर की सत्ता के लिए जो सृष्टि का कारण होना हेतु दिया गया है अथवा आर्यसमाज के प्रथम नियम में जो ईश्वर को आदि मूल बतलाया है, वह मिथ्या सिद्ध होता है। जिससे आर्यधर्म (दयानंदीयमत) नास्तिक सिद्ध होता है; क्योंकि प्रथम तो उसका प्रथम नियम ही गिर जाता है, द्वितीय ईश्वर की सत्ता में कोई हेतु नहीं रहता।

उत्तर—वादि का यह तर्क अनभिज्ञता के कारण है; क्योंकि संसार में तीन प्रकार के पदार्थ हैं। (१) अज्ञ (गैर मुदरक) जिनको तीनों काल में ज्ञान हो ही नहीं सकता। (२) अल्पज्ञ जिनको कुछ ज्ञान तो स्वाभाविक होता है और विशेष ज्ञान पदार्थ और सामान के द्वारा उत्पन्न होता है। (३) सर्वज्ञ जिसका ज्ञान नित्य और निभ्रान्त होने से उसमें किसी प्रकार का वाह्य-ज्ञान आता नहीं। अब अज्ञ तो कर्म करने की शक्ति ही नहीं रखता और अल्पज्ञ स्वेच्छा से कर्म करता है और सर्वज्ञ स्वभाव से कर्म करता है न कि इच्छा से। अब वादि ने अपनीं अज्ञानता से अल्पज्ञ के वास्ते जिन साधनों की जरूरत है, उनको सर्वज्ञ के गले में भी मढ़ना चाहा है; परन्तु उसे सोचना चाहिये था कि जहाँ हम क्रिया से पहिले इच्छा को देखते हैं, वहाँ हम उसके कारण को भी देखते हैं; क्योंकि इच्छा अप्राप्त इष्ट की होती है, यदि वह लाभकारक भी हो तो किसी प्राप्त हुई वस्तु की इच्छा होती है और नहीं अलाभकारक वस्तु की इच्छा होती है, इस इच्छा का कारण उस अप्राप्त और इष्ट अर्थात् अप्राप्त लाभकारक है, जिसके प्राप्त करने की वह इच्छा करता है प्रथम तो आप कोई ऐसी वस्तु ही बता नहीं सकते। जो ईश्वर की इच्छा का कारण हो; क्योंकि उसका ईश्वर की इच्छा से पूर्व

होना जरूरी है यदि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार ऐसा मान लेवें तो वह वस्तु जो ईश्वर की इच्छा का कारण होती है, नित्य है अथवा अनित्य, यदि नित्य मानोगे तो ईश्वर के साथ इच्छा का कारण भी ? नित्य मानना पड़ेगा, पुनः कारण कार्याभाव का झगड़ा पड़ जावेगा और अन्त में एक ही नित्य मानना पड़ेगा।

यदि अनित्य मानो तो उसके जन्यत्व में इच्छा का होना आवश्यकीय होगा, जिसके लिये पुनः किसी कारण की आवश्यकता होगी पुनः उस कारण की अपेक्षा भी, यही प्रश्न होगा जिससे अनवस्था दोष (दूरतसल्सिल) आ जायगा, जिससे ईश्वर का इच्छा से कर्ता होना मिथ्या है, द्वितीय आपने यह जो कहा है कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है और सम्बन्ध सगुण (तोसीफी) है, यह भी मिथ्या है ; क्योंकि प्रवाह सृष्टि के अनादि होने का कारण है न कि सृष्टि का गुण, बहुत से मनुष्य यह कहेंगे कि प्रवाह का अर्थ क्या है ? इसका उत्तर यह है कि ईश्वर के संपूर्ण गुण अनादि होने से और उसका इच्छा रहित कर्ता होने से और सृष्टि की बार-बार रचना करने का नाम प्रवाह है ; क्योंकि ईश्वर सर्वदा सृष्टि की रचना करता है। अतः उसका कार्य सृष्टि भी अनादि है। वादि इस स्थान पर यह प्रश्न कर सकता है कि जब ईश्वर इच्छा रहित करता है और उसका सृष्टि उत्पन्न करना स्वभाव है तो प्रलय के समय वह क्या करता है ; क्योंकि उस वक्त सृष्टि तो उत्पन्न करता नहीं, इसका उत्तर यह है कि ईश्वर की दी हुई शक्ति (हरकत) से प्रकृति के प्रमाणुओं में हरकत बराबर जारी रहती है, जिस प्रकार रात्रि के दोपहर पर्यंत अँधेरा बढ़ता जाता है और दोपहर के पश्चात् घटना आरम्भ हो जाता है, इधर दिन के बारह बजे तक धूप बढ़ती जाती है और दिन के बारह बजते ही घटनी आरम्भ हो जाती है। कोई पल भी ऐसा.

नहीं जो घटने-बढ़ने से रहित हो, ऐसे ही २५ दिसम्बर से दिवस बढ़ना आरम्भ हो जाता है और २५ जून से घटना, कोई दिन नहीं जिसमें वृद्धि क्षय न हो, यही दशा सृष्टि और प्रलय की है अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष सृष्टि और इतना ही समय प्रलय में व्यतीत होता है ; परन्तु जिसको ब्रह्म दिन अर्थात् सृष्टि कहते हैं, उसका आदि वेदरूपी सूर्य के उदय होने से होता है अर्थात् जब से मनुष्य जाति उत्पन्न होती है और जब तक मनुष्य जाति रहती जाती है। इसके अभ्यन्तर का यह नियम समय (मियाद) है पशु, कीट, पतंग, स्थावर, पर्वतादिक इस समय से पूर्व उत्पन्न हो जाते हैं और इसके बाद भी रहते हैं और जिस तरह प्रत्येक रात्री के पूर्व दिवस होता है और प्रत्येक दिन के पूर्व रात्री होती है, कोई दिन नहीं जिसके पूर्व रात्री न हो और कोई रात्री नहीं जिसके पूर्व दिन न हो। इसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि से पूर्व प्रलय और प्रलय से पहिले सृष्टि होती है, यद्यपि प्रत्येक सृष्टि और प्रलय का आदि और अंत होता है ; परन्तु इस चक्र का आदि और अंत नहीं हो सकता।

प्रश्न—जिस अवयवी के अवयव अनित्य हों वह अवयवी भी अनित्य होता है, यदि सृष्टि का उत्पन्न होना मानते हो तो चक्र (प्रवाह) भी अनित्य मानना पड़ेगा। जिस प्रकार रात्री से पहिले दिन और दिवस से पूर्व रात्री होती है तो उसका आदि भी पाया जाता है ; क्योंकि रात्री और दिन सूर्य के उत्पन्न होने के पश्चात् हो सकती है और सूर्य का अनित्य होना सर्व तंत्र सिद्धान्त है, जब से सूर्य उत्पन्न हुआ, तब ही से रात-दिन का चक्र आरम्भ हुआ। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि जिस जंजीर या चक्र की कड़ी का आदि हो, वह चक्र भी अनित्य होता है।

उत्तर—जिस प्रकार एक दिन में घड़ी अथवा घंटे होते हैं,

उसी प्रकार एक सृष्टि में युगदादिक होते हैं। वर्तमान सूर्य के प्रकट होने से दिन और लोप हो जाने से रात्री कहलाती है ; परन्तु सृष्टि और लय के चक्र का कारण क्या है, जिससे सृष्टि और लय होता है तो मानना पड़ेगा कि उसका कारण ब्रह्म है ; परन्तु ईश्वर नित्य है सूर्य की तरह उसका उत्पन्न होना असम्भव है। अतः सारांश यही है कि जिस चक्र का कारण नित्य है, वह नित्य और जिसका कारण अनित्य है वह अनित्य। अतः इस चक्र को जिसको दूसरे शब्दों में ईश्वर में उत्पन्न करने का स्वभाव कह सकते हैं, नित्य कहना पड़ेगा।

प्रश्न—यदि इस ही तरह पर ईश्वर को स्वभाव से जगत बनानेवाला अथवा इच्छा रहित कर्ता कहेंगे तो वह कर्मों का जानकर फल देनेवाला नहीं हो सकता, जिससे आर्यों के सिद्धान्त की तो समाप्ति हो गई।

उत्तर—जो लोग यह मानते हैं कि परमात्मा जो चाहे सो कर सकता है, उनके सिद्धान्त की तो अवश्य समाप्ति हो गई ; परन्तु जिनको यह ज्ञात है कि सर्वज्ञ परमात्मा का कोई कार्य नियम के विरुद्ध नही होता, उसका प्रत्येक कार्य ज्ञान के सत्त होने से नियम के अभ्यन्तर होता है, उनके सिद्धान्त को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता है—जैसे सूर्य का प्रकाश प्रत्येक पदार्थ पर एक-सा पड़ता है, वह न तो किसी का शत्रु और न किसी का मित्र है। यदि उसका प्रकाश है तो सब के वास्ते यदि गर्मी है तो सबके वास्ते ; परन्तु उस सूर्य से भी प्रकृत्यनुसार पृथक्-पृथक् असर पड़ता है—जैसे एक मनुष्य की प्रकृति शरद है और द्वितीय मनुष्य की प्रकृति मध्यम दर्जे की और एक की बहुत उष्ण है यदि यह तीनों मनुष्य सूर्य के समीप जावें यद्यपि सूर्य स्वाभाविक कर्म करता है ; परंतु उनको पृथक्-पृथक् ही फल मिलेगा, जिसमें सर्दी

अधिक है उसको सूर्य के समीप जाते हुए सुख मिलेगा और जिसमें गर्मी अधिक है उसको दुःख और जो मध्यम है उसको मध्यम दुःख सुख मिलता है। इसी प्रकार परमात्मा तो स्वभाव से न्याय और दया करते हैं; परन्तु प्रत्येक जीव अपने कर्मानुसार उनसे फल पाता है।

प्रश्न—यदि परमात्मा को स्वभाव से कर्ता मानोगे तो उसमें एकही प्रकार का कर्म होगा, उससे बिना किसी कारण के दो प्रकार का असर अर्थात् उत्पन्न करना और नाश करना नहीं हो सकता; क्योंकि दोनों कर्म संसार में देखे जाते हैं, इससे मानना पड़ता है कि वह स्वेच्छा से कर्ता है, जब चाहता है उत्पन्न करता है, जब चाहता है, तब नाश करता है।

उत्तर—यह तो बिलकुल मिथ्या है; क्योंकि जहाँ स्वभाव से सृष्टि करता मानने में उससे दो प्रकार की सृष्टि का बिना किसी कारण के सम्भव नहीं, वहाँ स्वेच्छा से कर्ता मानने में भी दो प्रकार की इच्छा के लिये किसी कारण का होना आवश्यकीय है; परन्तु स्वभाव से सृष्टि कर्ता (फाइलविल खासा) माननेवालों के पास तो जीवों के कर्म इस सृष्टि और प्रलय का कारण हैं, उनके सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आ सकता; परन्तु इच्छा से सृष्टि कर्ता के माननेवालों में दोष आता है; क्योंकि उनके पास कोई कारण इच्छा के बदलने का नहीं है, अतः उनका सिद्धान्त बिलकुल तुच्छ है।

प्रश्न—तुम्हारी यह बात अपनी गढ़न्त है अथवा इसमें किसी प्रमाणिक पुस्तक का भी प्रमाण है।

उत्तर—श्वेताश्वेतरोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वभाविकीज्ञानवलक्रिया च।

अर्थ—उस परमात्मा का शरीर नहीं है और नहीं उसके इन्द्रिय (हवास) हैं और नहीं उसके बराबर और न अधिक है। उस ईश्वर की शक्ति अनेक प्रकार की वेदों में बतलाई है। उस का ज्ञान, बल, क्रिया सब स्वाभाविक है। परमात्मा के संपूर्ण गुण स्वाभाविक हैं उसमें कोई नैमित्तिक गुण नहीं है, निदान जब कि परमात्मा का क्रिया करना स्वभाव है तो उससे जो काम होगा वह प्रत्येक समय होता रहेगा; क्योंकि परमात्मा को अपने कार्य के वास्ते किसी साधन की आवश्यकता नहीं। अत: उसके काम में कोई विघ्न नहीं होता, निदान परमात्मा के अनादि होने मे उसका काम भी अनादि है। क्योंकि उस काम से दो प्रकार का असर होता है, जिसको सृष्टि और प्रलय कहते हैं। क्योंकि दोनों में पहिले और पीछे किसी को नही कह सकते। अत: स्पष्ट प्रकट है कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है।

षट्शास्त्रों की उत्पत्ति का क्रम

प्रिय पाठक ? आजकल भारतवर्ष क्या प्रत्युत सारे संसार में शास्त्रों के प्रचार के न्यून होने से हमारे शास्त्रों के विरुद्ध बहुत से विषय प्रकाशित हो रहे हैं। कुछ महाशय तो यह कह रहे हैं कि शास्त्रों के विषय एक दूसरे के विरुद्ध हैं, कुछ लोग यह कहते हैं कि यह सांख्य सूत्र नहीं प्रत्युत यह तो विज्ञान भिक्षु का बनाया हुआ है। अनेक गौतम और कणादादि को नास्तिक और वेद विरोधी बतलाते हैं, बहुत महाशय कपिलजी को अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक कहते हैं। अनेक मनुष्यों को इन दर्शनों के विषय और क्रम में भ्रम है। प्रयोजन यह कि शास्त्रों के विषय में बहुत से संशय उन लोगों ने फैलाये हैं, जिनको शास्त्रों के मुख्य अभि-प्राय से सर्वथा अनभिज्ञता है और उन्होंने विषयों के क्रम को न समझकर केवल शब्दों से अपने मन माने विचार को पुष्ट किया है, बहुत लोगों ने शास्त्रों के विषय में नवीन ग्रंथों को जो शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों से अनेक स्थलों पर दूर निकल गये, उनको शास्त्र मानकर उनके विरोध से शास्त्रों में विरोध मान लिया है। अतएव हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि शास्त्रों के बारे में विचार आरम्भ करके मनुष्यों के चित्त से इस अयुक्त विचार को पृथक् करने का प्रयत्न करें कि जिससे शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्त संसार में प्रचलित हो जावें, जिससे मनुष्यों को इन अमूल्य-रत्नों से जो मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश्य के जतलाने वाले हैं। प्रीति हो जावे और वह इससे लाभ उठावें। यद्यपि हम अपने आप को इस योग्य नहीं समझते कि

इस महान् विषय को भली भांति विचार सकें और न मुझे सामाजिक कामों से इतना अवकाश है कि जिससे इस गम्भीर विषय को पूर्णतया विचार सकें ; परन्तु तो भी परमात्मा का आश्रय ले जहाँ तक साध्य होगा, हम अपने ट्रैक्टों के क्रम से इस कर्त्तव्य को पूरा करने का यत्न करेंगे।

प्यारे मित्रो ! सबसे प्रथम जब कोई मनुष्य किसी वस्तु को ग्रहण करे अथवा उसको निकृष्ट जान त्यागने का प्रयत्न करे इस बात की आवश्यकता है कि वह उस वस्तु से भिन्न हो जावे जब कि जिससे भले-बुरे सत्य और असत्य का ज्ञान हो जावे, जब तक मनुष्यों को इस कसौटी का ज्ञान नहीं होता। तब तक उसका सब काम अधूरा रहता है और जब मनुष्य इस कसौटी को प्राप्त कर लेता है, उस समय वह उन वस्तुओं को परखना आरम्भ करता है, जो उसके सामने आती हैं और वह उनको प्रत्येक दशा में कार्य और कारण से अनुभव करता है और जिस समय उसको यथार्थ रीति से जान जाता है तो वह उनको दुःख सुखानुसार आत्मा के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होने का ज्ञान कर दो भागों में विभाजित करता है, जब भाग हो गये तो अनुकूल से मेल करना प्रारम्भ करता है और प्रतिकूल से बचता है, जब वह अनुकूल भाग से प्रीति करता है तो उसके स्वभाव से जो अनुकूल भाग के मेल से उत्पन्न हो गई थी, उसे प्रतिकूल शक्तियों से मिलने नहीं देती। अतएव उसे प्रतिकूल स्वभाव के दबाने के हेतु अनुकूल स्वभाव से प्रतिकूल को दबा लेता है, तब वह अनुकूल शक्तियों की खोज आरम्भ करता है, जहाँ-जहाँ से वह मिलती हैं, ग्रहण करता चला जाता है और उससे पूर्ण सुख प्राप्त करता है।

प्यारे पाठको ! इसी सृष्टि क्रम के अनुसार बराबर हमारे

ऋषी चले हैं, उन्होंने छः दर्शनों में इन्हीं छः प्रयोजनों को जो मनुष्यों के मुख्य उद्देश्य के निमित्त आवश्यक हैं, सिद्ध कर दिया है। प्रथम दर्शन न्याय-दर्शन है, जिसको महात्मा गौतम ऋषि ने बनाया है, इसमें प्रमाण वाद ही पर विचार किया है और प्रमेय के सिद्ध करने के वास्ते जो-जो प्रमाण आवश्यकीय हैं और जिन साधनों से विचार करने की आवश्यकता होती है और जिन कारणों से विचारों में त्रुटि आ जाती है और जिन कारणों से ज्ञात हो जाता है कि विचार पूरा हो गया, उनकी व्याख्या की गई है और यह भी सूचित कर दिया गया है कि मनुष्य जीवन का उसके मुख्य उद्देश्य पर पहुँचना बिना इन वस्तुओं के ज्ञान के असम्भव है और इसके निमित्त महात्मा गौतम ने १६ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक समझा है।

१—प्रमाण, २—प्रमेय, ३—संशय, ४—प्रयोजन ५—दृष्टांत, ६—सिद्धांत, ७—अवयव, ८—तर्क, ९—निर्णय, १०—वाद, ११—जल्प, १२—वितंडा, १३—हेत्वाभास, १३—छल, १५—जाति, १६—निग्रहस्थान।

पाठकगण! जब इस प्रकार से महात्मा गौतम जी ने प्रमाण-वाद को स्पष्ट कर दिया तो महात्मा कणाद जी ने प्रमेय वस्तुओं का साधर्म्य और जतलाने के निमित्त वैशेषिक दर्शन बनाया, इस दर्शन में महात्मा कणाद जी ने प्रमेय को छः भागों में बाँट दिया।

१—द्रव्य, २—गुण, ३—कर्म, ४—सामान्य, ५—विशेष, ६—सम्वाय।

अब उन्होंने द्रव्य में ९ पदार्थ लिये अर्थात् १—पृथ्वी, २—जल, ३—तेज, ४—वायु, ५—आकाश, ६—काल, ७—

दिशा, ८—मन, ९—आत्मा अर्थात् जीवात्मा व परमात्मा। इसी प्रकार २४ गुण बतलाये।

१—रूप, २—रस, ३—गंध, ४—स्पर्श, ५—संख्या, ६—परिमाण, ७—पृथकत्व, ८—संयोग, ९—विभाग, १०—प्रत्व, ११—अप्रत्व, १२—बुद्धि, १३—सुख, १४—दु:ख, १५—इच्छा, १६—द्वेष, १७—प्रयत्न, १८—गुरुत्व, १९—द्रव्यत्व, २०—स्नेह, २१—संस्कार, २२—धर्म्म, २३—अधर्म, २४—शब्द।

इसी प्रकार पाँच तरह के कर्म हैं। १—उपक्षेपन अर्थात् ऊपर उठना, २—अवक्षेपन अर्थात नीचे गिरना ३—आकुंचन अर्थात् सिकुड़ना, ४—प्रसारण अर्थात् फैलना, ५—गमन अर्थात् जाना और सामान्य विशेषादि बतला बड़ी योग्यता से प्रमेयवाद की व्याख्या कर दी।

प्यारे पाठको! जब इस प्रकार महात्मा गौतम और कणादादि अपने न्याय दर्शन और वैशेषिक को लिखकर चले गये, तब महात्मा कपिलजी आये, उन्होंने कहा कि प्रमाण और प्रमेय का ज्ञान तो हो गया। परन्तु गम्भीर विचारों में प्रत्येक पुरुष कृतार्थ नहीं हो सकता।

अत: दु:ख और सुख जो दो गुण हैं, उनके आधार की खोज करनी चाहिये, जिससे तीन प्रकार के दु:खों की निवृत्ति हो जावे, अब उन्होंने देखा कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक जड़ दूसरे चेतन। अतएव उन्होंने प्राकृति पुरुष का पृथक्-पृथक् जानना मुक्ति का कारण बतलाया। कारण यह कि वैशेषिक में बतला चुके थे कि साधर्म्य से सुख और वैधर्म्य से दु:ख की प्राप्ति होती है, इसी कारण चेतन जीवात्मा को चेतन और अचेतन का ज्ञान आवश्यक है, उन्होंने सिद्ध किया कि जितना जगत है, उसका उपादान कारण प्रकृति है, परन्तु प्रकृति जड़ और दु:ख देनेवाली

है। अतएव उसके कार्य जगत् से जितनी प्रार्थना की जावेगी, कुछ भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये प्रकृति पुरुष का विवेक करनेवाला सांख्य-शास्त्र बतलाया और अच्छी प्रकार से अपने विषय को सिद्ध किया।

पाठकवृन्द! जब महात्मा कपिल इस प्रकार जड़ और चेतन को अलग-अलग बतलाकर, चले गये, तब महात्मा पातंजलि ऋषि आये और उन्होंने कहा कि संसार में जिस प्रकार दुःख है, सब चित्त की वृत्तियों के विपेक्ष से अर्थात् मन के विचारों के स्थिर न होने से उत्पन्न होते हैं और प्रकृति के पदार्थों को मन जानकर आगे चल देता है, जिससे चित्त-वृत्ति एकान्त नहीं होती और चित्त के एकान्त न होने से सुख की प्राप्ति नहीं होती। अतःएव उन्होंने कहा कि योग करके चित्त की वृत्तियों को रोकना चाहिये। क्योंकि संसार के समीप पदार्थों से चित्त की वृत्ति का अनुरोध नहीं हो सकता। अतः अनन्त परमेश्वर के साथ अथवा चैतन्य जीव आत्मा का परमात्मा के साथ योग होना चाहिये, इसके लिये उन्होंने अंग नियत किये हैं।

१—यम २—नियम ३—आसन ४—प्राणायाम ५—प्रत्याहार ६—धारणा ७—ध्यान ८—समाधि।

इस प्रकार महात्मा पातंजलि ने अविद्या को दूर करके जड़ से प्रीति हटाकर चैतन्य परमात्मा से योग करा के सुख की प्राप्ति का निश्चय करा दिया।

महाशय गण! जब इस प्रकार महात्मा पातंजली योग से चित्त की वृत्तियों के रोकने की आज्ञा देकर चले गये तो महात्मा जैमिनिजी महाराज आये, उन्होंने कहा कि योग से चित्त के रोकने में जो बुरे कर्मों से संस्कार पैदा हुये अविद्या के संस्कार विघ्नकारक होंगे, उनसे कभी भी मन की वृत्तियाँ रुक न सकेंगी,

अतएव पहिले मन के मल रूपी दोष दूर करने के लिये शुभ नैमित्तिक कर्मों को करना चाहिये, जिस के चित्त में दोष का लेष न रहे और मन का प्रवाह जो दुष्कर्मों की तरफ़ लग रहा है, हटकर अच्छे कर्मों की तरफ लगजावे, फिर उस मल दोष के दूर होने के बाद विक्षेप के दूर करने के साधन उपासना योग से काम चल जायगा, उन्होंने व्रत दान इत्यादि बहुत से कर्म मल दोष के दूर करने के लिये बतलाये और उनकी विधि अपने मांसा-शास्त्र में अच्छे प्रकार से प्रकाशित कर दी।

प्रियपाठको! जब महात्मा जैमिनिजी महाराज ने अपने को इस भाँति पर वर्णन कर दिया, तब महात्मा व्यासजी ने कहा कि प्रमाण का भी ज्ञान हो चुका और प्रमेय भी जान लिया और जड़ चैतन्य अर्थात् प्रकृति पुरुष को भी पृथक्-पृथक् समझ लिया और योग करने का विचार भी ठीक है और योग में जो विघ्न पड़ेगा उनके रोकने के लिये मीमांसा शास्त्र के कर्म भी ज्ञात हो गये, परन्तु जिस चेतन के साथ योग करना है, अभी तक उसको तो नितान्त जाना ही नहीं। अतः ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये, अतएव उन्होंने वेदान्त-शास्त्र बनाया, जिसमें केवल ब्रह्म के यथार्थ रूप का ज्ञान हो जावे, उन्होंने उसको इस प्रकार आरम्भ किया।

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।

अर्थ—प्रमाण प्रमेय, प्रकृति पुरुष और धर्मादि के पश्चात् ब्रह्म-ज्ञान की इच्छा करते हैं, जब उनसे प्रश्न हुआ कि ब्रह्म क्या है तो उन्होंने उत्तर दिया।

जन्माद्यस्य यतः।

अर्थ—जिससे इस सृष्टि की स्थिति और उत्पत्ति और नाश होता है, इस कारण सम्पूर्ण शास्त्र में ब्रह्म-ज्ञान बतलाया है।

प्रिय पाठक ! आप कहेंगे कि इन शास्त्रों के यह नाम किस प्रयोजन से हुए और तुम जो कहते हो कि शास्त्रों का यह प्रयोजन है इसमें क्या प्रमाण है, इसका उत्तर यह है कि शास्त्रों के नाम यौगिक हैं और वह अपने-अपने विषय को प्रतिपादन करते हैं। (१) न्याय का लक्षण यह है:—

प्रमाणैरर्थ परीक्षणम् न्यायः ।

अर्थ—जिसने प्रमाणों के द्वारा अर्थ अर्थात् सुख दुःख के कारण की परीक्षा करना बतलाया हो, उसे न्याय कहते हैं। वैशेष्टिक जिसमें विशेष तौर पर साधर्म और वैधर्म को बतलाकर पदार्थों के यथार्थ-ज्ञान को मुक्ति का सच्चा साधन वतलाया हो, जिसमें संख्या की गई हो उसे, सांख्य कहते हैं और योग के तो अर्थ चित्त-वृत्ति के रोकने और मिलने के हैं और मीमांसा में मन के दोषों को दूर करने के लिये कर्म काण्ड है। अब रहा वेदान्त इसका नाम इस प्रयोजन से रक्खा है कि वेद नाम है ज्ञान का और अन्त नाम है सीमा का अर्थात् ज्ञान की सीमा क्योंकि ब्रह्मज्ञान से बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं, इस कारण ब्रह्म-ज्ञान बतलाने वाले शास्त्र को वेदान्त कहा, दूसरे यजुर्वेद के अन्त के अध्याय में वेदान्त का मूल है जिसे ईश उपनिषद् कहते हैं शेष उसका व्याख्यान है, वह ईश उपनिषद् वेद के अन्त में है इस वास्ते भी वेदान्त कहा।

पाठक वृन्द ! हमारे बहुत से मित्र यह समझ रहे हैं कि सबसे पहला सांख्य-शास्त्र है। परन्तु यह कथन सर्वथा अयुक्त है। क्योंकि सांख्य-दर्शन में न्याय और वैशेषिक का प्रयोग है। जैसा कि लेख है:—

नवयम्षट् पदार्थ वादिनो वैशेषिकादिवत् ।

अर्थ—अविद्यावादी जो सांख्य-शास्त्र में पूर्व-पक्ष करता है वह कहता है हम वैशेषिक की तरह छः पदार्थों के मानने वाले न हों और यह भी कहा है कि सोलह और छः पदार्थों के ज्ञान से मुक्ति नही होती। इसी प्रकार सांख्य-दर्शन में बहुत से ऐसे प्रमाण मिलते हैं। जिससे प्रत्यक्ष विदित हो जाता है कि सांख्य-शास्त्र न्याय और वैशेषिक के पश्चात् बना सांख्य दर्शन के आरम्भ में रखने से क्रम में सर्वथा भ्रम पड़ जाता है। अनेक महाशय उन शास्त्रों को विरोधी जानते हैं ; परन्तु यह मिथ्या है वेद जो तत्व-ज्ञान का मुख पुस्तक है प्रत्येक शास्त्र उसका एक अंग है, जिस प्रकार प्रथम सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी तो ठीक मालूम होती है ; परन्तु तीसरी के बाद पहिली और दूसरी बिलकुल बेढंग कहलाती हैं, योरोपियन ग्रन्थ रचयिताओं ने जिनको वास्तव में दर्शनां की फिलासफी का यथार्थ ज्ञान नहीं, उन्होंने सांख्य-दर्शन को प्रथम और कपिल को नास्तिक माना है। परन्तु कपिल नास्तिक है या नहीं इसका जवाब तो हम दूसरे स्थान पर देंगे ; परन्तु सांख्य तीसरा शास्त्र है, इसके लिये हम विज्ञान भिक्षुका भाष्य जो सांख्य-दर्शन पर है, प्रमाण में देते हैं। देखो भूमिका सांख्य भाष्य पृष्ठ २

तत्रश्रुतिभ्यः श्रुतेषुपुरुपार्थतद्धेतुज्ञातद्वि पयात्मस्वरूपादि-पुश्रत्यविरोधिनीरूपपत्ती षडध्यायीरूपेण विवेकशास्त्रेणकपि-लमूर्त्तिर्भगवानुपदिदेश। ननुन्यायवैशेषिकाभ्यामप्येतेष्वर्थेषु-न्यायः प्रदर्शित इति ताभ्यामस्यगतार्थत्वंसगुणनिर्गुणत्वादि विरुद्धरूपैरात्मसाधकतयातद्युक्तिभिरिति। मैवम् व्यावहारिक पारमार्थिक रूपविषयभेदन गतार्थत्वविरोधयोर भावात।

अर्थ—श्रुति में जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्ति बतलाई है और उसका कारण आत्मा का यथार्थ ज्ञान बतलाया है, उसके लिये महात्मा कपिल ने छः अध्याय रूप वेदानुकूल युक्तियों की एकत्रता अपने शास्त्रों में लिखी। अब वादी शंका करता है कि यह युक्ति से तत्व-ज्ञान न्याय व वैशेषिक में कहा गया है। इस कारण यह उसमे आ चुका है। यदि किसी भाग में यह उनसे विरुद्ध है तो युक्तियों के आपस में विरुद्ध होने से दोनों का ही प्रमाण कठिन होगा। विज्ञान भिक्षु उत्तर देता है कि ऐसा मत कहो कारण यह कि व्यवहारिक और पारमार्थिक रूप विषय का भेद है। अतएव न तो सांख्य का विषय न्याय और वैशेषिक मे आ गया है और न उनका विरोध ही है।

प्रिय पाठक! आपने समझ लिया होगा कि विज्ञानुभिक्षु जिसने कई दर्शनों का टीका किया है और वर्त्तमान काल के पंडित उसको प्रामाणिक मानते हैं। वह भी इस पक्ष की पुष्टि करता है कि न्याय वैशेषिक प्रथम के हैं, जैसा कि सांख्य-दर्शन के मूल में न्याय वैशेषिक का कथन किया गया है और टीकाकार विज्ञानभिक्षु भी उनको सांख्य मे प्रथम का मानता है, फिर कुछ महाशयों का कथन कि जो दर्शनों के मत से अनभिज्ञ है, किस प्रकार प्रामाणिक हो सकता है।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि यह सांख्य-दर्शन कपिल का बनाया हुआ नहीं प्रत्युत तमाम सांख्य सूत्र जो कि कपिल जी ने केवल तत्व की व्याख्या के निमित्त बनाये हुये हैं; परन्तु उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि इसी सांख्य के सूत्रों को पेश करके बहुत से लोगों ने सांख्य को नास्तिक वा अनीश्वर वादी सिद्ध करने का यत्न किया है, अगर यह सूत्र न

हो तो कपिलजी को कोई नास्तिक कह ही नहीं सकता था, केवल इन सूत्रों में इस सूत्र को देख कर लोगों को भ्रम होगया।

ईश्वरासिद्धेः।

अर्थ—ईश्वर की सिद्धि नहीं होती; क्योंकि ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण तो हो ही नहीं सकता; क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं और प्रत्यक्ष इन्द्रिय जन्म होता है, जिसका तीन काल प्रत्यक्ष न हो उसका अनुमान भी हो नहीं सकता; क्योंकि अनुमान ज्ञान व्याप्ति यानी सम्बन्ध से होता है और जिसका तीन काल में प्रत्यक्ष नहीं उसकी व्याप्ति हो ही नहीं सकती, रहा शब्द सो वह आप्त के होने से प्रमाण होता है और आप्त कहते हैं जो धर्म से धर्मों का ज्ञान प्राप्त कर के उपदेश करे ईश्वर के परोक्ष न होने से उसके धर्म का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। अतएव ईश्वर में कोई प्रमाण नहीं और प्रमाण के न होने से उसकी सिद्धि सांख्य के माने हुये प्रमाणों से नहीं हो सकती।

प्रिय पाठको! अब आप समझ गये होंगे कि दर्शनों का यह क्रम है, गौतम का न्याय दर्शन १—कणाद का वैशेपिक दर्शन २—कपिल का सांख्य दर्शन ३—पातंजलि का योग दर्शन ४—जैमिनी का मीमांसा दर्शन ५—व्यास का वेदान्त दर्शन ६—यह सिद्धान्त तो आज तकके विद्वानों का चला आया है।

नियोग और उसके दुश्मन

संसार की विचित्र गति है। ऋषियों की संतान कहलाने-वाले लोग ऋषियों के सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर मनगढ़ंत बातों के द्वारा अपने मनको चलाना चाहते हैं। यद्यपि मुसलमान और ईसाई लोग इन सिद्धान्तों को न समझते हुए इनके विरोधी थे; परन्तु आज कल अपने आपको व्यास और वशिष्ठ की सन्तान कहलानेवाले ब्राह्मण और पण्डित नामधारी आर्यसमाज से सामना करने के लिये और किसी अच्छी युक्ति के पास न होने से इस सिद्धान्त को अन्यथा वर्णन करके अज्ञ और भोले-भाले वैश्यों क्षत्रियों आदि को वैदिक धर्म से घृणा उत्पन्न कराने का प्रयत्न करते हैं। इसलिये आवश्यकता प्रतीत होती है कि आज हम इस बात पर विचार करें कि वस्तुतः नियोग क्या है? और उसके शत्रु कौन हैं। जिन लोगों ने वैदिक सिद्धान्तों का अन्वेषण किया है वे कर्मों को तीन भागों में विभक्त करते हैं। प्रथम 'धर्म' उन कर्मों का नाम है जिनके करने से पुण्य और न करने में पाप होता है। दूसरे 'अधर्म' जिनके करने में पाप और न करने में पुण्य होता है। तीसरे 'आपद्धर्म' जिनके करने में न पुण्य और न पाप होता है। जैसे सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि पञ्च यज्ञों का करना धर्म है और मद्य मांसादि का सेवन तथा चोरी जारी की प्रकृति का होना अधर्म है तथा व्याधि चिकित्सा प्राण रक्षार्थ युद्ध अथवा नियोग इत्यादि आपद्धर्म हैं—बहुत से लोगों को यह धोखा दिया जाता है कि आर्यसमाज १० पति करने की आज्ञा देता है और इसी प्रकार की और भी बातें कहते

हैं—परन्तु जो आदमी सत्यार्थ प्रकाश को विचार की दृष्टि से देखता है उसको स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी दयानन्द ने जो लिखा है वह सही लिखा है कि जिसका खण्डन कोई निष्पक्ष व्यक्ति नहीं कर सकता। (देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ११२ और ११३)

प्रश्न—जब वंशाच्छेदन हो जावे तब भी उसका कुल नष्ट हो जावेगा और स्त्री पुरुष व्यभिचार आदि में प्रवृत्त होकर गर्भ-पातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे इसलिये पवित्र विवाह होना अच्छा है। इस पर स्वामी दयानन्दजी जवाब देते हैं—

उत्तर—नहीं नहीं जो स्त्री, पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपनी स्वजाति का लड़का गोद लेंगे, उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें। महाशयो! इस लेख की विद्यमानता में सनातन धर्म सभा के पण्डितों का स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी पर दोष लगाना क्या उनकी कलुषित हृदयता को नहीं सिद्ध करता, क्योंकि स्वामी दयानन्द उस दशा में नियोग की आज्ञा देते हैं जो ब्रह्मचर्य से स्त्री पुरुष रह सकते हैं उनके वास्ते नियोग करने की इजाजत नहीं और जो ब्रह्मचर्य से नही रह सकते उनके वास्ते आवश्यक रीति पर दो कामों में से एक करना पड़ेगा चाहे वह नियोग करे अथवा व्यभिचार परन्तु व्यभिचार में ये दोष आते हैं प्रथम तो व्यभिचारी किसी वर्ण का ध्यान नहीं रखते जिससे यदि सन्तान उत्पन्न होगी तो वर्णसंकर दूसरे व्यभिचार छिपकर किया जाता है, उससे जब सन्तानोत्पत्ति का समय होगा तो लज्जा से स्त्री वा उसके कुल के लोग गर्भपात करा देंगे, जिससे एक मनुष्य का प्राण जाने के

अतिरिक्त राजदण्ड भी भोगना पड़ेगा, इसलिये नियोग व्यभिचार से उत्पन्न होनेवाले वर्णसंकर, गर्भपात तथा राजदण्ड के रोगों की चिकित्सा है। इसलिए जो नियोग का खण्डन करता है वह वस्तुतः देश में व्यभिचार फैलाकर वर्णसंकरों की सहायता और गर्भपात का प्रचार करना चाहता है। अतः प्रत्येक मनुष्य अपने समुदाय को बढ़ाना चाहता है ईसाई, ईसाई मत को फैलाना चाहते हैं और मुसलमान इसलाम को फैलाने में अपना व्यय करते हैं। सन्यासी अपने समुदाय की उन्नति चाहते हैं निदान संसार के इस नियम के अनुसार मालूम होता है कि नियोग के शत्रु या तो वर्ण संकर हैं अथवा व्यभिचारी और गर्भपात के अभ्यासी हैं और लोगों को इस कार्य से दूर करके अपने समुदाय की उन्नति चाहते हैं। यदि कोई कहे कि हम पुनर्विवाह से काम ले लेंगे जैसा कि प्रश्न कर्ता का मत है तो धर्म सभा पुनर्विवाह के भी विरुद्ध है इसलिये उसे तो इस उत्तर से कोई लाभ नहीं हो सका। इस पर पण्डित ज्वालाप्रसाद जी ने एक और आक्षेप किया है कि स्वामी दयानन्द जी ने दस पति करने की आज्ञा दी है—यद्यपि स्वामी दयानन्द जी ने १० पति करने की आज्ञा नहीं दी प्रत्युत नियोग करने की सीमा बतलाई है। यदि हम ब्रह्मचर्य कायम न रख सकने से नियोग भी करें तो १० से आगे न बढ़ें। जैसे बेद मन्त्र ने १० पुत्र उत्पन्न करने का उपदेश किया है। क्या वेद का इससे यह अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य के लिये १० सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक है। नहीं नहीं उसका मतलब यह है कि २५ वर्ष जो गृहस्थाश्रम की सीमा है, उसमें से १० से अधिक सन्तान उत्पन्न न करे; क्योंकि उस दशा में संतान निर्बल हो जावेगी। यदि कोई आदमी समस्त जीवन पर्यन्त ब्रह्म चारी रहे तो वेद उसे पापी नहीं बतलाता। यदि १० संतान उत्पन्न

करना आवश्यक हो तो भीष्म इत्यादि महात्मा, जिन्होंने विवाह नहीं किया, पापी होते परन्तु वेद का अर्थ यह है कि यदि ब्रह्मचारी जीवन पर्यन्त न रह सके तो करे; परन्तु अधिक सन्तान उत्पन्न न करे। यदि विवाहित पति मर जावे वा स्त्री मर जावे तो व्यभिचार न करे प्रत्युत नियोग करे परन्तु नियोग की दशा में भी १० से अधिक न करे। शोक! जो लोग विधि वाक्य आदि को भी न जान सकें वे महोपदेशक कहलायें। महात्माओं ने तो पहिले ही कह दिया था कि जिस देश में जो लोग पूजा करने लायक नहीं हों पूजे जावें और जो पूजा करने योग्य हैं उनकी पूजा न हो वे उस देश में दारिद्रय और विग्रह आदि उत्पन्न होकर दुःख दिया करते हैं। ऐसे महोपदेशक के उपदेश और पूजा का फल है कि वैदिक धर्म को माननेवाली हिन्दू जाति आज मृतकों में परिगणित होती है। ६ करोड़ हिन्दू मुसलमान हो चुके। ३० लाख हिन्दू ईसाई हो चुके। व्यभिचारी छली कपटो और नास्तिकों की तो कोई संख्या ही नहीं। जगदीश्वर! तू इस देश के वासियों को बुद्धि दे जो अपने पूज्य और अपूज्य में भेद कर सकें। (आक्षेप) स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ११६ वें पृष्ठ पर लिखा है—"हे विधवे तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के शेष पुरुषों में से जीते हुए पति को प्राप्त हो" क्या इससे बढ़कर कोई निकृष्ट शिक्षा हो सकती है।

उत्तर—यदि वही नियोग का अधिकार बतलानेवाला पहिला वाक्य जिसको स्वा० दयानन्द पृष्ठ ११२, ११३ में बतला चुके हैं इससे मिलाकर पढ़ा जावे तो मालूम हो कि ये शिक्षा खराब है या अच्छी—इस वाक्य को इस प्रकार पढ़ो—"हे विधवा स्त्री यदि तू ब्रह्मचर्य से रहकर अपने कुल के किसी लड़के को गोद लेकर

काम चला सके तो बेहतर वरना उस मरे हुए पति की आशा छोड़कर अपने कुल के शेष अधिकारी पुरुषों में से जीते हुए पति को प्राप्त हो।

प्रश्न—क्या इस दशा में यह शिक्षा ऐसे समय में जब कि सामने पति मरा पड़ा हो बुरी नहीं मालूम होगी ! क्योंकि पति शोक करनेवाली स्त्री को ऐसे शब्दों का कहना बहुत ही बुरा मालूम होता है।

उत्तर—नित्य प्रति देखने से मालूम होता है कि बहुत-सी स्त्रियाँ तो पति से प्रेम रखती हैं और बहुत से स्थानों में मनोमालिन्य होता है, अब जो स्त्री पति से प्रेम रखती है उसको तो दुःख होगा और वह पहले शब्दों को ग्रहण नहीं कर सकती है परन्तु जो स्त्री पति से असन्तुष्ट रहती थी सम्भव है वह पति के मरने से व्यभिचारिणी हो जावे। इसलिये इस व्यभिचार को दूर करने के वास्ते उसी समय उपदेश की आवश्यकता है अन्यथा सम्भव है कि जब तक आप शोक आदि से पृथक् होने के समय तक निश्चिन्त होकर के उसे उपदेश करें, उससे पहले वह व्यभिचारिणी हो जावे जिससे नियोग का अर्थ ही नष्ट हो जावे।

प्रश्न—क्या पति के जीवन में नियोग करना उचित हो सकता है, यह बहुत ही लज्जा की बात है।

उत्तर—चाहे पति मर गया हो वा जीवित हो—जिस दशा में व्यभिचार का भय हो उसी दशा में नियोग की आज्ञा है ; क्योंकि नियोग ही उस व्याधि की औषधि है। जिस दशा में उस रोग के उत्पन्न होने का विश्वास हो जावे, उसी दशा में नियोग की आज्ञा है ; क्योंकि जो जिस व्याधि की औषधि है, जिस दशा में उस रोग के उत्पन्न होने का विश्वास हो जावे, उसी दशा में वह औषधि देनी चाहिये।

प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के पृ० १२० और १२१ में लिखा है कि गर्भवती स्त्री से १ वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जावे तो किसी से नियोग करले क्या गर्भवती स्त्री को नियोग कराओगे ? ये कैसी आज्ञा है ?

उत्तर—शोक ! यदि आप इस वाक्य का अर्थ समझते, तो ऐसा क्षुद्र आक्षेप न करते—यथा एक पुरुष की स्त्री गर्भवती है—उस पुरुष से एक वर्ष तक ब्रह्मचारी न रहा जावे तो अब या तो वह नियोग करे या व्यभिचार करे। व्यभिचार से फिर वही दोष उत्पन्न होंगे जिनका वर्णन पहले आ चुका है इसलिये वह पुरुष नियोग करले न कि गर्भवती स्त्री और पुरुष के दीर्घ-रोग होने में स्त्री से न रहा जावे तो वह व्यभिचार करे प्रत्युत नियोग करले यदि सत्यार्थ प्रकाश के इसमे अगले शब्द ही पढ़ दिये जायँ जिन के पढ़ने से पब्लिक को भ्रम में डालने के लिये ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने रोक दिया था तो स्वर्गीय दयानन्द की सचाई प्रकट होकर पं० ज्वालाप्रसाद के मिथ्यात्व की कलई खुल जावे। स्वामीजी कहते हैं कि वेश्यागमन और व्यभिचार कभी न करे। यह शब्द स्पष्ट बतला रहे हैं कि जब स्त्री गर्भवती होने की दशा में पुरुष से रहा न जाय तो वह वेश्यागमन न करे प्रत्युत नियोग करले ऐसे ही पुरुष के दीर्घरोग होने की दशा में स्त्री से न रहा जावे तो छिप कर व्यभिचार न करे प्रत्युत नियोग करले इस प्रकार के स्पष्ट शब्दों की विद्यमानता में ज्वालाप्रसादजी का स्वामी दयानन्द सरस्वती पर दोष लगाना उनके स्वार्थ का पता दे रहा है।

प्रश्न—पाराशरस्मृति में लिखा है कि कलियुग में ५ बातों का निषेध है—एक घोड़े को मार कर हवन करना, दूसरे गौ को मार

कर हवन करना, तीसरे संन्यास, चौथे मांस के पिण्ड देना और पॉचवें देवर से सन्तान उत्पन्न करना।

उत्तर—इस तुम्हारे प्रमाण से तुमको तो मालूम हो गया कि सतयुग, द्वापर और त्रेतायुग में नियोग विहित था केवल कलियुग में उसका निषेध है अर्थात् नियोग करनेवाले सत्ययुगी धर्म को मानते हैं और नियोग न करनेवाले कलियुगी धर्म को परन्तु क्या ये अद्भुत बात नहीं कि जिसका नाम सत्ययुग रक्खा जावे उसमें गौ मार कर हवन किया जावे जिसको कि वेदों ने अघ्न्या अर्थात् न मारने योग्य लिखा है क्या कोई बुद्धिमान् स्वीकार करेगा कि सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापर में वेद के विरुद्ध करना धर्म समझा जाता हो और कलियुग में उसका निषेध हो, इस श्लोक से स्पष्ट रीति पर प्रकट होता है कि ये उस समय में बना है कि जब वाम-मार्ग के कारण यज्ञों में हिंसा का प्रचार जारी हो चुका था और मृतक पितरों के माननेवाले उत्पन्न हो चुके थे तथा मांस के पिण्ड देने का प्रचार हो चुका था; परन्तु इससे भी टपकता है कि इस श्लोक का आज तक विद्वानों ने प्रमाण नहीं माना। यह तो विचार नहीं हो सकता कि इस श्लोक के बनने के पश्चात् पाराशरी पढ़ने पर विद्वानों ने इसे न देखा हो; परन्तु इस श्लोक में संन्यास को भी कलियुग में निषेध किया है; परन्तु कलियुग में संन्यासियों के बड़े-बड़े आचार्य हुए हैं जहाँ संन्यासियों के ११ आचार्य बतलाये गये हैं उनमें शुकदेव, गौड़पादाचार्य, गुरुगोविन्दाचार्य और शङ्कराचार्य तो इस श्लोक के बनने के पश्चात् संन्यासी हुए हैं; क्योंकि पाराशरजी, व्यासजी के पिता थे और शुकदेवजी व्यासजी के पुत्र जिससे स्पष्ट विदित होता है कि या तो इन लोगों के पश्चात् यह श्लोक बनाया गया है या इन लोगों ने इस श्लोक को प्रमाण ही नहीं माना। श्लोक को प्रमाण मान कर कोई कलियुग

में संन्यासी हो ही नहीं सकता ; परन्तु काशी में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती—स्वामी भास्करानन्द सरस्वती स्वामी नारायण आश्रम—और शङ्कराचार्य आदि के नाम प्रसिद्ध हैं—एक शङ्कराचार्य शरदामठ के इस पीलीभीत में ही चक्कर लगा गये क्या ये सारे संन्यासी आचार्य मूर्ख हैं, जो कलियुग में संन्यास ले रहे हैं कदापि नहीं। ये विद्वान् लोग श्लोक के आशय से अभिज्ञ हैं और उसे सबसे अधिक प्रतिष्ठा नहीं देते ; क्योंकि वह जानते हैं कि पाराशरजी के नाम से यह श्लोक बनाया गया है ; उन्होंने खुद नियोग किया है सत्पुत्र व्यासजी ने चित्रांगद और चित्रवीर्य की स्त्री अम्बा और अम्बालिका से नियोग करके धृतराष्ट्र और पाण्डु को उत्पन्न किया और दासी के साथ नियोग करने से बिदुरजी पैदा हुए। अर्जुन आदि पाण्डव भी इसी नियोग से उत्पन्न हुए। नियोग से उत्पन्न हुई सन्तान संकर कहलावें यह ठीक नहीं। उनका ऐसा मानना भूल है। क्योंकि यदि नियोग की उत्पन्न हुई सन्तान संकरों में परिगणित होती तो किस प्रकार महात्मा कृष्ण जो कि सनातन धर्मियों के विचार में ईश्वर के अवतार और यादव क्षत्रिय थे अपनी बहन का विवाह अर्जुन से होना स्वीकार करते ? कोई भी पुरुष वशिष्ठ और व्यास के कुल का शुद्ध नहीं हो सकता यदि नियोग अनुचित हो। जो लोग कहते हैं कि द्विजों में नियोग की आज्ञा नहीं वे दूसरे शब्दों में यह सिद्ध कर रहे हैं कि व्यास, वशिष्ठ आदि द्विज न थे। बलिहारी ऐसी समझ की। पं० ज्वालाप्रसादजी ने नियोग की हँसी उड़ाने के लिये उस नियोग के सम्बन्ध में जो पति के परदेश जाने की दशा में बतलाया है यह कहा था कि यदि नियुक्त पति से स्त्री गर्भवती हो जावे और असल पति आ जावे तो अवश्य दोनों में झगड़ा होगा कि ये लड़का हमारा है गोया लट्ठों तक नौबत आ जायगी। पं० जी ने कदाचित नियोग

करनेवालों को महामण्डल का उपदेश समझ लिया होगा कि वह दक्षिणा के ख़याल से था, एक दूसरे को प्रतिष्ठा के विचार से लट्ठमलट्ठा करते हैं। रजिस्टर्ड महामण्डल का झगड़ा बंगबासी—भारतमित्र, वैंकटेश्वर के पढ़नेवालों से छिपा नहीं है; परन्तु पं० जी साहब इस प्रकार का लट्ठमलट्ठा व्यभिचार बतलाते हैं और नियोग करनेवाले जो विवशता की दशा में धर्म छोड़ना नहीं चाहते वह लड़ाई नहीं किया करते—इसका प्रमाण आप अपनी द्रौपदी के ५ पति होने से ही देख लीजिये क्या कभी लड़ाई हुई—कभी नहीं। महाशय! नियोग आपद्धर्म है जिसको व्यास, वशिष्ठ और अर्जुन जैसे महात्माओं ने किया है, जो सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में अधिकार के अनुसार होता था। इसके विरुद्ध वे लोग हैं जो वेश्यागमन को पाप नहीं समझते। जो गर्भ-पात को बुरा नहीं समझते जो वर्ण संकरों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं और अधर्म के यहाँ तक व्यसनी हो गये हैं कि आप बुड्ढे होने पर भी १० से अधिक विवाह करते जावें। विचारी—स्त्रियों को शूद्र बतलाकर उन पर अत्याचार करना उचित समझते हैं। ऋषि दया-नन्द धर्म का आचार्य था, उसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि एक ओर ४२ करोड़ ईसाई, एक ओर ५२ करोड़ बौद्ध, एक ओर २० करोड़ मुसलमान और एक ओर २० करोड़ हिन्दू यहूदी इत्यादि, सारांश यह कि डेढ़ अरब आदमी था दूसरी ओर बाल ब्रह्मचारी परोपकारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जिसने तमाम दुनिया को दिखला दिया कि वैदिक धर्म के माननेवाले ब्रह्मचारियों में ये शक्ति हो सकती है कि वे ईश्वर का भरोसा लेकर सब संसार का सामना कर सकते हैं इतना ही नहीं; किन्तु सब जगत् को परास्त कर सकते हैं—आप ब्रह्मचर्य से शून्य समुदाय में सम्मिलित हैं—आप लोग दक्षिणा के वास्ते आपस में झगड़

सकते हैं। इस दशा में आप ऋषि दयानन्द का मुक़ाबिला तो एक ओर किसी ऐसे आर्यसमाजी उपदेशक का भी सामना नहीं कर सकते जो ऋषि दयानन्द के मोटे-मोटे सिद्धान्तों को समझ चुका हो। हम इस ट्रेक्ट के द्वारा आप को चैलेञ्ज देते हैं कि आप गुरुकुल बदायूँ के विद्यार्थियों से लेख द्वारा संस्कृत में शास्त्रार्थ करें आपकी समस्त योग्यता का प्रमाण तो गुहावर के शास्त्रार्थ में मिल गया था, जहाँ आपने कहा था कि आपने मुझे न्याय दर्शन के झंझट में डाल दिया—हम सनातन; धर्म के मंत्री और प्रधान महाशयों को सूचना देते हैं कि यदि वे वस्तुत: अपने धर्म को सच्चा समझते है, तो पं० भीमसेनजी और ज्वालाप्रसाद मिश्र को बुला कर उनका आर्य समाज के पण्डितों से शास्त्रार्थ कराकर निर्णय करें। यदि ज्वालाप्रसाद आदि का पक्ष सच्चा हो तो उसको स्वीकार करें अन्यथा वैदिक धर्म की शरण में आवें—पौराणिक धर्म का सच्चा सिद्ध होना असम्भव है कारण नीचे लिखे हैं:—

(१) जिस धर्म में विष्णु भगवान पर जालन्धर दैत्य की स्त्री वृन्दा का पातिव्रत धर्म नष्ट कराने के वास्ते धोखे से व्यभिचार करने का दोष लगाया गया हो और वृन्दा के श्राप से विष्णु का पत्थर हो जाना और विष्णु के श्राप से वृन्दा का वृक्ष हो जाना लिखा हो, उसको कौन सत्य सिद्ध कर सकता है। देखो पद्म पुराण या तुलसी शालिग्राम की कथा।

(२) जिस धर्म में विष्णु का शिर कट जाना लिखा हो, क्या उसे कोई सत्य सिद्ध कर सकता है। (देखो देवी भागवत हयग्रीव अवतार की कथा।)

(३) जिस धर्म में बकरे को काट कर बलिदान करना लिखा हो उसे कैसे कोई सत्य सिद्ध करेगा ? यह लीला तो ज्वालामुखी,

काँगड़ा, विन्ध्याचल, काशी, कलकत्ते के काली के मन्दिरों को देखने से स्पष्ट सिद्ध है।

(४) जिस धर्म में चक्राङ्कित अर्थात् रामानुजी लोगों के साथ रहने से ही ब्रह्म-हत्या का पाप होता है, उसे सच्चा सिद्ध करना असम्भव है।

(५) जिस धर्म में ५ पतिवाली द्रौपदी हो, नियोग से ५ सन्तान उत्पन्न करनेवाली कुन्ती हो, तारा जिसने नियोग या पुनर्विवाह किया। मंदोदरि, अहिल्या इत्यादि कन्याएँ कहलावें, वह धर्म किस प्रकार सच हो सकता है ? यद्यपि हम नहीं चाहते कि पुराणों की पोल खोलकर मृत हिन्दू धर्म को और भी गिराने का प्रयत्न करें ; परन्तु केवल इसलिये लिखा है कि जिससे समझदार हिन्दुओं को मालूम हो जाय कि जिस का नाम लोगों ने सनातन धर्म रक्खा है, वह वास्तव में पौराणिक धर्म है, जिसके कारण हिन्दू जाति इस मृतक दशा को पहुँची, उससे हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ नहीं इसलिये वे अपनी सन्तान को वैदिक धर्म की शिक्षा दिलाने का प्रयत्न करें।

मृतक श्राद्ध

श्राद्ध शब्द का अर्थ श्रद्धा अर्थात् मन में प्रतिष्ठा रखकर काम करना है। और जो मन में ऋषियों की प्रतिष्ठा को स्थिर करके कहा जाता है वह 'ऋषिश्राद्ध' कहलाता है और जो पित्तरों के वास्ते किया जाता है, वह पितृश्राद्ध कहलाता है। मनुष्य के प्रतिदिन के कर्त्तव्य जो पंच महायज्ञ कहलाते हैं उन में पितृ श्राद्ध मौजूद है मानों ये कर्म नित्य कर्म में सम्मिलित हैं, जिसका करना प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है; परन्तु आजकल श्राद्ध के विषय में एक और झगड़ा प्रारम्भ हो गया है, वह यह है कि श्राद्ध जीते पितरों का हो या मृतकों का। पौराणिक लोग तो जीते पितरों की जगह मृतकों का श्राद्ध कराते हैं और आर्य्य लोग जीवित पितरों का श्राद्ध करना बतलाते हैं। श्राद्ध कर्म तो आर्य्य और पौराणिक दोनों मानते हैं; परन्तु पौराणिक लोग आश्विन मास के पहले पक्ष के १५ दिनों में श्राद्ध करना विशेषत: आवश्यक धर्म मानते हैं और जिस दिन कोई मरा हो उस दिन ही उसका श्राद्ध करना आवश्यक है। अब इस विषय का निर्णय करना कि श्राद्ध मृतकों का हो या जीवितों का विवादास्पद है; परन्तु इतनी बात में दोनों पक्षों की समानता है कि श्राद्ध पितरों का होता है। जीवितों का पितर होना तो दोनों पक्ष मानते हैं; परन्तु मृतकों के पितर होने में आर्य-समाज आक्षेप करता है। धर्म सभा और पं० भीमसेन जी जो मृतकों के श्राद्ध को वेदोक्त कर्म मानते हैं उनका कर्त्तव्य है कि वह पहले मृतकों में पितृत्व धर्म को सिद्ध करें और ये भी सिद्ध करें कि मृतकों में पितृत्व धर्म कब तक

रहता है। पं० भीमसेनजी का यह लिखना कि श्राद्ध एक कर्म का नाम है उसके आगे मृत और जीवित शब्द लगाना ठीक नहीं—ऐसाही है जैसा कि कोई मूर्ति पूजक कहे कि उपासना या पूजा एक कर्म का नाम है उसमें जड़ चेतन का झगड़ा लगाना ठीक नहीं। अथवा शब्द प्रमाण को मानना आस्तिकता है, उसमें नये या पुराने अथवा सत्य और असत्य का झगड़ा लगाना ठीक नहीं। सो उनकी निर्बलता है; क्योंकि आप अच्छी तरह जानते हैं कि आपके माने हुए धर्मशास्त्रकार मनु ने लिखा है कि "यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेदनेतरः" ऋषियों का बतलाया हुआ और वेदशास्त्रानुकूल तर्क से अनुसन्धान जो किया जाता है वही धर्म कहलाता है। जबकि मनुजी धर्म में तर्क का प्रवेश मानते हैं, तो आपका यह लिखना कि श्राद्ध में मृतक और जीवित का शब्द लगाना ठीक नहीं—यह ठीक नहीं है। क्या यह विचार करना कि पितृत्वधर्म मृतकों में रहता है वा जीवितों में तर्क से बाहर है। तर्क को तो वैदिक विषयों में भी प्रविष्ट किया ही जाता है—जैसा कि लिखा है—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्त्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः॥

अर्थ—श्रुति अर्थात् वेद के वाक्यों से सुनो और उस का युक्तियों से अन्वेषण करो एवं जब अच्छी तरह अन्वेषण हो जावे उसे प्रयोग में लाओ यही फल प्राप्त होने के हेतु हैं। वैदिकधर्म के समस्त आचार्यों ने धर्म में बुद्धि का प्रवेश स्वीकार किया है—अब आप निर्बल विचारों को फैलाने के लिये धर्म को तर्क से पृथक् करना चाहते हैं जहाँ महात्मा मनु ने धर्म के लिये प्रमाण नियत किये हैं, वहाँ लिखा है—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

अर्थ—श्रुति अर्थात् वेद, स्मृति अर्थात् ऋषियों की पुस्तक सदाचार अर्थात् धर्मात्मा पुरुषों का आचार और आत्मा अर्थात् बुद्धि के अनुसार होना—ये चार प्रकार का साक्षात् धर्म कहलाता है अगर न्यायदर्शन को देखा जावे तो वहाँ भी शब्द प्रमाण की प्रशंसा मे ऐसा ही मिलता है, जिसने धर्म को साक्षात् करके उपदेश किया हो। (देखो न्याय दर्शन प्रथमाध्याय का सूत्र और उसका वात्स्यायनभाष्य)

आप्तोपदेशः शब्दः ।
आप्तस्तु साक्षात्कृतधर्मैत्यादि ॥

अर्थ—आप्त आदि से कहते हैं कि जिसने गुण और गुणी के सम्बन्ध को प्रत्यक्ष कर लिया अर्थात् ठीक रीति पर जान लिया जैसे देखी हुई बातों को कोई मनुष्य उपदेश करे। अर्थ को प्रत्यक्ष करना ही आप्ति कहलाती है, जिसको यह प्राप्त कहलाता है, अब उस शब्द को विभक्त करते हैं—

सद्द्विविधो दृष्टाऽदृष्टार्थत्वात् । इत्यादि ।

अर्थात् वह शब्द दो प्रकार का है, जिसका अर्थ यहाँ दृष्टि पड़े वह दृष्टार्थ हैं और जिसके अर्थ का आगे होना मालूम हो वह अदृष्टार्थ है यह सांसारिक कार्यों के सम्बन्ध में एक शब्द के दो भेद किये गये हैं।

प्रश्न—फिर ये क्यों कहते हो ?

उत्तर—वह यह न मान लें कि दृष्टार्थ में ही आप्तोप देश

का प्रमाण है अर्थ के मालूम करने से। प्रत्युत यह भी मानले कि शब्द अदृष्टार्थ में भी प्रमाण है—अर्थ के अनुमान होने से।

महाशयो! महात्मा वात्सायन के भाष्य से मालूम कर सकते हैं, कि जो अर्थ प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध हो सके, उसके सम्बन्ध में शब्द प्रमाण हो सकता है—दृष्टार्थ को तो प्रत्यक्ष से देख सकते हैं और अदृष्टार्थ को अनुमान से मालूम कर सकते हैं जिस अर्थ को प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों से न बतला सकते हों, उस अर्थ के बतलानेवाला आप्त ही नहीं कहला सकता; क्योंकि ऐसे अर्थ के होने न होने के सम्बन्ध में कोई प्रमाण ही नहीं। अब अनुमान के लिये व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध का सिद्ध करना आवश्यक है, जहाँ सम्बन्ध ही सिद्ध न हो, वहाँ अनुमान ही नहीं हो सकता है इस वास्ते मृतक श्राद्ध के वास्ते जब तक यह न सिद्ध किया जावे कि मृतकों में पितृधर्म रहता है और उसके श्राद्ध का फल प्रत्यक्ष वा अनुमान से सिद्ध होने योग्य है, तब तक मृतक श्राद्ध का बतलानेवाला आप्त नहीं कहला सकता। अगर कहो हम वेदों में सिद्ध करेंगे कि मृतक में पितृधर्म रहता है तो वेदों से सिद्ध होने के पश्चात तो प्रत्येक आस्तिक का कर्त्तव्य है कि उसे तर्क किये बिना सत्य माने: परन्तु आप बुद्धि के विपरीत अर्थ करेंगे, उसके सही होने के वास्ते आपके पास क्या प्रमाण है; क्योंकि वेद बुद्धि की सहायता के वास्ते बनाये गये हैं और उनमें जो कुछ लिखा है, वह सब बुद्धि के अनुकूल लिखा है—जैसा कि महात्मा कणादजी लिखते हैं—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ १ ॥

अर्थ—वेदों की रचना उसके बनानेवाले ने बुद्धि के अनुसार की है या यह कि वेद बुद्धि के अनुसार अर्थात् सहायता देनेवाले

बनाये गये हैं। जब कि वह बुद्धि के अनुसार बनाये गये हैं इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को तर्क के द्वारा निश्चय करने से कोई दोष नहीं। अब हम आपके पितृश्राद्ध का अन्वेषण करना चाहते हैं तो पूर्व यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पिता, पुत्र का सम्बन्ध जीव में है या शरीर में या विशिष्ट में; क्योंकि जिसमें हमारा पितृ सम्बन्ध होगा उसका श्राद्ध करने से हम पितृश्राद्ध के करनेवाले कहलायेंगे। पूर्व यह विचार उत्पन्न होता है कि पिता पुत्र का सम्बन्ध शरीर में है: क्योंकि पिता के वीर्य से हमारा शरीर उत्पन्न हुआ है परन्तु यह बात ठीक नहीं मालूम होती क्योंकि यदि पिता पुत्र का सम्बन्ध शरीर में माना जावे तो शरीर के दाह करने से पुत्र को पितृहत्या का पाप लगे; क्योंकि शरीर सच्चा पिता था परन्तु महात्मा गौतम जी ने शरीर के दाह करने अर्थात् जलाने में पातक या दोष नहीं माना। देखो गौतम सूत्र अध्याय १० सूत्र ४।

(शरीरदाहे पातकाभावात्)

यह सूत्र महात्मा गौतम जी ने आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि में दिया है। जिसका अर्थ यह है कि यदि शरीर और इन्द्रियों के अतिरिक्त कोई आत्मा न होता तो शरीर के जलाने में पाप होता—अतः शरीर के जलाने में पाप नहीं होता इसलिये मालूम होता है कि आत्मा शरीर से पृथक् है—पाप नहीं होता—इसका अर्थ यह है कि वेद ने शरीर के जलाने में पाप नहीं माना—जब ये सिद्ध हो गया कि पिता पुत्र का सम्बन्ध शरीर में नहीं—शरीर को जलाने से पितृ-हिंसा का पाप होता था तब ये विचार होता है कि पिता, पुत्र का सम्बन्ध जीव अर्थात् आत्मा है—अर्थात् पुत्र का आत्मा पिता के आत्मा से उत्पन्न होता है, जैसा कि ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है—

आत्मा वै जायते पुत्रः ।

अर्थात् आत्मा ही पुत्ररूप हो जाता है; परन्तु आत्मा को समस्त शास्त्रकारों ने अनादि और नित्य माना है—जब आत्मा उत्पन्न ही नहीं हुआ तो वह पुत्र किस प्रकार कहला सकता है। जीवात्मा नित्य होने से सखा है। महाभारत को देखने से इसका और भी प्रमाण मिल जाता है कि पिता, पुत्र आदि समस्त सम्बन्ध कर्म के सम्बन्ध से उत्पन्न हो रहे हैं, जिस समय शुकदेव जी को वैराग्य हो गया और वह घर से चले तो व्यासजी ने उनको पुत्र कहकर पुकारा तब शुकदेवजी ने कहा आत्मा में पिता, पुत्र का भाव नहीं, कई जन्मों में मेरा पुत्र हुआ, और ये बात कर्म सम्बन्ध से सम्भव भी है। इसलिये यह बात सर्व सम्भव है कि पिता, पुत्र का सम्बन्ध नित्य आत्मा में नहीं है: इसलिये पिता, पुत्र का सम्बन्ध विशिष्ट मालूम होता है अर्थात् पिता का शरीर और जीव मिलकर पुत्र के शरीर और जीव का प्रकट करनेवाला है—तब तक पुत्र के वर्तमान् शरीर और जीव का सम्बन्ध है तब तक ही उनमें पिता, पुत्र का सम्बन्ध है और अब जीव और शरीर का सम्बन्ध टूट जाने से विशिष्ट नहीं रहेगा—जीव और शरीर का सम्बन्ध जीवन में रहता है; इसलिये स्पष्ट सिद्ध है कि पिता, पुत्र का सम्बन्ध भी जीवितों में रहता है, मृतकों में विशिष्ट के नाश हो जाने से पितृ-धर्म ही नहीं रहता जहां पितृ-धर्म न हो वहाँ पितृश्राद्ध कैसा? क्योंकि जो ऋषि हो उसका श्राद्ध करने से ऋषि श्राद्ध होता है, जिसमें ऋषि-धर्म नहीं उसका श्राद्ध करने से ऋषिश्राद्ध नहीं होता—इसी वास्ते महात्मा कणादजी ने वैशेषिक दर्शन में लिखा है—

बुद्धिपूर्वो ददातिः ॥ ३ ॥ इत्यादि

अर्थ—श्राद्ध आदि दान इत्यादि सब विधिपूर्वक किये जाते हैं—जब ये जान लेते हैं कि जिसके वास्ते हम दान करते हैं, वह दान का पात्र है, तब ही दान का फल मिलता है, यदि वह दान का पात्र न हो तो उसको दान देने से दान का फल नहीं मिलता। लोक में भी देखा जाता है कि जो जिस काम पर नियत है, उसी को देने से गवर्नमेंट उत्तरदातृ होती है। मार्ग चलते अधिकारी को दान देने से चाहे वह गवर्नमेंट की प्रजा हो अथवा नौकर, गवर्नमेंट उसकी ज़िम्मेदार नहीं होती। इसी प्रकार जिसमें पितृधर्म है, वही पितृश्राद्ध का अधिकारी और जिसमें पितृधर्म नहीं वह पितृश्राद्ध का अधिकारो ही नहीं और जो पितृश्राद्ध का अधिकारी न हो उसका श्राद्ध करना पितृश्राद्ध करना कहला ही किस प्रकार सकता है? रहा ये कि पहले स्वामीजी मानते थे ये सम्भव है; क्योंकि स्वामी ने कुल वेदों का एक दिन में ही फैसला कर लिया था, जिस तरह पर वह वेदों का विचार और वेदभाष्य करने गये, उसी प्रकार जिसको अवैदिक पाते गये छोड़ते गये, किन्तु अन्त में स्वामी जी मानते थे कि आपका यह लिखना सत्य के नितान्त विरुद्ध है, आप स्वामीजी को प्रत्येक स्थान पर अपने जैसा बतलाने का प्रयत्न करते हैं—यह बिलकुल भूल है। कहाँ वह शख्स जो ८ वर्ष हुए केवल ३०) मासिक का नौकर था जो अब तक स्त्री और पुत्रों के प्रेम और स्नेह में फँसा हुआ हो और गोल मोल लिखने का अभ्यस्त हो और कहाँ बाल ब्रह्मचारी परोपकारी संन्यासी जिसने संपूर्ण संसार की अवैदिक कुरीतियों को दूर करने का बीड़ा उठाया और काशी जैसे विद्या के नगर पोपगढ़ में अकेले सैकड़ों पण्डितों से शास्त्रार्थ किया, जब तक आप काशी में जाकर शास्त्रार्थ न कर लें, तब तक आपको शास्त्रों और ब्राह्मणों ग्रन्थों का जाननेवाला नहीं मान

सकते। आप अपने मुँह से कुछ ही कहें और अपनी क़लम से कुछ ही लिख दें, यह आपका अधिकार है और आपने जो संस्कार-विधि का यह वाक्य लिखा है—

पितरः शुन्धद्ध्वम् ।

इस मंत्र से तर्पण करना लिखा है, क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि मृतक पितरों का तर्पण करना लिखा है नहीं ये तो मनु के उस श्लोक के जो समावर्तन के सम्बन्ध में अध्याय ३ में लिखा है कि अपने पिता को पलंग पर बिठाकर अपने धर्म को प्रकट करने के लिये प्रथम पानी या घी इत्यादि वस्तुओं से उसकी पूजा करे।

गृह्य सूत्र में तर्पण ही इस मंत्र से लिया है और स्वामीजी ने इस मंत्र से तर्पण लिया है, इस लिख देने से यह किस प्रकार सिद्ध हो गया कि मृतक पितरों का तर्पण लिखा है, जब तक मृतक में पितृधर्म का होना सिद्ध न कर लें तब तक आपका लेख नितान्त असत्य समझा जावेगा जब कि मृतक में पितृधर्म ही नहीं रहता तो मृतक श्राद्ध के अवैदिक होने में सन्देह ही क्या। आपकी यह प्रतिज्ञा कि जैसे मूर्तिपूजक लोग मूर्ति वेदानुकूल नहीं ठहरा सकते, आर्य मृतक श्राद्ध को वेद विरुद्ध सिद्ध नहीं कर सकते।

पण्डितजी महाराज! हम आपको ज़ोर से चैलेञ्ज देते हैं कि पहले आप वैदिक युक्ति और प्रमाणों से मृतकों में पितृधर्म का होना तो सिद्ध करें, जब कि मृतकों में पितृधर्म ही नहीं रहता तो मृतक श्राद्ध वेद विरुद्ध स्पष्ट सिद्ध ही है। पितृ श्राद्ध तो वेदानुकूल है, जिसको प्रत्येक आर्य मानता है। पंच महायज्ञों में पितृयज्ञ विद्यमान है, विवाद मृतक में पितृधर्म का है, जिसको

आपने छिपाने का प्रयत्न किया है। आर्य समाज की यह प्रतिज्ञा यदि होती कि पितरों का श्राद्ध नहीं होना चाहिए, तब तो आप का यह लेख कुछ गुरुता—आर्य समाज की यह प्रतिज्ञा कि मृतक में पितृधर्म नहीं रहता—जिसमें पितृधर्म न हो उसके श्राद्ध को पितृ श्राद्ध कहना नितान्त असंगत है—प्रश्नकर्त्ता ने भी मृतक श्राद्ध के विषय में प्रश्न किया था, आपने मृतक शब्द को पृथक् करके प्रश्न कर्त्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कर दी, सच-मुच आपने वही लोकोक्ति चरितार्थ की कि—

आम्रान् पृष्टे को विदारा(ना)माचष्टे।

महाशय जी! मैं आपको चैलेञ्ज देता हूँ कि आप स्वामी दयानन्द सरस्वती के जिस सिद्धान्त का खण्डन करना चाहते हैं, उसके खण्डन के वास्ते तैयार हो सबसे प्रथम इस मृतकश्राद्ध पर लेख द्वारा विचार हो—यतः आपने मृतक में पितृधर्म सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण नहीं दिया इस लिये यहाँ अधिक विवाद नहीं जब आप प्रमाण देंगे तब उत्तर दिया जावेगा।

वैदिक धर्म और अहले-इसलाम के अकायद (विश्वासों) का मुकाबिला

यह कहना तो नितान्त अनुचित है कि अहले-इसलाम में कुछ भी सचाई नहीं अगर तनिक भी सचाई न होती तो मुसलमानों के अस्तित्त्व का स्थिर रहना ही कठिन होता। अहले-इसलाम में सचाई मौजूद है ; परन्तु वह पूर्ण नहीं जहाँ तक मुसलमानों के मन्तव्य वेदों से उद्धृत किये गये हैं वे सम्पूर्ण सत्य से परिपूरित हैं ; परन्तु वेदों की शिक्षा के विपरीत केवल अरब देश के विचार अरबी सुधारक ने लिये हैं न तो वह सत्य ही हैं और न उन्हें मजहब से ही कुछ सम्बन्ध है। अब हम अहले-इसलाम के मन्तव्यों और वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का मुकाबिला करेंगे, जिससे वह अन्तर जो सम्प्रति भ्रम से उत्पन्न होगया है, दूर हो जावे।

वैदिक धर्म

वैदिक धर्म परमात्मा को एक मानता है—उसका कोई शरीक नहीं जानता। उसको सर्वव्यापक निराकार बतलाता है—सर्वान्तर्यामी और सर्व शक्तिमान होने से उसके कामों के वास्ते किसी पैग़म्बर या फरिश्ते की आवश्यकता नहीं बतलाया—परमेश्वर अपने काम बिना सहायता के स्वयं करता है। वह स्वयं प्रत्येक स्थान पर विद्यमान और अपने काम स्वयं करने वाला है।

अहले-इसलाम

अहले-इसलाम खुदा को एक वहदहू लाशरीक अद्वितीय कहते हैं और उसको आसमान पर मान कर दुनियां पर उसके

हुक्म फरिश्तों और पैगम्बरों के द्वारा प्रकट होना मानते हैं, उन्होंने प्रत्येक ईश्वरीय काम के वास्ते एक-एक फरिश्ता मुकर्रर कर रक्खा है, वह अपने गुणों से प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है; परन्तु जात से (स्वयं) अर्श मुअल्ला (आसमान) पर है।

अन्वेषण

जब कि ईश्वर को एक मानते हैं तो उसके कामों की सहायता के लिये पैग़म्बरों और फरिश्तों का नियम करना ईश्वर को ससीम ठहराना है। जो उसकी शान (सम्बन्ध) में कुफ्र (नास्तिकता) है। हमारे बहुत से मुसलमान भाई कहेंगे कि हम ईश्वर को अद्वितीय मानते हैं तो हम उनसे प्रश्न करते हैं कि अद्वितीय को तुम ससीम मानते हो या असीम, यदि ससीम मानो तो उसके साकार होने से सावयव मानना पड़ेगा और जो वस्तु सावयव है वह नाश होनेवाली है और जो नाश होने वाली है वह ईश्वर नहीं हो सकती। यदि वह असीम है तो पैग़म्बरों और फरिश्तों का मसला ग़लत होगा; क्योंकि पैग़म्बर कहते हैं पैगाम (समाचार) लाने वाले को और पैगाम सदा फासिले (अन्तर) से आया करता है। यदि ईश्वर और मनुष्यों में अन्तर मान लिया जावे तो ईश्वर ससीम सिद्ध होगा। इसलिये पैग़म्बरी का मसला इन्सानी बनावट है अगर लोग पैग़म्बरों को रिफार्मर (सुधारक) कहें तो ठीक हो सकता है; परन्तु उस दशा में वही का आना ठीक माना जावे तो भी ईश्वर को सीमाबद्ध मानना पड़ेगा; परन्तु असीम के पास आना जाना नहीं बन सकता। अब ईश्वर को ससीम माने तो नास्तिकपन से बढ़ कर दोषारोपण होता है। इसीलिये वही का आना भी ग़लत मालूम होता है। अब अगर फरिश्ते ख़ुदा के कामों में बतौर एजेण्ट तसलीम किये जावें तो भी ईश्वर को ससीम मानना पड़ेगा; क्योंकि असीम के

एजेण्ट हो नहीं सकते। इसलिये ईश्वर का अद्वैत जो इसलाम में था, वह कायम नहीं रहेगा।

इलहाम और आर्यसमाज

आर्यसमाज सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा की ओर से एक पूर्ण शिक्षा से भरा हुआ इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) नाजिल (प्रकट) होना स्वीकार करता है, जिस प्रकार परमात्मा ने आंखों की सहायता के लिये सृष्टि के आरम्भ में सूरज बनाया, इसी तरह मानुपी बुद्धि को धर्म का मार्ग दिखलाने के वास्ते सृष्टि के आरम्भ में वेद, जो ज्ञान विज्ञान का सूर्य है, उन ऋषियों के दिल में जिनको परमेश्वर ने सब से प्रथम उत्पन्न किया था उपदेश किया और उन्होंने आगे दूसरे ऋषियों को पढ़ाया। इस तरह सृष्टि के आरम्भ मे शिक्षा क्रम जारी किया, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि पूर्ण लाभ उठाती है। आर्यसमाज ईश्वर के ज्ञान को दूसरी बार प्रकट होना स्वीकार नहीं करता और नाहीं अपूर्ण शिक्षा को ईश्वर का उपदेश कहता है; क्योंकि आवश्यकता के समय आविष्कार करना मानुपी स्वभाव है और आवश्यकता से पूर्व आविष्कृत करना ईश्वर का। कारण कि वह सर्वज्ञ है, इस लिये उसका ज्ञान अपूर्ण नहीं हो सकता कि जिस से वैदिक धर्म में संशोधन अथवा निषेध करना पड़े। मंसूख करने के अर्थ ही उस मंसूख होने-वाले हुक्म की अनावश्यकता वा हानिकारक होने का हेतु है और जो अनावश्यक अथवा हानिकारक उपदेश करता है, वह सर्वज्ञ ईश्वर नहीं कहला सकता। इसलिये ईश्वर को अपूर्ण उपदेश का देने वाला मानना उसकी विद्वत्ता पर धब्बा लगाना है।

इलहाम और अहले इसलाम

अहले इसलाम भी ईश्वर की ओर से इलहाम का नाजिल होना

तसलीम करते हैं; परन्तु उनके यहाँ ईश्वर की आज्ञा जो इलहाम के द्वारा दुनियाँ पर नाजिल होती है, उसे बराबर बदलता रहता है और ईश्वर सदैव नवीन-नवीन पैग़म्बर भेजता रहता है और जो पैग़म्बर आता है, वह खुदा की तरफ़ से नई आज्ञा लाता है। पहली आज्ञा का निषिद्ध करता है—अहलेइसलाम के ख़्याल में जो हाकिम आवेगा, उसी का कानून या शरीयत प्रचलित होगी। गोया वह पैग़म्बरों की तब्दीली को हाकिम की तब्दीली समझते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि उनका हाकिम ईश्वर नहीं बल्कि पैग़म्बरों को हाकिम मान कर भी उनके क़ानून का बदलना तसलीम करते हैं—जो लोग खुदा को हाकिम मानते हैं, उनके ख़्याल में शरीयत का बदलना नामुमकिन हो सकता है और जो लोग पैग़म्बरों को हाकिम मानते हैं, उनके ख़्याल में शरीयत का बदलना आवश्यक बात है। जब मूंसा आया तब उसने तौरेत प्रकट की और जब दाऊद आया तब जबूर हुई। जब मसीह आया, इंजील आई और जब मुहम्मद साहब का वक्त आया तब क़ुरान नाज़िल हुआ—अब स्पष्ट प्रकट है कि ये पुस्तकें ईश्वरीय ज्ञान की नहीं प्रत्युत उपर्युक्त पैग़म्बरों की आज्ञायें हैं, जो कि उनके पश्चात् दूसरे पैग़म्बरों की शरीयत से निषिद्ध हो जाती हैं। जिस प्रकार अकबर का क़ानून जहाँगीर के समय तक रहा, जहांगीर का क़ानून शाहजहाँ के समय में बदल गया, इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अहले इसलाम के यहाँ कोई इलहाम नहीं बल्कि शरीयत हैं।

रूह—जीवात्मा और आर्यसमाज

आर्यसमाज के सभासद वेदों की शिक्षा के अनुसार आत्मा को अनादि और ईश्वर की मिलकियत समझते हैं, उनके विचार में जीवात्मा कभी अभाव से भाव में नहीं आई; परन्तु उसका

शरीर के साथ सम्बन्ध होता है, जिसे उत्पन्न होना कहते हैं। क्योंकि उत्पन्न होने के अर्थ---प्रकट होना है और आत्मा शरीर के बिना किसी प्रकार प्रकट नहीं हो सकती। इस वास्ते शारीरिक सम्बन्ध को लोग उत्पत्ति कहते हैं और जीवात्मा का एक शरीर को छोड़कर दूसरे में जाना स्वीकार करते हैं और उनके ख़याल में जीव शरीर से पृथक् होना मृत्यु है।

जीव और अहले इसलाम

मुसलमानों के सिद्धान्तानुकूल जीवात्मा उत्पन्न हुआ—और वह शरीर के साथ ही उत्पन्न होता है; परन्तु जीव का नाश होना स्वीकार नहीं करते—जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्मों का फल मुद्दत तक भोगता रहेगा, वह शरीर से एक बार निकलकर दुबारा जन्म नहीं लेगा—क़यामत (प्रलय) के दिन वह अपने कर्मों के हिसाब के वास्ते ईश्वरीय दरबार में पेश होगा, मृत्यु के दिन से प्रलय तक न मालूम कहाँ रहेगी।

अन्वेषण

अहले इसलाम की रूह न तो वाजिबुलवजूद है; क्योंकि वाजिबुलवजूद उत्पत्ति से रहित होता है और नाहीं मुमकिन-उलवजूद है; क्योंकि मुमकिनउलवजूद का नाश आवश्यक है सिवाय वाजिबुलवजूद और मुमकिनउलवजूद के तीसरे मुमतनउलवजूद ही हो सकता है, क्या जिस मत में जीवात्मा हो मुमतनउलवजूद हो उस मजहब में कभी इल्मरूहानी हो सकता है! लेकिन जब पथप्रदर्शक अशिक्षित अर्थात् नितान्त विद्या रहित हों तो ऐसी असत्य बातें मजहब में दाखिल होना ही चाहिये यह आश्चर्य नहीं। यतः जीव के बिना मनुष्य के शरीर में विवेक नहीं हो सकता

जैसा कि मुर्दे के शरीर को देखने से प्रकट है; परन्तु जीवित मनुष्य विवेक रखता है, जिससे मालूम होता है कि मनुष्य, शरीर और जीव दो वस्तुओं का नाम है पस मुसलमानों के मत के अनुसार जो रूह मुमतनउलवजूद की सीमा में आती है वह जीव संसार में मौजूद है। जिससे स्पष्ट प्रकट है कि मुसलमानों के सिद्धांत विद्या और बुद्धि के अनुसार नितान्त मिथ्या हैं कोई योग्य से योग्य विद्वान और मौलवी मुसलमानों के सिद्धान्त को विद्या और बुद्धि के अनुसार सिद्ध नहीं कर सकता। इसी वास्ते मुसलमानों के बुजुर्गों ने अक़ायद इसलाम में अक़ल के दख़ल को मने किया था और मन्तक़ (तर्क) पढ़नेवालों को तुच्छ दृष्टि से देखा था और सिवाय तलवार के मुसलमानों की सदाक़त की कोई दलील पेश नहीं की थी; परन्तु अब समय आ गया कि जिस प्रकार और पैग़म्बरों की उम्मतें अपने ग़लत अक़ायद की वजह से तबाह हो गईं ऐसे ही इसलाम का भी इल्म और अक़्ल समय पर व्यर्थ-सा साबित हुआ। इस वास्ते इसलाम के विद्वान् तावीलों के भरोसे पर अक़ायद इसलाम को परीक्षा पर लाने को तैयार हो गये, जिससे दिन प्रति दिन इसलाम की क़लई खुलने लगी।

मुक्ति

मजहब की इल्लत गाई ही निजात जिसके अर्थ छूटना है—किससे छूटना? पाशविक इच्छाओं से, जो पाप और दुःख का हेतु हैं—जिन मतों की मुक्ति अपनी इच्छाओं से रहित नहीं वस्तुतः उस मत के प्रवर्तकों को मुक्ति का पता ही नहीं लगा इसलिये मतों के मुकाबिले में मुक्ति के सिद्धान्त की ओर ध्यान देना सबसे आवश्यक है, इसलिये यहाँ मुक्ति के सिद्धान्त का अन्वेषण किया जाता है।

आर्यों की मुक्ति

आर्य लोग मुक्ति में किसी प्रकार का इन्द्रिय—सुख नहीं मानते। बल्कि तमाम दु:खों से छूटकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त करना मुक्ति ख्याल करते हैं चूँकि मुक्ति के कारण हैं और जो वस्तु कारणों से उत्पन्न हो वह वाजिवुलवजूद हो नहीं सकती। इसलिये वह मुक्ति को मुमकिन उल वजूद अर्थात् आदि और अन्तवाला स्वीकार करते हैं।

मुसलमानों की मुक्ति

मुसलमान लोग आत्मिक मुक्ति से तो नितान्त अपरिचित हैं इनकी मुक्ति ७० हूरें अर्थात सुन्दर स्त्रियाँ और 'गिलमान्' अर्थात् खूबसूरत लौंडे मोती के रंगवाले और एक प्रकार का मद्य और 'खजूर' आदि मेवा अर्थात इन्द्रियों की इच्छाओं के पूरे करने के सामान हैं। अहलेइसलाम मुक्ति को उत्पन्न हुआ तो मानते हैं; परन्तु प्रलय तक मानने से उसका नाश नहीं मानते। इसलाम की समझ में उसकी मुक्ति इन्द्रियों की इच्छाओं में पूर्ण होने के कारण मुक्ति कहलाने के योग्य नहीं; किन्तु जो इच्छायें मुसलमान मत के संस्थापक के हृदय में थीं, जिनकी शिक्षा 'कुरान' से निकलती है वही वस्तु बहिश्त में बतलादी। कुल मुसलमानों के लिये एक साथ चार औरतों के साथ निकाह विहित रक्खा; परन्तु स्वयं उससे अधिक स्त्रियाँ कीं, जिस पर समझदार समझ सकता है कि इसलाम का संस्थापक बहुत-सी स्त्रियों की, इच्छा-वाला था इस वास्ते स्वर्ग में उसने ७२ हूरें बतलाईं और यत: आप अशिक्षित थे इसलिये मुक्ति के स्थान को छोड़कर मुमतनउलवजूद के गड़े में जागिरे। क्योंकि इसलाम की मुक्ति मुमतनउलवजूद है कारण यह है कि इसलाम की मुक्ति का आदि

है और उसके कारण भी हैं इसलिये वह वाजिबुलवजूद की सीमा से बाहर है। यतः वह प्रलय तक रहनेवाला है इसलिये उसका अन्त नहीं? अतएव मुमकिनुलवजूद की सीमा से बाहर है क्योंकि मुमकिनउलवजूद दो नफी (शून्यों) के मध्य होना आवश्यक है और प्रलय तक की मुक्ति में एक शून्य है, जो उसकी उत्पत्ति से पूर्व थी और दूसरी शून्य जो नाश के पश्चात होती है प्रलय तक होने से विद्यमान नहीं। जिसने इस मस्ले को हरएक वस्तु नाश होनेवाली है रद कर दिया, इसलिये प्रलयान्त तक की मुक्ति न तो वाजिबुलवजूद है और नहीं मुमकिनुलवजूद लिहाजा मुमतनउलवजूद होने में क्या शक है। बस विद्वान् लोग इसलाम को मुमतनउलवजूद के गढ़े में गिरा हुआ ख्याल करते हैं। अव्वल उनका जीवात्मा मुमतनतनउलवजूद दूसरे उनकी मुक्ति मुमतनवजूद इसलिये जब कर्ता का अस्तित्त्व ही इसलाम में मुमतनउलवजूद है तो मुसलमान मतानुयायियों को नारी होना आवश्यक है। इसलिये इसलाम के ७३ फिरकों में से विश्वासों की अपेक्षा से ७२ संप्रदाय नारी हैं केवल एक फिरक़ा नाजी है सो उसका कुछ पता नहीं कि कौन-सा फ़िरक़ा नाजी है। बलिहाज ऐमाल तो एक फ़िरक़ा भी नाजी नहीं, जब अहले इस्लाम की मुक्ति की यह दशा है कि न तो बलिहाज अक़ायद कोई नाजी और निजात मुमतनउलवजूद फिर किस प्रकार कोई बुद्धिमान इसलाम में जा सकता है; परन्तु मूर्ख और विषयों के दास हूरें खजूर शराब तथा गिलमान के लालच से इस मजहब को स्वीकार कर सकते हैं। इसी वास्ते रसूल ने अव्वल तो ४ यार बनाये अर्थात २ जमाई और २ सुसर अर्थात् "अली" और "उसमान्" तो हजरत के जमाई थे 'उमर' तथा 'अबूबकर' २ सुसर थे जब ये घर का समुदान बन गया तो 'जैद' गुलाम

और कुछ रिश्तेदारों को मिलाकर तलवार के जोर से इसलाम को फैलाया—हजरत के जीवन चरित्र को देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि 'अहद' और 'बदर' के युद्धों में तथा अन्यान्य अवसरों पर हजरत के दाँत तक शहीद हुए; परन्तु क्या कोई आत्मविद्या का प्रेमी इसलाम को ईश्वर की ओर से मान सकता है! जब कि न तो इसलाम में आत्मविद्या और न मुक्ति में ब्रह्मानन्द का लेश प्रत्युत विषयों के भोग और वह भी मुमतनउलवजूद पस यदि ऐसे ही मत ईश्वरीय कहलाने लगे तो यह लोकोक्ति चरितार्थ होगी।

अगर ईं मुकतबस्त ईं मुल्लां।
कारे तिफलां तमाम ख्वाहिद शुद॥

अक़ायद इसलाम पर अक़ली नजर

प्रिय मित्रो! मुसलमानों के विश्वास में मुक्ति का आदि तो माना हुआ सिद्धान्त है; परन्तु उसका अन्त नहीं। अब आप सोचें कि जब सृष्टि नियम तो यह है कि प्रत्येक वस्तु जिसका आदि होता है नाशवान मालूम देती है; परन्तु इसलाम आदिवाली वस्तु को प्रलय तक रहनेवाली मानता है यह भूल बहुत भारी है। इसके अतिरिक्त जब ये देखा जाता है कि संसार में एक किनारे वाला दरिया कहीं नजर नहीं आता, चाहे किसी चीज़ के किनारे न हों ये दूसरी बात है यदि किनारा हो तो एक कभी नहीं हो सकता—अर्थात जिसका आदि न हो, उसका अन्त नहीं होता परन्तु जिसका आदि हो उसका अन्त भी अवश्य है। यतः मुसलमानों के विश्वासों में इस प्रकार की असंख्य विद्या और बुद्धि की निर्बलतायें विद्यमान थीं और मुबाहिसे (विवाद) में अहले इसलाम उनके सिद्ध करने में अशक्त थे, इसलिये इसलाम में मजहब की अक़ल से तहकीकात न करना बतलाया है।

प्रिय महाशयो ! मुसलमानों के विश्वासों में मसलए-क़यामत (प्रलय का सिद्धान्त) भी एक माना हुआ सिद्धांत है ; परन्तु इस मसले पर विचार करने से मुसलमानी मत के संस्थापकों के विद्या और बुद्धि से शून्य होने का प्रमाण स्पष्ट रीति पर मिल जाता है ।

हमारे मुसलमान भाई अपने विश्वासों में ये मानते हैं कि जब कोई मनुष्य मर जाता है तो मुनकिर व नकीर व दो फरिश्ते उसकी कब्र पर आकर चन्द सवाल करते हैं और उसके पश्चात प्रलय के दिन ईश्वर प्रत्येक मनुष्य के कर्मों का हिसाब करता है इसका प्रमाण मुहम्मद साहब के लाहौर के छपे उर्दू जीवनचरित्र के पृ० २५० और २५१ के देखने से स्पष्ट मिलता है ; क्योंकि मुहम्मद साहब का इकलौता बेटा इब्राहीम मर गया तो उसकी कब्र पर मुहम्मद साहब ने ये शब्द कहे कि—"ए मेरे बेटे ये बात कह कि खुदा मेरा मालिक है—खुदा का रसूल मेरा बाप था और मेरा मज़हब इसलाम ।"

यह कारवाई मुहम्मद साहब ने इस लिये की थी कि बच्चे को फरिश्तों के प्रश्नों के उत्तर देने के लिय तय्यार करे जो मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार मुर्दे को क़ब्र में देने पड़ते हैं ।

प्रिय मित्रो ! आप ग़ौर से सोचें कि मुहम्मद साहब और उनके मानने वाले मुसलमानों को इस बात का ज्ञान नहीं कि मृत्यु केवल जीव और शरीर के पृथक् होने का नाम है जब जीव शरीर से निकल जाता है तब मृतक कहलाता है । इस दशा में वह किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं दो सकता और मुर्दे का क़ब्र में डाल कर उससे प्रश्नोत्तर करना क्या अर्थ रखता है ! क्योंकि कर्म करने वाला जीव तो शरीर से पहले पृथक् हो चुका अब

मृतक शरीर जिसने स्वयं कोई कर्म नहीं किया, केवल जीव ने जो इस शरीर का स्वामी था, कर्म किये थे। अब इस बेचारे शरीर से उन दोषों के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाते हैं, यहाँ पर यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है—

एक सीधा सादा सिपाही कहीं जा रहा था, मार्ग में उसे ज्ञात हुआ कि कोई आदमी किसी निर्दोषी का बध कर रहा है—वह तत्काल उस ओर पहुँचा परन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही बधिक ने उसको वध कर दिया था, अब सिपाही उसके पीछे दौड़ा, उस बधिक ने अपनी तलवार को फेंक दिया। सिपाही ने अपने सीधे-पन से यह समझ लिया कि बस बधिक का पीछा छोड़कर तलवार को पकड़ थाने में लाया और वहाँ पर लिखवा दिया कि इसने एक आदमी का खून किया है, इस वास्ते इस अपराधी को पकड़ कर लाया हूँ। अकस्मात् दारोगा भी इसी प्रकार के थे, उन्होंने तलवार से प्रश्न किया कि क्योंरी ! तूने मेरे इलाके में खून किया ? भला तलवार इसका क्या जवाब देती—दारोगा साहब गुस्से में आ चिल्लाकर बोले—तू उत्तर क्यों नहीं देती—निदान इसी प्रकार एक घंटे तक अपनी मूर्खता से तलवार पर क्रोध किया ; परन्तु उत्तर न मिला। इतने में एक समझदार आदमी वहाँ पर आ गया, उन्होंने इस तमाशे को देखकर पूछा—अरे भाई क्या मुआमिला है ? सिपाही ने कहा—अजी महाशय ! मेरे सामने इस तलवार ने एक आदमी का वध किया। अब हम इससे प्रश्न करते हैं तो उत्तर नहीं देती, यह बड़ी ढीठ है। उस समझदार ने उनकी बेवकूफ़ी को मालूम करके कहा—कहो जमादार इस मनुष्य को इसी तलवार ही ने बध किया था, या इसके साथ कोई और भी था ? सिपाही ने कहा—महाशय ! एक आदमी और भी था, जो भाग गया था ; परन्तु काटा तो इसी ने।

समझदार—तुमने आदमी को क्यों न पकड़ा ?

सिपाही—महाशय ! वह भाग गया और मुझे पकड़ने की आवश्यकता भी न थी ; क्योंकि बध तो इसने किया था, न कि उसने।

क्या उसके बिना यह अकेली कतल कर सकती है ?

सिपाही—क्या वह इसके बिना क़तल कर सकता था ?

समझदार—तो यह कहो न, कि दोनों ने मिलकर कत्ल किया, फिर तुम अकेले को क्यों पकड़ लाये ?

सिपाही—महाशय ! वह साथी नहीं था ; क्योंकि भाग गया अगर इसका साथी होता तो इसे छोड़ कर भाग क्यों जाता ?

समझदार—सच है जनाब ! उसके पकड़ने में तो कष्ट भी होता, इस वास्ते आप इसी को पकड़ लाये, ख़ैर यह तो बतलाइये कि कत्ल इसने किस प्रकार किया, जब कि उसके भीतर इच्छा ही न थी और वह इसके बिना दूसरे शस्त्र से बध कर सकता था ; परन्तु यह उसके बिना कुछ भी न कर सकती थी—समझदार आदमी की इस बात को सुनकर सिपाही घबराकर बोला—सुनो महाशय ! तुम पुलिस से तर्कबाद करते हो—हमारे इलाके में विद्या और बुद्धि का प्रवेश नहीं, यदि यहाँ उनको दख़ल दिया जाता तो ये हमारी कुल प्रजा को कल ही विद्रोही बना देते, कोई भी हमारा नाम लेता न रहता, तुमको हम इस वक़् हुक्म देते हैं कि तत्काल हमारे इलाक़े से बाहर चले जाओ, यदि तुमने फिर कभी यहाँ आने का विचार किया तो विद्रोही के अपराध में फाँसी दी जावेगी।

प्रिय मित्रो ! ये अन्धेर नगरी चौपट राजा का मुआमला अक़ायद इसलाम में मौजूद है। जो तर्क को दख़ल दे, वह नास्तिक कहलाये और जो तर्कशून्य—पशुओं की भाँति बुद्धि और

विद्या के विपरीत बातों को अपना सिद्धान्त बतलावे, वह मौमिन (धर्मात्मा) है।

यह आक्षेप जनक वार्ता थी अब असल मज़मून की ओर विचार कीजिए। अगर मुसलमान भाई ये कहें कि मुर्दों में भी जीवात्मा होता है और उसकी कब्र में जाता है तो इससे बढ़ कर दावा बेदलील और क्या हो सकता है ? क्योंकि मृतकों में जीव का कोई गुण मालूम नहीं होता ; चूंकि ससीम ईश्वर जो कि तख़्त पर बैठा हुआ है, आत्मा जैसी सूक्ष्म वस्तु को पकड़ नहीं सकता था और नाहीं उसके फ़रिश्तों में बेसबब ससीम और साकार होने के ये शक्ति है, इसलिये बेचारे ने शरीर से ही प्रश्नोत्तर करने प्रारम्भ कर दिये। दूसरे इस सिद्धान्त से ईश्वर दूसरे का आश्रित ठहर जाता है। क्योंकि इसका काम एजेण्टों के बिना चल नहीं सकता। तीसरे ईश्वर के सर्वज्ञ होने पर भी इसमें दोष आरोपण होता है। क्योंकि प्रश्न अज्ञता की दशा में हुआ करता है, जैसा कि एक योग्य आदमी लिखता है—"चूं दानी व परसी सवालत ख़तास्त" अर्थात् "अगर तू जानता है और पूछता है तो तेरा सवाल ग़लत है।" चूंकि ईश्वर सर्वज्ञ है इसलिये मुनकिर और नकीर के द्वारा प्रश्नोत्तर करके उससे ईश्वर का शुभाशुभ कर्मों का फल देना मूर्खों की मनगढ़न्त है ; जिस प्रकार हिन्दू मूर्खों ने, यम और उसके दूत और चित्रगुप्त और उसका बहीखाता गढ़ लिया है, इसी प्रकार मुसलमान मूर्खों ने मुनकिर और नकीर का मसला गढ़ लिया है। अब रहा प्रलय के दिन का हिसाब, इसमें यह आक्षेप उत्पन्न होता है कि जो मनुष्य मरता है, उसका जीव प्रलय के पहले यहाँ रहता है और शुभाशुभ कर्मों के लिये एक ही हवालात नियत है या पृथक्-पृथक् स्थान। यदि कहो कि एक ही स्थान तो इससे बढ़कर अत्याचार

और क्या हो सकता है ? "अन्धेर नगरी चौपट राजा—टके सेर भाजी टके सेर खाजा" अर्थात् नेकों को भी हवालात और बदों को भी ऐसा अंधेर किसी सांसारिक राजा के राज्य में नहीं तो उस न्यायकारी जगदीश्वर के राज्य में किस प्रकार हो सकता है यदि कहो कि नेकों के लिये पृथक् जगह नियत है और बदों के लिये पृथक् तो वहां सुख दुःख होगा ही बस न्याय हो चुका, अब प्रलय की आवश्यकता ही क्या है। क्योंकि जीव नित्य मरते हैं और नित्य ही ईश्वर उनके कर्मानुसार उन्हें अच्छे या बुरे शरीरों वा मकानों में पहुँचाता है। अतः जब कि ईश्वर नित्य प्रति कर्मानुसार अच्छी या बुरी दशा को पहुँचाता है तो प्रलय का सिद्धान्त बिलकुल गलत है और हिसाब करना भी अविद्या के रोग की औषधि है अन्यथा सर्वज्ञ तो हिसाब से पहले ही उसके कर्मों की समस्त व्यवस्था को जानता है और उसी के अनुसार दुःख वा सुख की जगह में पहुँचाता है ॥

प्रिय मित्रो ! मुसलमानों के कयामत के मसले (मुक्ति के सिद्धान्त से) इसलाम की इन वस्तुओं की अनभिज्ञता स्पष्ट रीति पर प्रकट होजाती है अर्थात् प्रथम तो इसलाम के संस्थापकों को आत्मा के अस्तित्व का कुछ भी ज्ञान न था, दूसरे ईश्वर के सर्वज्ञ आदि गुणों से नितान्त अनभिज्ञ थे, तीसरे मृत्यु का भी ज्ञान न था यदि कोई मुसलमानों की पुस्तकों को अन्वेषण की दृष्टि से पढ़े या मुसलमानों के विश्वासों को बुद्धिपूर्वक सोचे तो उसे मानना पड़ेगा कि इसलाम में आत्मविद्या का नाम भी नहीं होता जबकि उनकी ईश्वरीय पुस्तक में इस का कुछ भी वर्णन नहीं और न मुसलमानों के ईश्वर को जीव के अस्तित्व का ज्ञान मालूम होता है, जिससे स्पष्ट रीति पर पाया जाता है कि यह मत मानुषी-गढ़न्त है, इसमें जो कुछ सचाई है वह दूसरे मतों से ली

गई है जैसे "ईश्वर को एक मानना" यह वैदिक धर्म से लिया गया है। जैसा कि हम ट्रैक्ट नं० २ में दिखा चुके हैं। हाँ उसके पास जो कुछ अपना है, वह यह है कि मुहम्मद सली अल्लाह अलैउस्सलम पैगम्बर आखिर उल जमा अर्थात् सबसे अन्त का है और ईश्वर की पुस्तकों में संशोधन वा न्यूनाधिक्य होता है। कुरान खुदा की पुस्तक है या मजहब में अकल को दखल नहीं है या मजहब के वास्ते तलवार से काम लेना चाहिये दूसरे की धन सम्पत्ति को लूटकर लौंड़ी गुलाम बनालो या दूसरे लोगों के धार्मिक मन्दिर गिरादो—सधवा स्त्रियें लूट में आने से हलाल (विहित) हैं, इसी प्रकार की कतिपय और बातें हैं, जिनमें आध्यात्मिकता का नाम तक भी नहीं और न सचाई का उससे कोई सम्बन्ध हो सकता है।

प्रिय महाशयों ! हमारे मुसलमान भाई प्रायः सगर्व कहा करते हैं कि इसलाम की बराबर दुनियां में कोई मत नहीं ; परन्तु वह उसको बुद्धि से सिद्ध करहीं नहीं सकते ; क्योंकि उन्होंने अन्वेषण में बुद्धि से काम नहीं लिया, अब उनकी आध्यात्मिक विद्या पर कुछ और लिखा जाता है। मुसलमानों के मत में जीव का उत्पन्न होना माना गया है परन्तु प्रश्न यह है कि जीवात्मा साकार है वा निराकार ! यदि कहो साकार है तो उसका शरीर सावयव है वा निरवयव यदि कहो सावयव है तो उसका निर्माण किन वस्तुओं से हुआ है और वह नाशवान भी होगा। यतः संयोग के वास्ते परमाणुओं के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं तो सावयव मानने से परमाणुओं के संयोग से आत्मा की उत्पत्ति माननी पड़ेगी इस दशा में जीव और शरीर दोनों प्राकृतिक ठहर जावेंगे और यदि कहीं निरवयय है तो परमाणु सिद्ध होगा। प्रिय मित्रो ! यतः प्रकृति में विद्या का गुण नहीं अर्थात्

प्रकृति के अवयवों में विद्या का गुण नहीं पाया जाता और जो गुण कारण में विद्यमान न हो उसको संयुक्त में मानना नितान्त विद्या और बुद्धि के विपरीत है; क्योंकि हमने कभी नहीं देखा कि १० गर्म औषधियों के संयोग से सर्दी उत्पन्न होजावे अभाव से भाव की उत्पत्ति सिवाय मूर्खों के कोई भी नहीं मान सकता; क्योंकि उस दशा में कार्य और कारण का सिद्धान्त ही जाता रहेगा—और जब कार्य कारण का सिद्धान्त गिर गया तो इस सिद्धान्त से जिस प्रकार कारण को देखकर कार्य की उत्पत्ति का ख़्याल किया जाता है, वह सब ग़लत हो जावेगा और उस वक़्त सिवाय मोटे-मोटे सिद्धांतों के कुल आने वाले काम बन्द हो जावेंगे। यतः मनुष्य और पशुओं में केवल इतना अन्तर है कि मनुष्य कारण को देखकर कार्य की उत्पत्ति का ख़्याल करके आगे के लिये प्रबन्ध करता है ये सब काम बन्द हो जावेंगे केवल पशुओं की भाँति वर्तमान का प्रबन्ध करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य हो जायगा।

प्रिय मित्रो! उसलाम की इलहामी पुस्तक में जैसी परस्पर विरुद्ध आज्ञायें हैं, इनके देखने से मालूम होता है कि इन पुस्तकों का बनानेवाला विद्या से शून्य था; क्योंकि विद्वान पुरुष अपनी बात को आप काट नहीं सकता। जब साधारण विद्वान् अपनी बात को समझकर कहते और उसका पालन करते हैं तो ईश्वर जो नितान्त सर्वज्ञ और अद्वितीय है किस प्रकार अपनी बात का खण्डन कर सकता है और कुरान में तो एक स्थान पर ईश्वर को सबका स्वामी बतलाया गया है। देखो सूरत फ़ातहा परन्तु बहुत जगह "क़ल्लुल काफ़िरीन" अर्थात् "काफिरों के कत्ल" की आज्ञा दी गई है—बहुत से लोग कहते हैं कि काफ़िर किसे कहते हैं अगर कहो जो ख़ुदा को न मानता हो—वह काफ़िर है अथवा जो

ईश्वर को उसके सर्वोत्कृष्ट गुणों को पृथक् करके केवल उसकी निर्बलतायें आविष्कृत करके ईश्वर का अपमान करता हो—जैसे मूर्तिपूजक इत्यादि ईश्वर की महत्ता के विपरीत कार्य करते हैं तो इसलाम पर नास्तिकता का दोष स्वयं आजाता है ; क्योंकि उसने असीम ईश्वर की जगह ससीम और अनादि स्वामी के स्थान में उत्पन्न हुआ स्वामी और पुरातन के स्थान पर नूतन सिंहासनासीन और सर्व शक्तिमान् को दूसरों को आश्रित बना दिया, जिससे दुनियां में चारों तरफ़ पापों का ज़ोर फैल गया और यदि आप ध्यान से देखें तो वर्त्तमान समय में भी इसलाम की असत्य शिक्षा के कारण लाखों निर्दोष व्यक्तियों के ख़ून हो रहे हैं, करोड़ों मनुष्य मूर्खता के रोग में ग्रसित हैं और असंख्य आदमियों ने पक्षपात के कारण सचाई से शत्रुता ग्रहण करली है।

प्रिय पाठको ! यदि आप देखें कि इसलाम में कितने आदमी ईमानदार हैं जो आत्म संयम करते हैं, जिनके हृदय में न्याय और सचाई का घर है और जिनको ईश्वर का भय है तो आप बहुत ही कम व्यक्ति इस प्रकार के पायेंगे—अगर रंडियों का गिरोह है तो इसलाम में—अगर मूर्खता का ज़ोर है तो इसलाम में, अगर पक्षपात और रक्तपात का शोर है तो इसलाम में—इसकी बड़ी भारी वजह यह है कि धुने, जुलाहे, कसाई, भठियारे, चिड़ीमार इत्यादि समस्त क्षुद्र जातियाँ इसलाम पृष्ठपोषक हैं, जिनमें अविद्या के कारण क्रोध, स्वार्थपरता और आवेश अधिक होता है और क्षुद्रता के कारण अच्छी संगति से नितान्त शून्य होते हैं—प्रिय मित्रो ! इसलाम के क्षुद्र—लोग ही स्वार्थी नहीं होते प्रत्युत बड़े-बड़े विद्वान् और संयमी मुसलमान भी स्वार्थ के बशीभूत पाये गये हैं—तथा इसलाम के बड़े सहायक और संयमी बादशाह आलमगीर का हाल पढ़ो तो

इसलाम की शिक्षा की सारी कैफियत ग़लत होती हुई दृष्टि आवेगी—आलमगीर ने बाप को क़ैद किया—भाइयों को धोखा देकर मरवा डाला—अपने निकटवर्त्ती वंश में से अपनी सन्तान के अतिरिक्त किसी को शेष न छोड़ा, क्या इसलाम ने उसको इस पाप से रोका ? बिलकुल नहीं—क्या उसको किसी ने बुरा कहा बिलकुल नहीं—सोचने का स्थान है कि जिस मत में पिता की प्रतिष्ठा के स्थान में उनको क़ैद करना दुरुस्त, हो वह मत ईश्वर की ओर से ही सकता है ? यदि किसी साम्प्रदायिक प्रयोजन से यह काम जारी होता तो कदाचित् कोई मुसलमान ज़ुबान हिला भी सकता ; परन्तु अब किसी के पास उत्तर ही नहीं। क्योंकि औरंगज़ेब ने अपने पिता शाहजहाँ को जो राज-सिंहासन का अधिकारी था, राज्य देना चाहता था क्या अपने भाइयों को जो मुसलमान हो मार डालना ईमानदारी है, जैसा कि औरंगज़ेब ने किया।

प्रिय महाशयो ! यदि आप इस अत्याचारी बादशाह के सम्पूर्ण वृत्तान्त पढ़ेंगे तो उसके हिन्दुओं पर अत्याचार करने से आपको जो दुःख मालूम होगा, वह निष्प्रयोजन मालूम होगा। क्योंकि वहाँ से आपको मालूम हो जायगा कि इसलाम की प्रकृति ही अत्याचार है। जब मुसलमानों ने अपने स्वार्थ के लिये बाप तक को क़ैद किया—भाई भतीजों को मार डाला तो इस प्रकार के स्वार्थी और अत्याचारियों से हिन्दुओं को कष्ट न पहुँचता तो आश्चर्य की बात थी और मुसलमानों ने अपनी प्रकृति के अनुसार ईश्वर को भी न्यायी—दयालु—क्रूर और अत्याचारी बना दिया और यहाँ तक उसकी मान हानि की कि उसको शैतान के मुक़ाबले में लगा दिया। क्योंकि शैतान सदैव ईश्वर के भक्तों को बहकाता है और झूँठ तथा अत्याचारी उसका

कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते और संसार में मुसलमानों के कथनानुसार शैतान की प्रजा क्रूर और अत्याचारी ईश्वर की अपेक्षा बहुत अधिक है।

प्रिय महाशयो ! यदि औरंगज़ेब किसी हिन्दू बादशाह को क़ैद कर लेता और बिना अपराध के उसकी सन्तति को मार डालता तो हमारे मुसलमान भाई उसकी बहुत प्रशंसा कर सकते ; परन्तु जब उसने मुसलमान बादशाह को अपने स्वार्थ के लिये क़ैद किया और वह बादशाह कौन ? उसका पिता— उसने मुसलमान शाहज़ादों (राजकुमारों) को तबाह किया शाहज़ादे कौन ? उसके भाई ; परन्तु इस पर भी वह मुसलमान था। क्योंकि वह क्रूर और नृशंस था।

हम कहाँ तक लिखें मुसलमानों के अक़ायद का अजब हाल है न कोई बात माकूल है न संसार के लिये लाभकारी—वस्तुतः मुसलमानी मत स्वार्थपरता का स्रोत है और आत्मिक बातों का शत्रु है। इसका प्रत्येक विश्वास केवल ईमान ही ईमान है और कुछ नहीं, न तो इसके पैग़म्बर साहब सत्य विद्या से अभिज्ञ थे और न आध्यात्मिक विषय में उनका प्रवेश था, प्रत्युत वे संसार और विषय भोगों के दास थे, जो कि स्पष्ट रीति पर प्रकट है कि साधारण मुसलमानों के लिये चार स्त्रियाँ बतलाईं और जब हज़रत की अपनी इच्छा चार स्त्रियों से पूरी न हुई तो ग्यारह निकाह कर डाले, चार की सीमा को तोड़ दिया, अपने दत्तक पुत्र की स्त्री को सुन्दरी देखकर उसे बिला निकाह ही बीबियों में सम्मिलित कर लिया और कहा कि मेरा निकाह खुदा ने पढ़ दिया और 'आयशा' से नौ वर्ष की उम्र में समागम किया। निदान कहाँ तक लिखें औरंग वाशिंगटन के लिखे मुहम्मद साहब के जीवन चरित्र के देखने से स्पष्ट विदित होता

है कि इसलाम केवल पोलिटिकल उद्देश्य को पूरा करने और व्यभिचार फैलाने का नाम है, उसमें ईश्वर की पूजा और उसमें सच्चे लक्षणों का लेश तक नहीं। ओ३म्

अक़ायद इसलाम पर अक़ली नज़र। (ख)

प्रिय महाशयो! अक़ायद इसलाम में एक सिद्धान्त शैतान के अस्तित्त्व का है, जिसको बहुत से लोग 'बदी को ईश्वर' कहते हैं; परन्तु ये शैतान बड़ा ज़बरदस्त मालूम होता है, उसके हाथ से इसलाम के किसी पैग़म्बर को मुक्ति नहीं मिली। इसी शैतान ने आदम को बहकाकर बुराई और भलाई के विवेक का फल खिलाया था, जिससे मुसलमानों का आदि पुरुष ईश्वराज्ञा का उल्लंघन करनेवाला समझा जाकर बहिश्त (स्वर्ग) से निकाला गया। इसी प्रकार लगभग इसलाम के प्रत्येक वृद्ध पुरुष को तंग किया—आप कहेंगे कि शैतान कौन है? इसकी कहानी इस शुभ पुस्तकों में इस प्रकार पाई जाती है कि ये 'अज़ाज़ील' नामक फ़रिश्ता था—जिस समय ईश्वर ने आदम को उत्पन्न किया, उस समय समस्त फ़रिश्तों को आज्ञा दी कि आदम को सिजदा करें (शिर झुकावें) प्रत्येक फ़रिश्ते ने सिजदा किया परन्तु "अज़राईल" ने जो ईश्वर का भक्त और परम आस्तिक था, इसने मनुष्य पूजा से इनकार किया। बस वह बहिश्त से निकाला गया और उसका नाम शैतान रक्खा।

प्रिय मित्रो! यदि हम इस कहानी को सोचें तो ज्ञात होता है कि मुसलमानी पुस्तकों में उन आस्तिक मनुष्यों को जिन्होंने ईश्वर को छोड़कर मनुष्य पूजा नहीं की या जो ईश्वर के शरीक को बुरा समझते थे, उन्होंने अपनी विद्या के बल पर किसी

मुसलमानी पैग़म्बर के असत्य मन्तव्य को स्वीकार नहीं किया—शैतान बना दिया। क्योंकि इसलाम ईश्वर का शरीक माननेवाला है, उनके कलमे (महामन्त्र) में ईश्वर के साथ में मुहम्मद रसूल का रहना आवश्यक है और जो मुहम्मद को रसूल न माने वह मुसलमान नहीं हो सकता। चाहे वह कितना ही विद्वान् और ईश्वर भक्त क्यों न हो? क्योंकि शैतान से बढ़कर कोई विद्वान् और ईश्वर भक्त मुसलमानी पुस्तकों में पाया नहीं जाता और हजरत आदम को शैतान ने किस वस्तु का फल खिलाया था, जिससे नेकी बदी का उसे विवेक हो गया। लोग जानते हैं कि नेकी और बदी का विवेक किससे होता है? विद्या अर्थात् ज्ञान से, बस शैतान ने आदम को शिक्षा दी अर्थात् विद्या पढ़ाई, जिससे वह सत्य असत्य अथवा नेकी बदी का विवेक करने लगा—बस, चूंकि उसे ज्ञान हो गया और उससे यह आशा न रही कि प्रत्येक मिथ्या मन्तव्य को भी मानता जावेगा—तब मुसलमानों का ईश्वर घबरा गया और बेचारे आदम को जिसको 'अज़ाज़ील' जैसे अद्वैत, ईश्वर भक्त, विद्वान् और सच्चरित्र फरिश्ते ने शिक्षा देकर भूल से सत्य का पालन करने के लिये सद्यत कर दिया था, स्वर्ग से निकाल दिया।

प्रिय मित्रो! आप समझ गये होंगे कि जिस मनुष्य ने बुराई और भलाई के विवेक के वृक्ष का फल खाया है अर्थात् कुछ बुद्धि प्राप्त की है, वह तो मुसलमानों के स्वर्ग में रह नहीं सकता। हां जिसे भले बुरे का विवेक बिलकुल न हो और जो ईश्वर का शरीक कोई नहीं, वह दावा करता हुआ लाखों फ़रिश्ते और हज़ारों पैगम्बरों को प्रार्थना में सम्मिलित करके यह भी न समझे कि मैं मुशरिक अर्थात् ईश्वर का शरीक माननेवाला हूँ, ऐसे ही लोगों के लिये हूर, खजूर और मद्य की नहरों वाला बहिश्त मौजूद है।

यदि ध्यान से सोचा जावे तो स्पष्ट मालूम होता है कि बुद्धिमान् पुरुष न तो हूरों से समागम पसन्द करते हैं और नहीं मद्यपान को अच्छा समझ सकते हैं। बस उनको स्वयं ही बहिश्त से किनारा करना पड़ता है, केवल मूर्ख और अज्ञों को ही यह बहिश्त पसन्द है।

प्रिय महाशयो ! मुसलमानों का यह विश्वास कि मुसलमानों के ७३ फिरकों में—केवल एक फिरका नाजी और शेष नारी हैं, यह प्रकट करता है कि समस्त मुसलमान धोखे में है, उनको किस प्रकार विश्वास हो सकता है कि कौन-सा फिरका नाजी है। जब कि प्रत्येक फिरके के लोग अपने फिरके को नाजी और दूसरों को नारी बतला रहे हैं और इन फिरकों के उद्देश्य सिवाय मुहम्मद साहब की रिसालत और कुरान के शेष भिन्न-भिन्न हैं : प्रत्युत बहुत से पूर्वापर विरुद्ध भी हैं और वर्त्तमान मुसलमानों के पास फिरकों की भिन्नता प्रकट करने का कोई मार्ग नहीं और नहीं इस सन्देह को दूर करने का अवसर मिलता है। सिवाय ईमान के ऐसी दशा में कुल अहले इसलाम को $\frac{1}{73}$ तो नाजी होने का सन्देह है और $\frac{72}{73}$ सीधे दोज़ख़ (नरक) में जाने का विश्वास है चूंकि इस प्रकार के संदिग्ध बहिश्त (स्वर्ग) और विश्वस्त दोज़खी (नारकी) मत को संसार में कोई भी स्वीकार करना नहीं चाहता, इसलिये मुसलमानों का ईश्वर विद्या और बुद्धि के स्थान में तलवार के द्वारा इस मत का प्रचार कराता है ; परन्तु स्मरण रहे कि तलवार के भय से और वाणी से तो कायर और कमीने लोग मान जाते हैं ; परन्तु उनका हृदय उसको स्वीकार नहीं करता। इसलिये वह धूर्त्त बन जाते हैं, उनके हृदय के विचार तलवार के भय से कुछ का कुछ कहते हैं। ये धूर्तता और धोखे-बाजी कौन सिखाता है—मजहब इसलाम या मुसलमानों का

खुदा—क्या ईश्वर के सम्बन्ध में इससे भी अधिक कोई इलजाम हो सकता है, जो प्रत्येक मुसलमान के हृदय पर मुहम्मद साहब के वचन के अनुसार जमा हुआ है एवं उनके चित्त को सचाई से हटाकर मिथ्या विश्वासों की ओर ले जाता है और उनसे जिहाद (धर्मयुद्ध) कराता है। क्या ईश्वर में यह शक्ति नहीं कि वह प्रत्येक मनुष्य के हृदय को स्वतः सचाई की ओर आकर्षित करे, जिससे उसको धर्म के लिये तलवार चलाने की आवश्यकता न हो।

प्रिय महाशय! इस संदिग्ध मत ने जितना अंधकार और रक्तपात संसार में फैलाया है और जितने ईश्वर के भक्तों को ईश्वराज्ञा से हटाकर व्यभिचार सिखलाया है, उससे बढ़कर संसार के किसी मत में नहीं पाया जाता—हमने जहाँ तक मुसलमानों के सम्बन्ध में विचार किया, हमें उनसे बढ़कर कोई शत्रु ईश्वर और मनुष्यों का दृष्टि नहीं आता—हमारे बहुत से मित्र कहेंगे इसलाम ईश्वर का दुश्मन किस प्रकार है—महाशय! उसका उत्तर यह है कि प्रत्येक मुसलमान तौरेत, जबूर और इंजील को ईश्वरीय वाक्य मानता है, बस उनके माननेवाले यहूदी, ईसाई आदि इसलाम की दृष्टि में ईश्वरीय वाक्य माननेवाले हैं; परन्तु ईसाई और यहूदी कुरान को ईश्वरीय वाक्य नहीं बतलाते और मुहम्मद साहब को उनकी विलासिता, रक्तपात और मूर्खता के कारण पैगम्बर स्वीकार नहीं करते—इस दशा में ईसाई और यहूदी दोनों समुदायों के विश्वास में ईश्वर की आज्ञा के बद्ध हैं और मुसलमान अपने सन्दिग्ध मत के अनुसार ईश्वर के भक्तों और विरोधियों के विचार में नास्तिक; अब मुसलमानों का कर्तव्य तो यह था कि कुरान और मुहम्मद साहब को बुद्धिपूर्वक यहूदियों और ईसाइयों को समझाते; परन्तु उनके पास कोई

प्रमाण नहीं कि जिससे कुरान और पैगम्बर को प्रमाणित करें अब लाचार होकर ईसाई और यहूदी लोगों को तलवार से विचलित करने पर तय्यार हुए, अब बतलाइये कि ईश्वर से विचलित करना और उसके माननेवालों को तलवार के भय से उसको आज्ञा से पृथक् करके धूर्त्तता सिखलाना सिवाय ईश्वर के शत्रुओं के और किससे सम्भव हो सकता है—

प्रिय मित्रों! कोई-कोई मौलवी कहते सुने गये हैं कि यहूदियों की तौरेत और ईसाइयों की बाइबिल वह किताब नहीं है, जो ईश्वर ने मूसा दाऊद और ईसा पर प्रकट की थी; किन्तु यह किताब तो न्यूनाधिक करके इन लोगों ने बना ली है; परन्तु मुसलमानों का यह दावा बिलकुल निर्बल है; क्योंकि उनके पास कोई सही लेख तौरेत का विद्यमान नहीं है। और कुरान शरीफ़ की २७ वीं आयत सूरत बकर सिपारह अव्वल में लिखा है कि "तुम किस तरह वहिर्मुख हो, खुदा से और पहले तुम थे बेजान—"फिर उसने तुमको जिलाया फिर मारेगा फिर वापिस जाओगे" प्यारे मुसलमान भाइयो! तनिक सोचो तो सही इस आयत से क्या मालूम होता है। अव्वल ये ख़याल करो कि 'तुम' का शब्द शरीर के लिये आया है या जीव के लिये? या दो मिली हुई वस्तुओं के लिये? यदि कहो शरीर के लिये तो शरीर का अनादि होना सिद्ध होता है और यदि जीव के लिये तो कहो कि जीव कभी बेजान रहता है या नहीं? क्योंकि जीव को तो जीवन कहते हैं। यदि कहो कि संयुक्त के लिये तो भी असत्य है; क्योंकि संयुक्त कभी बेजान हो नहीं सकता। जब बेजा न था, तब संयुक्त अर्थात् जीव और शरीर मिला हुआ नहीं था। जब संयुक्त हुआ तो बेजान नहीं। इस दशा में इस प्रकार के विद्या और बुद्धि के विपरीत अनुभव को ईश्वर के गले मढ़ना ईश्वर की हतक

करके दोजख़ (नरक) में जाने का सामान करना है—और इसी सूरत बकर की छठी आयत में लिखा है कि "जब कहा तेरे रब (ईश्वर) ने मुझको बनाना है ज़मीं में एक नायब बोले क्या तू कहेगा उसमें जो शख़्श फिसाद करे वहाँ और करे खून और तसबीह (माला) करते हैं और याद करते हैं तेरी ज़ात पाक को हम—कहा मुझको मालूम है जो तुम नहीं जानते" प्यारे मुसलमान भाइयो! तनिक पक्षपात को दूर करके सोचो कि नायब उस जगह होता है, जहाँ स्वयं अफ़सर न हो। क्या इससे सिद्ध नहीं होता है कि मुसलमानों के विश्वास में ईश्वर पृथ्वी पर नहीं और आदमी उसके नायब हैं और फ़रिश्तों के समझाने पर भी ख़ुदा को समझ न आई और उसने दुनिया में रक्तपात फैलाया और फिर नूह के समय में तूफ़ान लाकर दुनिया को तबाह किया और अपने किये पर अफ़सोस किया और आयत ३१, ३२ और ३३ के देखने से तो ख़ुदा पर बहुत से दोष आरोपण होते हैं सूरत ३१ "और सिखलाये आदम को नाम सारे फिर वह दिखाये फ़रिश्तों को—कहा बताओ नाम उनके अगर हो तुम सच्चे" आयत ३२—बोले कि तू सबसे निराला है, हमको मालूम नहीं मगर जितना तू ने सिखलाया तू है दाना और हकीम, आयत ३३—कहा ऐ आदम बता दे उनको नाम उनके फिर जब उसने बताये नाम उनके कहा मैंने न कहा था मुझको मालूम है पर्दे आसमान और ज़मीन के और मालूम है जो तुम जाहिर करते हो और छिपाते हो" क्या ये बात ख़ुदा को लाज़िम है कि एक आदमी को सिखलादे और दूसरों के लिये कहे पूछ कर देख लो। जब कि फ़रिश्तों ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि हमको इसी क़दर मालूम है, जिस क़दर तूने सिखलाया और आदम को भी उसी क़दर मालूम था, जिस क़दर ख़ुदा ने सिख-

लाया था। इससे ख़ुदा ने आदम की क्या बुजुर्गी मालूम की, जिससे साधु प्रकृति फ़रिश्तों को छोड़ दुष्ट प्रकृति और अल्पज्ञानी आदम को नायब बनाया। कोई न्यायाधीश शाशक भी अपने शिष्यों से इस प्रकार की अनुचित रिआयत नहीं करता और न मकर फैलाता है; क्योंकि जिसको शिक्षा दी है, उसी में से उससे प्रश्न करता है; परन्तु मुसलमानों का ख़ुदा अद्भुत प्रकार का है, कि फ़रिश्तों को कम बतलाकर अधिक प्रश्न करता है आदम को सिखलाकर उससे पूछ लेता है और उससे अपनी शेखी और आदम का महत्त्व स्थापन करता है। ऐसे फरेबी और शेखीबाज खुदा को तो कोई बुद्धिमान खुदा नहीं कहता। सिवाय अशिक्षितों के—इसी सूरत बकर की आयत ४६ में लिखा है—"और जब हमने चीरा तुम्हारे लिये दरिया फिर बचा दिया तुमको फरऔन के लोगों से तुम देखते थे।"

प्यारे पाठको! यहां मुसलमानों का खुदा अद्भुत प्रकार क बातें कर रहा है; क्योंकि जो घटनायें मूसा के समय में हुई थीं, उन्हें मुहम्मद के समय में लोग किस प्रकार देख सकते थे और मुसलमानों के विश्वास के अनुसार तो यह बात स्पष्टतया झूठ मालूम होती है; क्योंकि मूसा के समय में जो लोग मर गये, वह कयामत के रोज उठेंगे और मुहम्मद के समय के जो थे, उन्होंने दरिया का फटना बिलकुल नहीं देखा। बस उनको कहना तुम देखते थे, बिलकुल झूठ है। दूसरे मूसा के समय जिन लोगों को बचाया था, वह तो मर चुके थे और मुहम्मद के समय के लोगों को कहना कि हमने तुम को बचाया था यह और झूठ है, जब मुसलमानों का खुदा लोगों के मुँह पर झूठ बोलता है तो उसके दरिया चीरने को सही समझना मूर्खता है—यहाँ पर तो कुरान उसी लोकोक्ति को चरितार्थ कर रहा है कि मेरे

खादा मेरे भइया या तुम मेरा हाथ सूँघ कर देख लो। प्यारे नाज़रीन! आगे चल कर आयत पाँच में मुसलमानों का खुदा फ़रमाता है कि—"जब हमने वादा किया मूसा से चार जात की इबादत कर; लेकिन तुमने गोशाला को पूजा, तुम बेइंसाफ़ हो। विचार का स्थल है कि मूसा के बारे और क़ुरान के ज़माने से क्या सम्बन्ध है. न तो मुहम्मद के ज़माने के लोगों ने गोशाला पूजा और न उन्हीं से खुदा ने कोई वादा किया—हम नहीं जानते फिर क्यों बेचारों को बेइंसाफ़ बतलाया गया। अगर यही दशा खुदा की रही तो कुल अहले इसलाम के वास्ते दोज़ख़ (नरक) आवश्यक होगा। क्योंकि मूसा, ईसा—इब्राहीम आदि पैग़म्बरों से और मुसलमानों के ईश्वर से जो प्रतिज्ञापत्र हुए हैं, उनके अनुसार अमल न करने से सबको नरक में जाना होगा यदि प्रतिज्ञापत्रों की तामील करना चाहें तो वह प्रतिज्ञापत्र विद्यमान नहीं, किस प्रकार मालूम करें कि ये प्रतिज्ञापत्र हुए थे।

प्रिय पाठको! मुसलमान लोग शफ़ाअत के भी कायल हैं; परन्तु ये सिद्धान्त भी विद्या और न्याय से बहुत दूर पहुँचानेवाला है, यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि मुहम्मद साहब नेकचलन आदमियों की शफ़ाअत करेंगे या बदचलनों की अथवा दोनों की यदि कहो नेकों की तो व्यर्थ है; क्योंकि नेक तो ईश्वर के न्यायानुकूल अपने शुभ कर्मों के कारण बहिश्त (स्वर्ग) में जायँगे ही, उनको शफ़ाअत की कोई आवश्यकता नहीं यदि कहो बदों की शफ़ाअत करेंगे तो शफ़ाअत का सिद्धान्त नितान्त पापों का फैलानेवाला है। क्योंकि मुसलमानों को विश्वास हो गया है कि अपराधी मुहम्मद साहब की शफ़ाअत से बख़्शे जावेंगे तो वह पाप से क्यों डरेंगे यदि नेक और बद दोनों की शफ़ाअत करेंगे तो इसलाम अँधेर नगरी हो जायगी—और दूसरे इस

मसले से शिर्क भी सिद्ध होता है, इसलिये यह सिद्धान्त बुद्धि के बिलकुल विपरीत है।

प्रिय महाशयो! इसलाम का सिद्धान्त जिहाद (धर्म युद्ध) सबसे प्रबल सिद्धान्त है, जिसकी आड़ में मुसलमान लाखों निरपराधियों का रक्तपात करके बजाय ख़ूनी और नृशंस होने के अपने लिये गाज़ी और शहीद समझते हैं। यही सिद्धान्त है जिससे मालूम होता है कि इसलाम मज़हब नहीं बल्कि पोलिटिकल समुदाय है; क्योंकि मज़हब का सम्बन्ध दिल से है और कोई मनुष्य किसी को तलवार के ज़ोर से, उसके हार्दिक विचारों से पृथक् नहीं कर सकता, यही कारण है कि लाखों आदमी प्रकट में मुसलमान हो जाते हैं; परन्तु उनके दिल पूर्व की भाँति अपने पैतृक भाव और चाल चालन की ओर लगे रहते हैं—बहुत से ऐसे मुसलमान अब भी मौजूद हैं कि जिनको अक़ायद इसलाम पर तनिक भी बिश्वास नही और न वह उसे सच्चा मज़हब ख़याल करते हैं। आप लोग कहेंगे कि ऐसे लोग अपने पैतृक धर्म पर क्यों नहीं चले जाते, ताकि उनको नित्य प्रति अपने आत्मा के विरुद्ध काम करने के कष्ट से मुक्ति मिले; परन्तु क्या किया जावे, रूम, यूनान, ईरान, अरब, अफ़ग़ानिस्तान वग़ैरह की मूर्ख जातियाँ तो किसी प्रकार भी अपने पैतृक धर्म को इसलाम से अच्छा कह नहीं सकतीं; क्योंकि मुद्दतों से इनका मज़हब दूर हो गया है और अब उनके ख़यालात भी ज़माने में कम पाये जाते हैं। रहे भारतवर्ष के मुसलमान, इनमें लाखों आदमी हैं, जिनके ख़यालात उनके असली मज़हब की तरफ़ जाना चाहते हैं; परन्तु वह हिन्दू बिरादरी की ग़लती से अपने असली मज़हब में आ नहीं सकते। बहुत से मुसलमान हैं कि जिनको मालूम है कि उनके बाप, दादे जबरन मुसलमान किये गये, नहीं-

नहीं बल्कि वह यह भी जानते हैं कि इन नृशंस मौलवी मुल्लाओं ने हमें अपने उच्च धर्म से गिराया और अपने भाइयों से पृथक् किया, हमारे पैतृक भाई हमसे घृणा करने लगे—इसी प्रकार के विचार और भी बहुत से मुसलमानों के हृदय में विद्यमान् हैं; क्योंकि भारतवर्ष में कोई समझ कर तो मुसलमान हुआ नहीं। बहुत से मुसलमान तो वह हैं कि जिनके बाप-दादों को तलवार के जोर से कट्टर मुल्लाओं ने उनके सत्य धर्म से पृथक् कर दिया था और उनको अब इस प्रकार की शिक्षा देते हैं कि मज़हब में अक़ल की दख़ल नहीं, इसलिये वह इसलाम में मौजूद हैं; परन्तु उनके दिल बशर्ते ग़ैरत और सचाई के इसलाम के शत्रु हैं; परन्तु विवशतः देश काल के विचार से इसलाम के आधीन हैं—दूसरे वह मुसलमान हैं, जो वेश्या आदि की मित्रता के कारण उनके खाने पीने में सम्मिलित हो गये—उन लोगों को तो मुसलमानी मत से कोई सम्बन्ध ही नहीं केवल अपनी बिरादरी के दबाव से, जो उनको रण्डियों के साथ खाने पीने से रोकता था, बचकर वह विषय भोगों के दास बन रहे हैं।

तीसरे वह हैं, जो बादशाही समय में धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये मुसलमान हो गये थे, ये लोग भी वस्तुतः मुसलमान नहीं, केवल संसार के दास हैं।

प्रिय महाशयो! इस प्रकार भारतवर्ष के ¾ हिस्सा मुसलमान इस प्रकार के हैं, जिनका मुसलमानी मत से कोई सम्बन्ध नहीं और न वह इसलाम की बातों को दिल से मानते हैं और न उनका इसलामी पुस्तकों पर विश्वास ही है और न वह उस पर अमल करते हैं। हज़ारों सूफी व हाबी इत्यादि इसलामी सृष्टि से निराले हैं—नेचरी तो इसलाम को अपने साँचे में ढालना चाहते हैं—निदान इसलाम के तेहत्तर फ़िरकों में बहुत थोड़े आदमी हैं, जो

इसलाम के असली माननेवाले हैं, केवल हिन्दुओं की निर्बलता ने हिन्दुओं को इस कष्ट में डाल रक्खा है कि वह अपने बिछुड़े हुए भाइयों को मिलाते नहीं, अगर आज हिन्दू मिलाना प्रारम्भ करें तो दस वर्ष में भारतवर्ष में इसलाम की वही दशा हो जायगी, जो स्पेन आदि देशों में हुई।

भारत का दुर्भाग्य

आज कल जब कोई भारतवर्ष के भाग्य पर विचार करता है तो इस के बदले कि उस के चित में भारतवर्ष के असाध्य रोग के घटने की आशा हो, जिसमे कि वह कह सके कि भारत का दुर्भाग्य शीघ्र ही दूर होगा, उसे पग-पग पर बुराई बढ़ती हुई जान पड़ती है, यद्यपि बहुत समय के पीछे भारत को गवर्नमेंट का स्वतंत्रता प्रदायक एवं शांतिपूर्ण राज्य प्राप्त हुआ है कि जिसमे यदि भारतवासी चाहते तो उनकी विद्या, बुद्धि, सदाचार एवं आर्थिक-सर्व प्रकार को ही—उन्नति हो सकती थी और इस प्रकार देश उन घावों को, जो कि अत्याचारी बादशाहों के राज्य में इसके शरीर पर होगये थे, निवृत्त करके फिर बलवान और फुरतीला हो जाता; परन्तु भारत के दुर्भाग्य से इस रामबाण औषधि ने इसपर उलटा ही प्रभाव डाला और शांति तथा स्वतंत्रता के द्वारा उन्नति करने के पलटे आलस्य, अविश्वास एवं उत्साहहीनता के गढ़े में जा गिरा यद्यपि ऐसा समय पाकर भी अपनी बुराइयों को दूर न करना नितांत मूर्खता है और भारत में बहुत से पण्डित भी विद्यमान हैं; परन्तु नाश काल होने के कारण उनकी बुद्धि बिगड़ रही है यद्यपि भारत के रोग की निवृत्ति के लिये बुद्ध, शङ्कर तथा स्वामी दयानन्द जैसे महात्मा आये और उन्होंने मार्ग दिखाकर उसे उन्नति के स्थान पर लेजाना चाहा; परन्तु वही बात हुई कि:—

तिही दस्तान क़िस्मतरा चिसूदज़ रहबरे कामिल ।
किखिज्रज आबे हैवाँ तिश्ना में आरद सिकंदररा ॥

अर्थात् भाग्यहीनों को योग्य पथप्रदर्शक मिलने पर भी कोई लाभ नहीं होता ; क्योंकि देखो खिज्र (नाम एक फरिश्ते: का) सरीखा पथप्रदर्शक होने पर भी सिकन्दर [नाम एक यूनान के महाराजा का] अमृत कुण्ड से प्यासा ही आ रहा है।

यद्यपि इन महात्माओं ने अपनी सम्पूर्ण आयु इसकी बुराइयों के निवारण में लगा दी और उसके रोग के निवारणार्थ उत्तमोत्तम औषधि निकाली ; परन्तु दुर्भाग्य वश फल उलटा हुआ, जैसा कि एक कवि ने कहा—

मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।

जितना सुधारकों ने उसके सुधारने का प्रयत्न किया, उतना ही उसके देह के अंग पृथक्-पृथक् होते गये और उन महात्माओं का प्रयत्न निष्फल हो गया यद्यपि शङ्कर और बुद्ध के समय को दूर देखकर हम कोई ठीक सम्मति न प्रकाशित कर सके ; परन्तु स्वामी दयानन्द का समय हमारे आगे ही निकला है [वा हमारे आगे का ही है] इस बाल ब्रह्मचारी और परोपकारी महात्मा ने जितने कष्ट सहन करके भारतवर्ष को वैदिक धर्म रूपी अमृत से जीवित करना चाहा, उसको देखनेवाले बहुत से मनुष्य अभी हैं और स्वामी दयानन्द ने जिस काम के लिये परिश्रम किया था, उसमें वह सफल भी हुए यद्यपि उनकी विद्या और बल के कारण उनके जीवन में पग-पग पर सफलता ने पाँव चूमे और शङ्कर और बुद्ध की भाँति वह भी निजोद्देश्य से पीछे न हटे ; परन्तु जिस प्रकार शङ्कर और बुद्ध के अनुयाइयों ने उनके उद्देश्य को पूर्णतया नष्ट करके एक पंथ खड़ा कर दिया बस वही दशा स्वामी दयानन्द के सिद्धांत की हो रही है। हमारे बहुत से मित्र क्रुद्ध होकर हमसे प्रश्न करेंगे कि तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है कि

आर्य्य समाज स्वामीजी के उद्देश्य से पूर्णतया अलग हो गई ? यद्यपि इसके लिये बहुत से प्रमाण हैं और आर्य्य समाज के इतिहास में प्रत्येक घटना जो स्वामीजी के परलोक गमन के पश्चात् हुई, इस बात की साक्षी है, जिसका वर्णन कि हम इस छोटी सी पुस्तक में करने से असमर्थ हैं ; परन्तु एक घटना उद्धृत करते हैं, जिससे कि जनता स्वयं विचार लेगी।

आज कल पंडित भीमसेनजी ने प्रतिनिधि सभाओं को मृतक श्राद्ध के विषय में जो एक प्रकार की घोषणा दी है, इसके सम्बन्ध में इटावा समाज से प्रतिनिधि सभा में एक पत्र इस प्रकार का आया था कि पंडित भीमसेनजी को अपनी समाज का सभासद् रक्खें या नहीं ? यह विषय प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग में प्रविष्ट हुआ और उस पर यह आज्ञा हुई कि पंडित भीमसेनजी आर्य्य सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, अतः उन्हें पृथक् करदो। स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १४३ पर भृगुसंहिता के प्रमाण से यह बताया है कि धर्म्मनिर्णय का अधिकार किसको है ? देखो सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ १४३ पंक्ति १७-१८:—

एकोऽपिवेद विद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः। सविज्ञेयः परोधर्मोनाऽज्ञाना मुदितोऽयुतैः ॥ मनु० १२ ॥ १ ॥ १३

अर्थ—यदि अकेला वेदों का जाननेवाला, द्विजों में उत्तम जिस धर्म की व्यवस्था करै, वही श्रेष्ठ धर्म है और अज्ञानी जो सहस्रों लाखों और करोड़ मिलकर भी जो व्यवस्था करें, सो कदापि न माननी चाहिए।

अब प्रश्न यह होता है कि जिस अन्तरंग सभा ने यह व्यवस्था दी कि पंडित भीमसेनजी आर्य्य सिद्धांत के विरोधी हैं

उसमें कैसे-कैसे विद्वान् थे ; प्रथम तो श्रीमान् वेद वेदांग के पूर्ण विद्वान् लाला कृष्णलालजी सुपरिन्टेन्डेन्ट (अधिष्ठाता) वैदिक आश्रम अलीगढ़। (२) श्रीमान् वेद वेदांग के पूर्ण विद्वान् कुँवर हुकुमसिंहजी, (३) श्रीमान् वेद वेदांग के पूर्ण विद्वान् लाला लखपतरायजी वकील गाजियाबाद, (४) वेद वेदांग के विद्वान् मुंशी नारायणप्रसादजी, मंत्री प्रतिनिधि सभा, (५) श्रीमान् वेद वेदांग के पूर्ण विद्वान् बाबू श्रीरामजी आगरा (६) वेद वेदांग के पूर्ण विद्वान् पंडित भगवानदीनजी (७) वेद वेदांग के विद्वान् मास्टर श्यामसुंदर बी० ए० एल०-एल० बी० साइन्स मास्टर (८) वेद वेदांग के पूर्ण विद्वान् छोटेलालजी बी० ए० साइन्स मास्टर अलीगढ़ (६) ठाकुर हमीरसिंहजी। स्वामीजी ने तो एक ही वेद वेदांग के पण्डित की धर्म्म व्यवस्था को मान्य बताया है, अब यहाँ पर तो नौ विद्वानों की सभा हुई यदि उसको पण्डित भीमसेन वा और कोई न माने तो उसके अधर्मी होने में क्या संदेह है ? यदि किसी को यह संशय हो कि इन लोगों को वेदों का विद्वान् कैसे माने तो उसका यह स्पष्ट उत्तर है कि उनके पद इस बात के सूचक हैं कि वे वेदों के विद्वान् हैं। पहिले श्रीमान् लाला कृष्णलालजी वैदिक आश्रम के अधिष्ठाता हैं। भला वैदिक आश्रम का अधिष्ठाता वेदों का विद्वान् कैसे न होगा और मास्टर श्यामसुन्दरजी गुरुकुल ही क्या प्रान्त की सम्पूर्ण समाजों के विद्यालय विभाग के मंत्री हैं तथा स्कीम आदि के रचयिता उनके वेद वेदाङ्ग के पूर्ण विद्वान् होने में संशय करना पाप है और शेष भी इसी प्रकार ऐसे अधिकार रखते हैं कि जिससे उनको वेदों का ज्ञाता होना सर्व साधारण पर प्रकट हो जाता है। परन्तु बहुत से भ्रान्त मनुष्य इस पर भी संशय करेंगे और कह उठेंगे कि हम इन लोगों को जानते हैं, इन

में तो कोई व्याकरण भी जानने वाला नहीं। यह सब तो केवल अंग्रेजी भाषा के पण्डित और १००) तक के नौकर हैं और कोई तो ३०) ही में अपना जीवन निर्वाह करते हैं। परन्तु ऐसे भ्रातों के अज्ञान होने में कोई संदेह नहीं; क्योंकि यह विचारे नहीं जानते कि उनकी शक्ति कितनी है? अजी कल ही उपदेशकों के नाम गुप्त आज्ञा-पत्र निकाल दिया जायगा और आज्ञा-पत्र निकालने की भी कौन आवश्यकता है। वेद प्रचार के उपदेशक तो सर्वदा ऐसे भ्रातों को दुराचारी सिद्ध करने के लिये उद्यत ही हैं; क्योंकि जिस प्रतिनिधि से वेतन पाते हैं, उसके अधिकारी एवं संगठन पर आक्षेप करनेवालों को क्या वह दण्ड न देना उचित समझेंगे? कदापि नहीं। वह अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि संगठन के विरोधियों को झूठ सच जैसे भी बनै दण्ड देवें। ओह! लेखनी कहां से कहां चली गई। हमें यह कहना है कि हम नहीं जानते कि वह आर्य सिद्धान्त किस पुस्तक में लिखा हुआ है, जिसके कि पण्डित भीमसेनजी विरोधी हैं? यदि कोई कहै कि सत्यार्थ प्रकाश में, तो जहां स्वामीजी ने अपना मन्तव्य लिखा है, वहां इस बात का नाम तक नहीं है और यदि कहो कि सत्यार्थ-प्रकाश की और बातों से इसका खण्डन सिद्ध होता है तो विचारे भीमसेन ही क्यों इस पाप के दोषी माने गये? इसके अपराधी तो प्रतिनिधि सभा के और भी पण्डित हैं। देखो स्वामीजी ने यह कहीं नहीं लिखा कि मृतक श्राद्ध पाप कर्म है; परन्तु जिस पुरुष की स्त्री मर गई हो, उसका क्वारी से विवाह करना पाप बताया है। देखो सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ ११२। परन्तु प्रतिनिधि के सभासदों और उपदेशकों में कितने मनुष्य मिलेंगे, जिन्होंनें कि इस पाप को किया। क्या प्रतिनिधि सभा ने उसका नोटिस लिया? कभी नहीं। इसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश में पृष्ठ २६६ पर स्वामीजी ने

द्विजों को अपने हाथ से रोटी बनाकर खाने का निषेध किया है। देखो सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ २६६ पंक्ति २:—

प्र०—द्विज अपने हाथ की बनाई हुई खावें वा शूद्र के हाथ की बनाई।

उ०—शूद्र के हाथ की बनाई खावें; क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्य करने, और पशु पालन एवं कृषि और वाणिज्य के काम में लगे रहें।

स्वामी जी यहां पर द्विजों कों स्पष्टतया अपने हाथ से बनाकर खाने के लिये निषेध करते हैं; परन्तु आर्य्य प्रतिनिधि सभा के कितने उपदेशक हैं, जो स्वामी जी के इस सिद्धान्त को पावों तले कुचलते हैं, सर्वदा अपने हाथ की बनाई हुई खाते हैं और वार्षिकोत्सवों पर दो-दो घन्टे रोटी में लगाते हैं। क्या प्रतिनिधि सभा ने उनका नोटिस लिया? कभी नहीं। इसी कारण स्वामी जी ने गुण और कर्म से वर्ण मानना बताया था, परन्तु प्रतिनिधि सभा के समस्त सदस्य एवं उपदेशक अभी तक जन्म से ही वर्ण मान कर काम करते हैं, क्या कोई इसका नोटिस लेता है? कदापि नहीं। फिर नहीं जान पड़ता कि पण्डित भीमसेन ने क्या अपराध किया है, जो आर्य्य समाज से पृथक करने की व्यवस्था इन नौ वेद के विद्वानों की अन्तरंग ने देदी? यदि प्रतिनिधि सभा के पक्षपात तथा मूर्खता की यही दशा रही तो आर्य्य समाज का शीघ्र ही अन्त हो जायगा। क्योंकि स्वामी दयानन्द ने जिस वैदिक धर्म्म के सिद्धान्तों पर आर्यसमाज की नींव रक्खी थी, उस नींव पर से ऐसे विद्वानों की शक्ति ने आर्य समाज की भीत को हटा दिया है और जो भीत नींव से हट जाय उसके टिकने का ठिकाना नहीं। यदि ध्यानपूर्वक सोचा जावे तो हिन्दू जाति का उद्धार करते करते जैसा कि एक बेर आर्यमित्र में छपा था, जिस

पर कि हमने पहिले भी लिखा था, आर्य प्रतिनिधि सभा के विचार हिन्दुओं के विचारों के प्रवाह में बह गये। हिन्दुओं की रीति जन्म से वर्ण मानना अपने हाथ का खाना आदिक थे, वही प्रतिनिधि सभा के उपदेशकों और बहुधा समाज के अधिकारियों में पाये जाते हैं, नियोग के बदले उपदेशक लोग और सर्व साधारण आर्य क्वाँरी कन्या से विवाह करते हैं और जैसा कि हिन्दुओं में चला आया है कि जब वे किसी के उचित प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते तो झट उसे कुटुम्ब से निकालने की धमकी देते हैं, ठीक यही अवस्था आर्य प्रतिनिधि सभा की है। पण्डित भीमसेनजी मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज देते हैं और प्रतिनिधि सभा उनके शास्त्रार्थ के चैलेञ्ज को स्वीकार करके उनसे शास्त्रार्थ करके इस बात को निर्णय करने के स्थान में उनको इटावा समाज से पृथक् करने की व्यवस्था देती है। यही दशा पण्डित बद्रीदत्त की है, उनके पृथक् करने का विज्ञापन भी आर्य्य मित्र में छप रहा है और नादिरशाही हुकुम चढ़ रहा है कि उनके पास कोई सार्टीफिकेट (प्रमाण पत्र) नहीं, उन्हें कोई समाज अपने प्लेटफार्म (स्थान) पर लैक्चर (व्याख्यान) न देने दे। परन्तु खेद तो यह है कि इस प्रकार के आज्ञा-पत्र निकालने वाले, जहाँ विद्या के पूरे हैं, वहाँ अक़ल (बुद्धि) के भी धनी हैं और उन्हें पता तक नहीं कि आर्य्य समाजों में, उनकी समाजों में उनकी आज्ञाओं का कहाँ तक पालन होता है।

पण्डितों के सार्टीफ़िकेट को रद्दी करके उनके व्याख्यानों के रोकने का प्रबंध किया जाता है, यह नितान्त मूर्खता है, जिस समय लाला लाजपतराय का व्याख्यान मुरादाबाद समाज में हुआ, उस समय क्या लालाजी के पास आर्य्य प्रतिनिधि सभा का सार्टीफ़िकेट था? कभी नहीं, क्या यह लचकर्ड पार्टी के

विख्यात् नेताओं में से नहीं थे ? अवश्य थे। जब कि स्वयं मुरादाबाद जहाँ पर कि प्रतिनिधि का कार्यालय है, उक्त सभा के सार्टीफ़िकेट और आज्ञाओं का यह आदर है तो बाहर की समाजों से पण्डितों के व्याख्यान बंद कराने की आशा रखना नितांत मूर्खता है। केवल गाँव की समाजों से तो, जो कि उपदेशकों के हाथ में होती हैं जो चाहे सो प्रतिनिधि सभा करा ले परन्तु बुद्धिमान् समाजें ऐसी प्रतिनिधि की आज्ञाओं की तनिक भी परवाह नहीं करतीं, जैसा कि मुरादाबाद समाज ने नहीं किया ? गाँवों के मनुष्य उपदेशकों के हाथ में हैं, यदि कालिज पार्टी के लोग अधिक उपदेशक रख लें तो लगभग सम्पूर्ण समाजें उनकी ओर चली जावें, क्योंकि अभी आर्य्य समाजों में सिद्धान्त से विज्ञता एवम भले बुरे का ज्ञान भी नहीं उत्पन्न हुआ और नाहीं वे अपने शत्रु और मित्र में भेद कर सकती हैं। जब कि समाजों के संगठन का अभिमान रखनेवाली प्रतिनिधि की यह दशा है कि उसकी आज्ञाओं का उस स्थान पर ही जहाँ कि उसका कार्यालय है, पालन नहीं होता। जैसा कि किसी फ़ारसी कवि ने कहा है:—

चु कुफ़ज़ काबा बरखेज़द कुजा मानद मुसल्मानी।

अर्थात्—जब कि काबा मे ही क़ुफ़ अर्थात इसलाम पर अविश्वास उठे, तो फिर बताइये इसलाम रहे कहाँ ?

और वह अपनी मूर्खता से पण्डित भीमसेन को पृथक् करने के सरक्यूलर पास करके सामाजिक शक्ति तथा धन को अपनी अवहेलना रूपी नदी में डुबोती जाती है, जब कि बाल ब्रह्मचारी की फुलवाड़ी की जिस पर कि भारतवर्ष की आगामी आशायें लगी हुई थीं, यह दशा है, तो अवश्य मानना पड़ता है

कि भारतवर्ष का दुर्भाग्य शेष है। जब कि स्वामीजी के सिद्धांत के विरुद्ध इतने बड़े-बड़े विद्वान् धर्म व्यवस्था के लिये नियत किये जाते हैं और वह इस प्रकार निर्मूल व्यर्थ के सरक्यूलर पास करके विद्वानों को आर्य्य समाज से पृथक् करते जाते हैं तो स्पष्ट विदित होता है कि वह आर्य समाजों के अज्ञान मित्र हैं, जो अपने विचार में तो भलाई करते हैं; परन्तु होता बुरा चला जाता है। अथवा वे आर्य्य समाज से विद्या को पृथक् करके आर्य्य समाज को अपनी भेड़ें बनाना चाहते हैं। जिससे कि आर्य्य समाजों पर जो रुपये की ऊन है, सो आयं वर्ष उतार लें और जैसा चाहें वैसी आज्ञा का पालन करा लें, फिर उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। चाहे आर्य्य समाजें नष्ट हों वा बनी रहें। इसकी पुष्टि इनके प्रत्येक कार्य से होती है। ट्रेक्ट सोसाइटी के लिये द्रव्य एकत्रित किया गया पर निकले कितने ट्रेक्ट? लेखराम मेमोरियल फण्ड (स्मरण निधि) के लिये धन इकट्ठा किया गया, पर किया क्या? अब गुरुकुल के लिये रुपया बटोरा जा रहा है, इसका भी परिणाम अन्त में प्रकट हो जायगा। समाजों के विश्वास, धार्मिक उत्साह एवम् ऐक्य का तो नाश हो ही चुका, अब शेष गुणों का शीघ्र ही अन्त करके वही कोरे हिंदू के हिंदू बना देना ही इनकी कार्य सफलता होगी।

नवयुवको उठो !

जाति के प्रति सहानुभूति रखने वालो ! देश हितैषियो !! धुरन्धर विद्वानों तथा बुद्धिमानो !!! आर्य्यावर्त के नवयुवको उठो। आज सम्पूर्ण देश तुम्हारी ओर टकटकी लगाये हुए है। जिस प्रकार कि ग्रीष्म ऋतु में प्रत्येक मनुष्य तथा पशु बादल को देखकर पूर्ण आशा करते हैं कि अब यह बरस कर हमारी तपन को हरेंगे, देश को जल से सीचेंगे तथा कृषि को लाभदायक होंगे—सारांश यह है कि हमारी सम्पूर्ण आशायें पूर्ण करेंगे। इसी प्रकार सारे देश की आँखें आपकी ओर लग रही हैं, आप नवयुवक हैं, शिक्षित तथा देश की आवश्यकताओं से विज्ञ हैं और पूँजी भी आपके पास बहुत है, ऐसी दशा में भी यदि आप देश की सहायता न करेंगे तो मेघों के न बरसने से जो निराशा देश पर छा जाती है, वही दशा होगी। क्या आप स्वीकार करेंगे कि जिस देश के रुधिर से आप उत्पन्न हुए, जिस देश के अन्न जल से आप पोषित हुए, जिस देश ने आपको हर प्रकार की सहायता दी, जिसकी अपकीर्ति से आपकी अपकीर्ति और जिसकी कीर्ति से आपकी कीर्ति होती है, आप इतने शीघ्र ही इसकी कृतघ्नता करेंगे, इसको नष्ट होते देखेंगे और इसके रोग की चिकित्सा न करेंगे एवं अपनी योग्यता रूपी पूँजी को देश की आवश्यकताओं के लिये न खर्च करेंगे ? नहीं ! नहीं ! आपसे यह आशा हमें कदापि नहीं हो सकती। आप प्रत्येक के अवयव में भारतीय रक्त भरा है, जिस भारतीय रक्त के कारण इस देश की स्त्रियों ने राजा जयपाल को युद्ध के समय अपने आभूषण गला गलाकर भेजे थे,

क्या आप शिक्षित पुरुष होकर उन स्त्रियों से भी पीछे रहेंगे ? हमारी बुद्धि देश की निराशा को देखकर चकित है कि इतने भारतीय नवयुवकों के होते हुए भी यह देश इस अवस्था को प्राप्त होजावे। बाहर से ईसाई लोग आकर यहाँ अस्पताल और स्कूल (पाठशाला) खोलें, आर्य्य हिन्दू और मुसलमानों को गुलामों की भाँति मोल लें, हमारे देश के पचीस लक्ष मनुष्य ईसाई हो बिक जावें। इस धन के पलटे जो विदेशी उठाते हैं, आपके इतने भाई जावें। और हमें शोक न हो ! भारत के बड़े बड़े धनवान दूसरों के दान से काम चलावें और हमें लज्जा न आवे। भारतीय लोगों के विचार भारतीय से बदल कर यूरोपियन हो जावें और हमें क्लेश न हो। भारत सर्वदा दुख और दर्द झेले ; परन्तु उसका कोई सहायक न हो। नाटकों और रण्डी भड़वों के नृत्य एवं मदिरा आदि में लाखों रुपये व्यय हो जायें ; परन्तु जाति के प्रति सहानुभूति और देशी भावों के प्रचारार्थ एक पैसा भी न उठाया जाय।

प्रिय नवयुवको ! भारत के प्राचीन मनुष्य समय के फेर से पुरुपार्थ हीन हो गये, वे बहुत बातों में असमर्थ थे, उनकी शिक्षा भी परिमित रही, समय भी प्रतिकूल था, इस कारण वे लाचार थे। उन पर दोपारोपण नहीं कर सकते। दोष आप पर लगेगा क्योंकि आप नवयुवक हैं, समय अनुकूल है, विद्या जैसी उत्तम सम्पत्ति आपके पास है। अब उठो ! देश को सँभालो !! समय को हाथ से न जाने दो। हे गाढ़ निद्रा में सोने वालो ! हे आलस्य में समय खोने वालो ! हे पीछे पछिता के रोने वालो ! यह समय जाता है, अब सँभलो ! हे विद्या धन के कदरदानो ! हे जातीय गौरव के निगहवानो ! हे भारत के नौजवानो ! यह समय जा रहा है, अब सँभलो ! हे पशुओं पर फौकवालो ! हे

गुलामी के तौकवालो ! हे आजादी के शौकवालो ! यह समय जाता है, अब सँभलो। हे हिन्दू काला कहानेवालो ! हे अमल बद के कमानेवालो ! हे अनाथ भारत डुबानेवालो ! यह समय जाता है अब सँभलो। हे ब्राह्मण क्षत्रिय कहानेवालो ! हे कर्म न कुछ कमानेवालो ! हे नीच जाति कहानेवालो ! यह समय जाता है अब सँभलो। हे मदिरा माँस के खानेवालो ! हे रण्डी भडुवा नचानेवालो ! हे कौमी इज़्ज़त मिटानेवालो ! यह समय जाता है अब सँभलो। हे घर में लड़ लड़ के मरनेवालो ! हे आर्य्य नाम से डरनेवालो ! हे कर्म वैदिक न करनेवालो ! यह समय जाता है अब सँभलो।

प्रिय नवयुवको ? उठो कटिबद्ध होजाओ ? यद्यपि तुम्हारी शक्ति निर्बल है और प्रतिपक्षी प्रबल हैं और इस कारण नाश हो रहा है ; परन्तु मेरे प्यारो ? साहस में वह शक्ति है कि मसीह से एक मनुष्य ने शिरों को झुकवाया है। १८ सौ वर्ष में ४२ करोड़ मनुष्य उसका अनुयायी हुआ। साहस करने वालों के लिये उदाहरण हुआ और जाति सेवकों के साहस बढ़ाने का रामबाण हुआ। बौद्ध ने अकेले ही साहस किया और ५२ करोड़ मनुष्यों के हृदय में प्रभुत्व प्राप्त किया। संसार के सब मतों को नाचा दिखाया और सच्चे वीरों का साहस बढ़ाया। स्वामी शंकराचार्य ने अकेले ही संन्यास लिया और बौद्ध धर्म का भारत से सत्यानाश किया। राजों को वश कर लाये और शंकर का अवतार कहलाये जाति सेवकों का साहस बढ़ाया। मुहम्मद साहब ने परिश्रम किया, खुदा की पैगम्बरी (परमात्मा का दूत) को प्राप्त किया। संसार के महाराजों को नीचा दिखाया और जाति सेवकों को साहसी बनाया। गुरू नानक साहेब पर छोड़ फ़कीर हुए और हिन्दुओं के गुरू तथा मुसलमानों के पीर हुये। जिनके मत में

गुरु गोविंदसिंह साहब बड़े बीर हुये। सभ्यता को दिखाया और पंजाब को मुसलमानों के अत्याचार से छुड़ाया। अपने प्राण दिये पर जाति के प्राण बचा लिये। संसार में गौरव प्राप्त किया, जो किसी मनुष्य को न मिला और नाहीं किसी सम्राट् को प्राप्त हो सकता है। 'सच्चे बादशाह' का नाम पाया और जाति-सेवकों का साहस बढ़ाया।

दूर क्यों जाते हो, थोड़े ही वर्ष हुए स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने भारत को अविद्या से भरपूर देखकर अपने जीवन को इसकी उन्नति में लगाया, हिन्दुस्तान से इसे आर्य्यवर्त बना दिया और वैदिक धर्म्म को देश में फैला दिया तथा मुसलमान और ईसाई जैसे प्रतिप्रच्छियों को दबा दिया, भारत को जगाया और महर्षि कहलाये! लाखों आर्य्य हुए, कालिज और स्कूल खुले और अनाथालय बन गये, सारांश यह कि श्रम का पूरा फल पाया, हमें परिश्रम करना सिखाया और प्रत्येक का साहस बढ़ाया।

प्रिय नवयुवको! यह कतिपय उदाहरण आपके सन्मुख रक्खे गये हैं, वह सब हमारी तुम्हारी भांति एक दिन जन्मे। जातीय भाव ने इन्हें उभारा सत्य साहस इनका सहायक बना और फिर आज पीर पैगम्बर और महर्षि बन गये। इसी प्रकार यदि सत्य भावों से प्रेरित होकर प्रयत्न करेंगे तो अवश्य सफलता को प्राप्त होंगे और एक दिन ऐसा होगा कि जाति इन पर उचित अभिमान कर सकेगी और यदि इसी प्रकार इन्द्रियों के विषयों में पड़कर पेट पालेंगे तो मरने के पीछे देश में कोई नाम न होगा और जीते जी देश में गौरव प्राप्त नहीं होगा। जिस प्रकार एक गधा संसार में जीवन व्यतीत करता है और मर जाता है परन्तु कोई नहीं जानता, यही दशा एक सम्राट् की होती है, जिस प्रकार कि पशु जो कुछ खाता है; परन्तु थोड़े समय पीछे उसे कोई ज्ञान

उसके स्वाद का नहीं रहता। इसी प्रकार हमारी दशा है। इस भाँति हम अपने को जाति प्रेम और धर्म्म के अतिरिक्त पशु के समान ही पाते हैं, हम सर्वदा सुख चाहते हैं; परन्तु वह हमें मिलता नहीं और हमारे सम्पूर्ण प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। इसका कारण केवल यह है कि हम अविद्या में फँसे हुए हैं, अग्नि में शीतलता और जल में उष्णता ढूँढ़ते हैं, इन्द्रियों की तृप्ति से सुख चाहते हैं, राष्ट्रीय भावों को जाति उत्थान का कारण समझते हैं। हमारी भूल प्रत्येक कार्य में हमें असफलता दिखाती है, हमारी यह दशा है कि—

"दिल चाहे दिलदार को, तन चाहे आराम, दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम।" कहावत प्रसिद्ध है कि धोबी का कुत्ता घर का न घाट का, यदि अब भी आप इन्द्रियों के विषयों में पड़ेंगे तो दुख के समुद्र में गिरोगे और कभी सुख न होगा। थोड़ी देर मृगतृष्णा के जल की भांति आप की दशा होगी। हरिण की भांति प्यास बुझाने दौड़ोगे; परन्तु अन्त में परिणाम दुख के अतिरिक्त कुछ न होगा। दुख उठाओगे, पछताओगे, रोओगे, चिल्लाओगे परन्तु कोई पूछेगा भी नही। संसार हँसेगा, मनुष्य क्या पशु तुच्छ जानेंगे। उठो नवयुवको! अपने देश को जगाओ धनी होकर देश को दूसरों का दाना खाने से बचाओ। जाति-पाठशाला और विद्यालय खोलो, भारतीय भाव चारों ओर फैला-कर देश को सावधान करो; पूर्वजों की बात को ताजा कर; देश के व्यापार को बढ़ाकर, विदेशी वस्तुओं से हाथ उठाओ। वरन् साहस कर के यहाँ पर उन से बढ़ कर बनाओ। संसार भर की जातियों के सन्मुख मुख उज्जवल करो। देश को नष्ट न होने दो। वैमनष्य को निकालो और ईर्षा-द्वेष अपने देश से बाहर करो। धनी और निर्धन को एक दृष्टि से देखो। जाति-ऋण को

पहचानो। जाति के सेवकों की कृतज्ञता मानो। देश की उन्नति के काम करो। नाम चाहने से अपना नाम न करो, ऐसे परिश्रम से काम करो कि तुम्हारा कोई भाई विजातियों के दान से न पले, नहीं दूसरी जातियों के हाथ बिकने जावे। यद्यपि इस मंजिल को दूर और अपनी शक्ति को थोड़ी जानकर आपका साहस नीचा पड़ेगा; परन्तु सर्वदा इस शेर को ध्यान में रखो।

सिर शमा से कटाइये पर दम न मारिये, मंजिल हजार दूर हो हिम्मत न हारिये! जाति के सेवको! देश के नवयुवको!! अपनी फजूल-खर्चियों से धन बचाओ और जाति-सेवा में व्यय करो। तनिक ध्यान दीजिये! इस नगर में कोई दो लक्ष मनुष्य रहते होंगे, इनमें से कोई दो आना के पान खाता होगा और कोई १ पैसे के और कोइ तनिक भी नहीं, यदि प्रत्येक मनुष्य का ३ पाई दैनिक औसत मान लिया जाय तो एक दिन में ३१२५) का पान दैनिक उठता है और यदि एक मास में एक दिन हिन्दू एकादशी व्रत और मुसलमान रोजा समझकर एक दिन पान न खाया करें और एक पैसा प्रत्येक मनुष्य के हिसाब से जाति फंड में देदें तो एक वर्ष में एक सहस्र पाँच सौ रुपये आते हैं, इससे एक अच्छा कालिज चल सकता है, अथवा इस नगर में जो तीस सहस्र घर हैं, उनमें से प्रत्येक में रसोई बनाते समय १ छटाँक चून जाति फंड में डाल दिया जावे तो प्रति दिन ४० मन ३५ सेर इकट्ठा हो, अब यदि इसको ढाई रुपये मन भी बेचा जाय तो प्रतिदिन ११७=) की आय हो, और वार्षिक आय बयालीस सहस्र सात सौ सत्तर रुपये सात हुई, जिसमें कालिज भली प्रकार चल सकता है, यह ऐसी बात जिनमें किसी को भार न लगे और जाति को बहुत बड़ा लाभ हो, केवल साहस की आवश्यकता है, जिस जाति में इतनी

शक्ति हो और वह दूसरों का मुख जोये, क्या तुम उसे निर्लज्ज नहीं कहोगे ? उठो प्यारो ! घर के झगड़ों को निबटाओ। तुम स्वतन्त्र कहाते हो, अतः मन दुर्वासनाओं की कड़ी अपने हाथ में मत डालने दो, प्रयत्न करो ! यही समय है, बुरे खेलों को दूर करो और स्वांग को बस्ते (गठरी) में बाँधकर टाँड पै रख दो, जब समय मिले तो जाति उन्नति के उपाय सोचो, देश को सँभालो, यदि अब भी आलस्य में रहोगे तो देश नाश को प्राप्त हो जायगा ४३ वर्ष में देश का अन्त होगा। उस समय आप से कुछ न बन पड़ेगा, देखो प्रियवर ! वह जाति जो निरी जंगली थी, अपनी जाति उन्नति में लगकर पूर्ण प्रतापी हो गई और जो जातियाँ अब तक असभ्य हैं, वह इसमें लीन हो रही हैं, उन्हें अपनी जाति तथा देश का इतना ध्यान है कि अपने प्राण गँवाते हैं ; परन्तु अपनी जाति को गुलामी (परतन्त्रता) एवं अत्याचार से छुड़ाते हैं, क्या आपको अपने देश के उन छोटे बालकों की कथा स्मरण नहीं है, जिन्होंने अपनी जाति के हेतु अपने प्राण दिये। देश को जगाया और धर्म को बचाया। जाति में ऐक्य का संचार किया अत्याचारियों को पराजित किया और देश-हितैषियों का साहस बढ़ाया, क्या आपने सच्चे भाई हक़ीक़तराय की कथा नहीं सुनी ? क्या वह आपका भाई न था, जिसने कि तेरह वर्ष के वय में प्राणों को धर्म पर वार दिया, जिसने धर्म परायणता को प्रकट किया और संसार को सत्य धर्म का परिचय दिया, जिसने उद्योगियों को साहस प्रदान किया, क्या आपने गुरू गोविन्दसिंह के पुत्रों का वृत्तान्त नहीं सुना ? यह भी आपके भाई थे, जिन्होंने कि भीतों में चुने जाकर मरना स्वीकार किया ; परन्तु सत्य धर्म को न छोड़ा, अपने प्राणों को गँवाया और वीरों में नाम पाया।

कौन है आज जो उनका नाम अभिमानपूर्वक नहीं लेता। कौन है आज जो उनका आदर नहीं करता। जब सूर्य तथा चन्द्र विद्यमान हैं, उस समय तक उनके नाम आदर एवं अभिमान पूर्वक लिये जावेंगे। यह सब अशिक्षित थे, क्या आप शिक्षित होकर इनसे पीछे रहेंगे ? यह सब बालक थे, क्या अब प्रौढ़ ज्ञानी होकर इनसे थोड़ी कीर्ति पर अभिमान करेंगे ? क्या आपको लज्जा न प्राप्त होगी कि आपके वह भाई, जिन्होंने कि अशिक्षित और बालक होते हुए भी वह वीरता दिखाई कि समस्त देश आज उनका नाम अभिमानपूर्वक लेता है और आप शिक्षित और प्रौढ़ होते हुए भी उनसे कम विख्यात हुए ? और जाति ने आपका कोई सम्मान नहीं किया ? वे सब परतंत्र थे, समय भी उनके प्रतिकूल था ; परन्तु फिर भी उन्होंने प्राण देकर प्रेम को निबाहा। आप स्वतंत्र हैं, धन और परिश्रम से काम ले सकते हैं, जो काम कि वे प्राण देकर नहीं कर सकते थे, आप उसे थोड़े से परिश्रम में कर सकते हैं, फिर भी आप प्रयत्न नहीं करते।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप प्रयत्न करेंगे, हाथ पाँव मारेंगे और जाति की नौका को निर्धनता की नदी के पार करेंगे, अन्य जातियों के हाथ से अपने भाइयों की रक्षा करेंगे और जाति को लाभ पहुँचायेंगे, जाति सुधार से जाति में मान प्राप्त करेंगे, जाति प्रेम का पालन करेंगे तथा जातीय कालिज (विद्यालय) बनाकर जाति को अपने समान बनावेंगे। मैं अब उस परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आपके हर काम में आपको सहायता देवे, आपको देश की भलाई हृदय से मंजूर हो और आप समय की गति को देखकर अपनी शक्ति के बढ़ाने का प्रबन्ध करें। नवयुवको ! चेत करो ! वृद्ध जन तो उस कुसमय तक

जो इस बुराई के कारण आनेवाला है न रहेंगे ; परन्तु आपको यह अवश्य देखना होगा। अतः प्यारो अपनी योग्यता का परिचय दो और देशी चाल ढाल अङ्गीकार करो। प्रियवर! यद्यपि बहुत से भाई हमारे देश की उन्नति का दम भरते हैं; परन्तु अपनी रीति भाँति नवीन शैली की बनाते जाते हैं। वे कदापि सफलता को नहीं प्राप्त हो सकते। वे देश की उन्नति के पलटे में अवनति करते हैं। क्योंकि देश की उन्नति का अर्थ यह है कि व्यापार बढ़े, देश की रीति भाँति अपने ढंग पर रहे, देश के वासियों में पूरा-पूरा ऐक्य है और प्रत्येक उनमें से देश तथा जाति के नाम पर प्राण देने के लिये तय्यार हो : देश के कला कौशल में उन्नति हो और देश की भाषा प्रत्येक विषय की आवश्यक पुस्तकों की रचना हो। यावत देशवासी अपने देश की प्रत्येक वस्तु को न अच्छा समझें और भावों को विदेशी चाल ढाल एवं रीति भाँति से सुरक्षित न रक्खें, तावत् देश की उन्नति तथा अपने परिश्रम की सफलता के स्वप्न में भी दर्शन न करेंगे। उठो नवयुवको! एकदम से विदेशी वस्त्र पहनना त्याग दो और विदेश की समस्त वस्तुओं को घृणा की दृष्टि से देखो। जिस समय देश की आवश्यकतायें बढ़ेंगी, उस समय प्रेमी भी उत्पन्न होंगे, देश स्वयं उन वस्तुओं को बना लेगा। देश की वस्तुओं में जो त्रुटि है, उसे हटाने का प्रयत्न करो। इस त्रुटि के कारण उसे त्यागो मत, जब आप इस प्रकार प्रयत्न करेंगे तो अवश्य ही थोड़े दिन में देश को फ़ारिगुल बाल और खुशहाल देखेंगे। आपको अपने निर्धन पंजाबी भाइयों से पाठ ग्रहण करना उचित है, उन्होंने निर्धनता और निर्बलता के होते हुए भी कई विद्यालय बना लिये, यद्यपि इस समय पूर्णता को नहीं प्राप्त हुए ; परन्तु उनकी प्रणाली दिन-प्रतिदिन उन्नति तथा देश में कीर्ति

अवश्य ही उन्हें उनके उद्देश्य तक पहुँचावेगी। आर्य्य समाज ने कालेज (विद्यालय) बनाया और बहुत सी पाठशालायें (स्कूल) जैसे कि लुधियाना, जमनाप्रसाद स्कूल तथा बागबानपुर स्कूल आदिक बनवा लिये, सिक्खों ने भी विद्यालय बना लिया और धर्म्म सभाओं ने भी लाहौर में एक हाई स्कूल खोल दिया। सारांश यह कि भाँति-भाँति से भिन्न-भिन्न समाजों के मनुष्य उन्नति की प्रतीक्षा कर रहे हैं; परन्तु आप आज तक इस कुम्भकर्ण की नींद से नहीं उठे, आपको व्यर्थ के अपव्ययों से अभी तक छुटकारा नहीं मिला, आपने धर्म्म की खोज में प्रयत्न नहीं किया, कहने का तात्पर्य यह कि सर्व प्रकार से पंजाब और बंगाल से पीछे रह गये। आप धर्म्म की आवश्यकता को जानते हैं यद्यपि उसके सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान नहीं, आप ज्ञानवान् होकर देश को सुधारने का प्रयत्न नहीं करते, उठो गुरुजनों!

मित्रो और कुमारो! जातीय विद्यालय और पाठशाला बनवाओ, जाति के अनाथों के लिये अनाथालय बनवाओ। सारांश यह कि अब आपका यह कर्तव्य है और आपके परिश्रम से पूर्ण हो सकता है। प्यारो! उस समय तक आप प्रयत्न करके देश के रोग की चिकित्सा कर सकते हैं, जिस समय तक कि वह असाध्य न हो जावे। और जब समय हाथ से निकल जायगा तो पछतावोगे। देखिये:—

सदा दौर दौरा दिखाता नहीं। गया वक्त फिर हाथ आता नहीं

अभी तक आपके देश के पच्चीस लक्ष मनुष्य ईसाई हैं, मानों आपके पच्चीस लक्ष भाई लोगों (विदेशियों) के गुलाम हो गये हैं। जो कुछ हुआ सो हुआ, अब आगे आप इसे प्रयत्न करके बचाइये।

भारतवर्ष की उन्नति का सच्चा उपाय

प्रिय पाठकगण ! भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में इस समय यह ध्वनि गूँज रही है कि देशोन्नति करो, जिससे विदित होता है कि देश उन्नत अवस्था में नहीं है। जब यह ज्ञात हो गया कि देशोन्नति को रोग लग रहा है तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जिसे इसकी औषधि करना उचित न प्रतीत होता हो; परन्तु जिस समय वैद्यक सिद्धान्तों की ओर दृष्टि की जाती है तो पता चलता है कि चिकित्सा के पूर्व यह जान लेना होता है कि यह रोग साध्य भी है वा नहीं, दूसरे निर्बलता भी दो प्रकार की होती है, जैसे एक बालक है, वह बहुत निर्बल है और दूसरा एक रोगी मनुष्य है, वह भी अति निर्बल है, अब क्या जिन साधनों से कि निर्बल बालक उन्नति प्राप्त कर सकता है, उन्हीं साधनों से वह रोगी भी उन्नति को प्राप्त हो सकता है ? कदापि नहीं, क्योंकि निर्बल बालक के लिये केवल भोजन की आवश्यकता है, परन्तु रोगी के लिये औषधि के पश्चात् खाद्यवस्तु की आवश्यकता होगी, जो दूध घी एक बालक के जीवन के लिये अति ही हितकर है, जिससे कि वह शीघ्र ही बलवान् बन सकता है, वही दूध और घी उस ज्वर के रोगी के विषम ज्वर करनेवाला तथा मार डालनेवाला है। इससे स्पष्ट विदित हुआ कि उन्नति के साधन अवस्था भेद से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यदि सबके लिये एक ही उपाय रक्खा जाय तो वह बहुत ही हानिकारक होगा। दूसरे यदि एक मनुष्य पर्वत के शिखर पर से नीचे गिरा है और दूसरा नीचे से पर्वत के ऊपर चढ़ रहा है तो अब दोनों के लिये दो भिन्न-

भिन्न उपाय पर्वत पर पहुँचने के हैं। पहिला मनुष्य, जो ऊपर से गिरा है, जितना आगे बढ़ेगा, उतना ही शृंग से दूर होता चला जायगा और दूसरा जितना आगे बढ़ेगा, शृंग के समीप पहुँचता जायगा ; परन्तु पहिला मनुष्य जितना पीछे हटेगा, उतना ही शृंग के पास पहुँचता जायगा और दूसरा पीछे हटेगा और दूर बढ़ता चला जायगा।

प्रिय सुहृदयगण ! ऊपर के उदाहरणों से आपको विदित हो गया कि रोग की अवस्था को देखकर चिकित्सा की जाती है। और जो सबके लिये एक ही औषधि का सेवन करना बताते हैं, वह पूरे मूर्ख हैं।

प्रिय मित्रगण ! अब सोचना चाहिये कि भारतवर्ष रोगी है वा बालक। यदि बालक की भाँति निर्बल है तब तो इसका उपाय यह है कि इसको पुष्टिकारक भोजन दिये जायँ और जो रोग के कारण निर्बलता को प्राप्त हो गया है तो रोग और उसके कारण को ज्ञात करके इसके निवारणार्थ औषधि का विचार किया जाय। यावत् औषधि प्रयोग से यह रोगी स्वस्थ न हो जायगा तावत् उसे बल-वर्धक पदार्थ दिये जायें, यह हितकर नहीं हो सकते। इस बात को ध्यान में रखते हुए, जाँचने के हेतु जिस समय भारत की नाड़ी को देखकर विचार करते हैं कि इसमें क्या-क्या त्रुटियाँ हैं, तो हमको प्रथम पता चलता है कि देश धर्म कर्म से नितान्त शून्य है, इसमें न तो माता पिता की सेवा है, न ईश्वरोपासना, न बड़ों का मान, न बराबरवालों से प्रेम, न छोटों पर दया और न दुराचारियों से घृणा। सुतराम् यह विचार उत्पन्न होता है कि भारतवर्ष में धार्मिक तथा आचार सम्बन्धी शक्ति का नाम नहीं। दूसरी ओर जब धैर्य और सत्य की ओर

देखते हैं तो पता चलता है कि एक पैसे की वस्तु बेचनेवाला भी बिना झूँठ के बात नहीं करता और यदि वह सत्य कहे भी तो कोई उसका विश्वास नहीं करता, क्योंकि मिथ्या भाषण की रीति प्रबलता पर है। यदि हम बाद विवाद किये बिना कुछ लेना चाहें तो नितान्त असम्भव है। रेल पर जब पूरी बेचनेवालों से पूछते हैं कि पूरी गर्म हैं तो उत्तर मिलता है कि हाँ! जी गर्म हैं। परन्तु जब लेकर देखो, दिन की बासी निकलती हैं। गाड़ीवाले से पूछो कि क्या किराया लेगा तो कहेगा कि बारह आना; परन्तु ठहर जायेगा तीन या चार ही आने में। वकील से पूछो कि क्या मेहनताना लोगे तो उत्तर मिलेगा कि ५०) रुपया; परन्तु ठहर जायेंगे २०) रुपया पर ही। झूँठे गवाहों की तो बात ही न पूछिये जिस फ़ीस (शुल्क) के चाहिये लेलो, दो आना से लेकर २०) तक के, सभ्य जन साथी के लिये प्रस्तुत हैं। पत्रों के सम्पादक के पास पहुँचिये तो जान पड़ेगा कि वास्तव में ये झूँठ के ठेकेदार हैं, दस बीस रुपये दे दीजिये, बस फिर झूँठ और बुराई के ऐसे पुल बाँधदें कि प्राचीन समय के भाटों को भी हरादें। इसी प्रकार ही प्रशंसा वा निन्दा करना तो मुख्य काम हो रहा है। जो लेखनी की शक्ति कि सत्य में लगाने योग्य थी, आज असत्य और स्वार्थ से भरे हुए लेखों में लगाई जाती है। सैकड़ों सम्पादक मूर्खता के कारण कारागार की वायु सेवन कर रहे हैं। परन्तु जनता के सच्चे हितैपी केवल सौ में से एक व दो ही दिखाई देते हैं। बाज़ार में चले जाइये, दलालों से भरी हुई एक अनोखी प्रकार की झूँठ की पंक्तियाँ दुकानों पर दीखेंगी। डाक्टरों के पास चले जाइये तो वहाँ पर सत्य का नाम भी नहीं मिलेगा। सारांश यह कि देश के इस सिरे से लेकर उस सिरे तक झूंठ का डंका बज रहा है और सत्य के दर्शन दुर्लभ क्या अमूल्य हैं। तो क्या दीन

मनुष्य ही मिथ्या भाषण करते हैं? नहीं, नहीं बड़े-बड़े राजे महाराजे, उच्च कर्मचारी भी इस रोग से ग्रसित हैं।

प्रिय सुहृदयगण! यदि आप भारत के धन पर दृष्टिपात करेंगे तो एक अनोखी ही छटा दीख पड़ेगी। कोई सात करोड़ मनुष्य भूखों मर रहे हैं, सभ्य देशों से व्यापार पूर्णतया बंद है। भारत का शिल्प ऐसा गिर गया है कि उसका नाम भी मिटता चला जाता है। सुई से लेकर बड़ी-बड़ी वस्तुयें सभी अन्य देशों से आती हैं, जिसका फल यह हो रहा है कि चारों ओर दुर्भिक्ष पड़ रहा है, क्योंकि भारत में कृषकों के अतिरिक्त अन्य सब लोग गिरहकटी करते हैं, वा एक दूसरे भाई को ठगकर खाते देख पड़ते हैं भारतवर्ष को शिक्षित समुदाय जिन्हें कि हम नेता कह सकते हैं कमाने का कोई ढङ्ग नहीं जानते, और केवल इतना करते हैं कि जितना बीसों दूसरे मनुष्य। इनके कई समुदाय हैं सबसे पहिला और माननीय इन वकीलों का समुदाय है, जिसमें बड़े २ आदमी हैं; परन्तु उनकी अपनी बनावट के सम्पूर्ण साधन देश की अधोगति के साधन हो रहे हैं। क्योंकि प्रथम तो यह लोग कुछ करते नहीं और फिर जितनी इनकी आय है, उसका तिगुणा राज्य में जाता है। उदाहरणार्थ यदि कोई वकील ५) सैकड़ा मेहनताना किसी देशी से लेता है तो ७॥) सैकड़ा कोर्ट-फीस देना होता है और लगभग इतना ही तलबाना तथा खर्च आदि में उठ जाता है। तात्पर्य्य यह कि जिस समय एक देशवासी के २०) सैकड़े व्यय होजायें, उस समय वकील महोदय को ५ सैकड़ा मिले! यदि कोई वकील १०००) मासिक कमाता है तो समझ लीजिये कि देश को तीन सहस्र रुपये मासिक अथवा ३६ सहस्र रुपये वार्षिक का घाटा पड़ता है और जितना समय मुकदमे-बाजी में जाता है, उसका मूल्य अलग रहा। बस अब सोच लीजिये

कि जितने वकील बढ़ते जायँगे। उतना ही देश की अधोगति बढ़ती जायगी। दूसरा सभ्य समुदाय डाक्टरों का है, यह भी जितनी फीस लेते हैं, उससे दुगुना द्रव्य औषधियों के बदले विदेश को भेज देते हैं, उन्हें अपने देश में औषधि तक बनाना नहीं आता। शेष कुछ अहलकार आदि हैं, जो प्रत्यक्ष में तो बहुत-सी हानि नहीं करते; परन्तु विदेशी वस्तु लेकर देश के धन को बहुत कुछ हानि पहुँचाते हैं, दूसरी ओर लीजिये हमारे व्यापरियों को। यह भी लाभकारी होने के बदले हानिकारक होरहे हैं। यद्यपि कृषि को छोड़कर सब कामों में यह सर्वोच्च हैं, परन्तु वर्तमान समय में यह उत्तम वस्तु भी हानिकारक होरही है। क्योंकि भारतवर्ष में शिल्प का तो नाम नहीं रहा। अतः यहां की बनी चीज़ विदेशों को जाती नहीं, केवल विदेश के पदार्थों के पलटे हमें कच्चा माल वा नाज भेजना पड़ता है, जिससे कि देश में नित्यप्रति दुर्भिक्ष बढ़ता चला जाता है, इस प्रकार व्यापार का मक्खन विदेश के शिल्पी खा जाते हैं, केवल छाँछ हमारे देशी व्यापारियों के पल्ले पड़ता है, जिसके पलटे में हमारे देश के वकील और कृषकों का सारा दूध अर्थात् मलाई व्यय होती है।

प्रिय पाठकगण! आप कहेंगे यह क्या बात है? भारत का प्रत्येक व्यवसाय जिसे लोग उत्तम समझकर स्वीकार करते हैं देश के लिये हानिकर होरहा है? इसका उत्तर यह है कि जिस मनुष्य के नेत्रों में दोष आजाता है, यदि वही मनुष्य स्वयं अपनी निर्बल आंखों को बुरी जानकर पृथक् करदे और नवीन बिल्लौर की सुन्दर आंखें लगवाले तो देखने में तो अति सुन्दर लगेगा; परन्तु उसकी देखने की शक्ति पूर्णतया जाती रहेगी। अब यदि उसे दूर से देखकर तथा उसके नेत्रों को अति सुन्दर पाकर कोई उसे अपना पथ-प्रदर्शक बनाले तो उसके नाश में कोई त्रुटि नहीं

रहती ; क्योंकि देखने में तो नेत्रवान् हैं ; परन्तु हैं वास्तव में चक्षु-विहीन। अब यदि वह किसी गढ़े में गिरे तो दूसरा निर्बल दृष्टि-वाला यह समझकर कि मेरी दृष्टि में दोष है अतः मुझे यथोचित नहीं दीखता अन्यथा ऐसे नेत्रोंवाला किसी गढ़े में नहीं जा सकता, उसके पीछे कूदकर अपने आप को नष्ट कर लेता है।

प्रिय पाठकगण ! ठीक यही दशा भारत देश की है, जब इसके वास्तविक नेत्र अर्थात् संस्कृत विद्या इसके आलस्य से निर्बल हो गई तो उसने उसे भद्दी समझकर पाश्चात्य भाषा रूपी बिल्लौरी नेत्र लगा लिये, जिससे कि देखने में बहुत ही लाभ प्रतीत हुआ ; परन्तु वास्तव में भारतवर्ष अवनति के गढ़े में जा गिरा। क्योंकि देश के पथ-प्रदर्शक भी वही मनुष्य हो गये, जिनके नेत्र बिल्लौर के थे। अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए मनुष्य जो कि भारत के रोग से नितान्त अनभिज्ञ थे और जिन्हें यह पता न था कि इस देश की उन्नति इसकी अपनी विद्या तथा धर्म पर निर्भर है और जिस समय तक धर्म न हो, उस समय तक कोई उन्नति यथोचित नहीं हो सकती। उन्होंने पोलीटिकल (राजनैतिक) विचार फैलाने आरम्भ किये, जिससे कि, देश में और भी बेईमानी फैल गई। उन्होंने कांग्रेस स्थापित की जिससे कि देश को लाभ के बदले हानि अधिक हुई और इसमें हिन्दू अधिक थे। अतः अधिक हानि हिन्दुओं ही को हुई, सबसे भारी तो यह हानि हुई कि गवर्नमेंट के प्रतिनिधि इस धर्म की इच्छुक, हिन्दू जाति को जिसमें कि राजनैतिक विचार तनिक भी नहीं हैं, राजनैतिक दल समझने लगे, गवर्नमेंट की दृष्टि में दीन हिन्दुओं का विश्वास घट गया, उनको पद भी थोड़े मिलने लगे, उनकी प्रत्येक सभा पोलीटिकल कहलाने लगी। कहिये इससे बढ़कर और क्या हानि हो सकती है ?

प्रिय पाठकगण ! यदि भारतियों के बल पर दृष्टि की जाय तो शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार का बल नहीं रहा। शारीरिक बल न होने का कारण तो यह है कि शस्त्र-विद्या का काम भारत से पूर्णतया छीन लिया गया, मानों क्षत्री वर्ण भारत में नहीं रहा और आत्मिक बल धार्मिक शिक्षा के न होने से जाता रहा, ऐसी निर्बलता होगई कि भारतवासियों को अपनी प्राण-रक्षा भी दुष्कर हो गई, जिसका प्रमाण यह है कि लाखों खून हो रहे हैं। चोर और डाकू तो शस्त्रास्त्र धारण करते हैं और सभ्य प्रजा शस्त्रहीन है। कैसा भयङ्कर दृश्य है कि पशुओं को मारने की शक्ति दी जावे और मनुष्य की रक्षा के शस्त्रास्त्र छीन लिये जायें। बल का दूसरा साधन जो एकता है, वह तनिक भी नहीं रही। क्योंकि राजनैतिक शिक्षा ने प्रत्येक के मस्तिष्क में "हमचुमादीगरे नेस्त" (मेरे सा कोई नहीं) का विचार भर दिया है।

प्रिय मित्रगण ! इस समय आप भारत की जिस वस्तु के विषय में अन्वेषण करेंगे, उसे निर्बल ही पावेंगे ; परन्तु अब यह विचार करना है कि क्या यह निर्बलता स्वाभाविक है ? क्या कभी भी भारत में इन बातों का अस्तित्व न, था। यदि वास्तव में भारतवर्ष इन गुणों से रहित था तो मानना पड़ेगा कि वास्तव में भारतवर्ष बालक है, उसकी उन्नति के वह साधन होने चाहिए, जो एक बालक का बल बढ़ाने के लिये आवश्यक हैं और यदि यह बात सिद्ध हो कि भारतवर्ष में यह गुण थे और वे किसी कारण नहीं रहे तो ऐसी अवस्था में भारत को बीमार कहना पड़ेगा और उसकी चिकित्सा करनी होगी। रोग के कारणों को जानना, जो कुछ रोग से पूर्व था और अब नहीं है, उसे लाना होगा तथा जो प्रथम नहीं थे, उनको निकालना होगा।

प्रिय पाठकगण ! जब इस बात की पड़ताल के लिये भारतवर्ष के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं कि भारत में विद्या थी वा नहीं तो हमारे सामने षट् दर्शन-उपनिषद्, वेद और वेदों के छः अङ्ग तथा चार उपवेद आ खड़े होते हैं, जिनको देखकर इस समय भी संसार चकित है कि न जाने इनके रचयिता कितनी विद्या पढ़े हुए थे। आज समस्त संसार के विद्वान् और योग्य पुरुष जैसे प्रोफ़ेसर मैक्समूलर और शोपनहार आदि इस विषय में सहमत हैं कि भारतवर्ष विद्याओं की खान था और आज कल भी भारतवर्ष की आत्मिक विद्या जो मनुष्य[illegible] सर्वोच्च उद्देश्य है, समस्त संसार से बढ़ी हुई है। इन स[illegible] बातों से पता चलता है कि विद्या के विषय मे भारत की यह दशा न थी जो आज देखने में आ रही है। जिस समय यह विचार करने लगते हैं कि क्या भारत में धर्म की यही अवस्था थी, जो इस समय देखने में आ रही है वा इससे बढ़कर धार्मिक भाव विद्यमान था तो उस समय महाराज हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर की कथायें सामने आ डटती हैं, जिन्हें देखकर बुद्धि चकित है। जब माता पिता की आज्ञा पालन वा भ्रातृ प्रेम का विचार आता है तो महाराजा रामचन्द्र का जीवन स्पष्टतया यह बता देता है कि भारतवासी ऐसे योग्य हो चुके हैं कि जिन्होंने पिता की आज्ञा पर तुरन्त राज्य त्याग दिया और लक्ष्मणजी ने भ्रातृ-प्रेम में घरबार माता पिता एवं स्त्री आदि के सुख को छोड़कर बन बन घूमना स्वीकार किया और महाराज भरतजी का वृत्तान्त तो आश्चर्य कारक है कि पिता राज्य दे, और वह यह समझकर कि मेरा स्वत्व नहीं है, रामचन्द्र का है, राज्य को तुच्छ समझकर और अधिकारी के अधिकार का विचार करके अङ्गीकार न करें और रामचन्द्रजी को बन से लेने जावें, और जब सीताजी के

पतिव्रत धर्म का विचार आता है तो सचमुच यह निश्चय हो जाता है कि भारत में धर्म था, यद्यपि आजकल धर्म नाममात्र का रह गया है।

प्रिय पाठकगण! जब हम इस बात की खोज करते हैं कि भारत में शिल्प था कि नहीं तो उस समय महाराजा युधिष्ठिर के महल (राज प्रासाद) का ध्यान आता है कि जो मय दैत्य ने इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली में बनाया था और जहाँ कि इस प्रकार की कारीगरी की गई थी कि जहाँ पानी हो वहाँ सूखा दीखता था [illegible] जहाँ सूखा था वह जल से पूरित प्रतीत होता था, जब रा[illegible] दुर्योधन उस प्रासाद को देखने के लिये गया और उसने जल समझकर बाँह चढ़ाई; परन्तु वहाँ सूखा निकला और आगे चल जहाँ जल था, उसे सूखा जान गढ़े में जा गिरा और उस समय द्रौपदी ने कहा कि अरे! अन्ध के अन्ध! इस से स्पष्ट विदित होता है कि भारत के शिल्प में बड़े-बड़े बुद्धिमान् चक्कर खाते थे, हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि भारत में यह बात तो थी; परन्तु देशोन्नति का भाव भारत में कभी नहीं उत्पन्न हुआ, परन्तु हम उनसे अनुरोध करते हैं कि वे इतिहास को तनिक ध्यानपूर्वक पढ़ें, उन्हें पता लग जायगा कि जिस समय महमूद ने भारत पर आक्रमण किया, उस समय भारत की स्त्रियों ने अपने आभूषण गला-गलाकर लाहौर के राजा जैपाल के सहायतार्थ भेजे थे, क्या इससे बढ़कर देश प्रेम हो सकता है कि स्त्रियाँ जिनका एकमात्र आधार आभूषण ही होते हैं। उसको भी देश के नाम पर न्योछावर कर दें, हम एक घटना और उद्धृत करते हैं कि जिस समय सिन्ध के राजा दाहिर पर मुसलमानों ने चढ़ाई की और राजा दाहिर युद्ध में मारे गये तो दाहिर की रानी ने यवनों के सेनाध्यक्ष मुहम्मद कासिम के

मुक़ाबले पर कटि कसी, तीन दिन तक उसको बराबर पराजय मिली; परन्तु चौथे दिन रसद के बीत जाने के कारण राजपूतों की सेना कट गई, जिस समय रानी ने देखा कि देश और धर्म की रक्षा अति कठिन है तो अपने परिवार तथा अन्य स्त्रियों सहित चिता में जलने की तैयारी की और सैकड़ों राजपूत स्त्रियाँ अपने धर्म रक्षार्थ उस चिता में जलकर भस्म हो गईं, उस समय लगभग सवा सौ ऐसे राजपूतों के पुत्र थे, जिनकी अवस्था कि दस से तेरह वर्ष की थी और जो कि उस समय की प्रथा एवं क्षात्र धर्मानुसार गुरुकुल में शस्त्र विद्या सीख रहे थे, जब निराश अवस्था में उन बालकों से कहा गया कि तुम यहाँ से भागकर अपने प्राण बचाओ तो उस समय उन क्षत्री सुकुमार बालकों ने बलपूर्वक कहा कि क्या कहीं धर्म शास्त्र में लिखा है कि क्षत्री भागकर प्राण बचायें? तो उत्तर दिया गया कि ऐसा कहीं नहीं लिखा, उन्होंने कहा कि फिर हमें क्यों ऐसी आज्ञा दी जाती है? अब इस विचार से कि कहीं बलात् मुसलमान न बनाये जावें, उनसे कहा गया कि आओ हमारे साथ जलती हुई अग्नि में बैठकर धर्म की रक्षा करो, उन्होंने फिर कहा कि क्या किसी शास्त्र में लिखा है कि क्षत्री के बालक आत्महत्या करें, जब उनसे कहा गया कि कहीं नहीं लिखा है तो उन्होंने कहा कि हम ऐसा किस प्रकार कर सकते हैं, उनसे पूछा गया कि तुम अब क्या करना चाहते हो? उन्होंने कहा कि रण में लड़कर मरेंगे, जैसा कि क्षत्रियों का धर्म है।

प्रिय पाठकगण! उन बालकों की यह दशा देखकर उनके माता पिताओं ने कहा कि अच्छा, जाओ, परन्तु स्मरण रक्खो कि कहीं भाग न आना व शत्रु के सामने शस्त्र न रख देना जिससे कि क्षत्री कुल को धब्बा लगे, उन बालकों ने कहा:—

यदपि हिमाचल शृंग होय भूतल पर आड़े ।
यदपि सूर शशि खसें धसें जो नभ पर ठाड़े ॥
यदपि सिन्धु इक बिन्दु होय सूखै क्षण माहीं ।
तदपि क्षत्रि के पुत्र तजें रण में असि नाहीं ॥

अर्थात् यद्यपि हिमालय की शिखर टेढ़ी होकर पृथ्वी पर आ जाय अथवा सूर्य और चन्द्रमा जो आकाश पर हैं, पृथ्वी में धस जायँ व चाहे समुद्र एक बूँद होकर सूख जाय (यह असम्भव बातें भले ही सम्भव हो जावें) परन्तु क्षत्री के पुत्र रणभूमि में शस्त्र न त्यागेंगे, सारांश यह कि हम दृढ़ हाथ से तलवार को पकड़कर यह प्रतिज्ञा करते हैं कि तो शत्रु को नाश कर देंगे और कि स्वयं नाश हो जायँगे, हमने जो कुछ गुरु से शिक्षा पाई है, आज रणक्षेत्र में उसकी परीक्षा करेंगे, यदि नगर की रक्षा के हेतु जीवन सेतु टूट जाय तो कुछ चिंता नहीं ; क्योंकि धर्म का मार्ग न छूटना चाहिये, सर्व संसार को विदित है कि हम वीर माता से उत्पन्न हुए हैं, अतः अपने प्राण देकर देश का गौरव बनाये रखेंगे ।

प्रिय पाठक ! यदि आप बल अर्थात् वीरता का पता लगाना चाहें तो अर्जुन, भीम, भीष्मपितामह तथा रामचंद्रादि के इतिहास से भली प्रकार विदित होगा कि भारत में बल भी बहुत था, इन सम्पूर्ण बातों की खोज से भली प्रकार विदित हो गया कि जिन बातों की आज न्यूनता है, वे बातें प्राचीन समय में बहुत अधिक थीं और भारत में सब प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान थीं, परन्तु फिर कुछ ऐसी घटनायें हुईं, जिनके कारण क्रमशः न्यूनता को प्राप्त हो गईं ; इससे ज्ञात हुआ कि भारत बालक नहीं, किन्तु रोगी है । सुतराम् इसकी वही चिकित्सा होनी चाहिये, जो कि

एक रोगी की होती है, अर्थात् प्रथम इसके कारण जानकर उनको निवारण किया जावे और जब रोग दूर हो जाय, तब पुष्टि कारक पदार्थ देकर उसे दृढ़ किया जाय।

प्रिय पाठकगण ! जो आज कल हमारे भाई अमेरिका और इङ्गलैन्ड की उन्नति को देखकर तदनुसार भातवर्प की उन्नति का विचार करते हैं। वह पूर्णतया भ्रम में हैं, क्योंकि इङ्गलैन्ड और अमेरिका बालक थे। उनकी उन्नति नवीन उन्नति है। अतः जिस पदार्थ से वह बलवान हो गये, उससे भारत जैसे रोगी देश की उन्नति करना नितान्त असम्भव है, हम एक पर्वत की शिखर से गिरे हैं, अतः हमें हटकर पीछे की ओर चलना उचित है, और इङ्गलैन्ड और अमेरिका जो एक पर्वत की तलहटी से ऊपर को चढ़े हैं, शिखर उनके सामने है। अतः उन्हें आगे बढ़कर काम करना उचित है, सुतराम जो मनुष्य कि अमेरिका और इङ्गलैड की भाँति भारत की उन्नति करना चाहते हैं, वह बहुत भारी भूल में हैं, उनकी भाँति से भारत को जो हानि हुई है, उसकी कोई सीमा नहीं, अतः देश हितैपियों को उचित है कि तनिक मस्तिष्क से अभिमान को त्यागकर विचार करें और भारत की बीमारी के कारणों को दूर करके भारत की उन्नति करें।

गोहत्या कौन करता है ?

आजकल भारतवर्ष में यह प्रश्न उठ रहा है कि गो रक्षा हो। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, यहाँ के निवासियों का आहार घृत और दुग्ध है। गोरक्षा के बिना भारतवर्ष का उन्नति पर जाना दुस्तर है। इस विचार को देश में फैला हुआ देखकर प्रत्येक मनुष्य को स्वाभाविक रीति पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि गोहत्या करता कौन है। जिससे अपील करें कि भाई तुम गोहत्या छोड़ दो, इससे देश को हानि पहुँचती है। हिन्दू कहते हैं कि गोहत्या मुसलमान करते हैं, गवर्नमेंट फ़ौजों के लिये करती है, उनसे अपील करनी चाहिये कि वह इस ख़राबी को त्याग दें, जिससे भारतवर्ष तबाह न हो। जब हम हिन्दुओं के इस दावे को गम्भीर विचार से सोचते हैं तो हमें ये दावा बेजान मालूम होता है—बल्कि मुसलमान इत्यादि तो इस बुराई को विवश होकर करते हैं। असली जड़ इसकी हिन्दू हैं। यदि कुल हिन्दू सहमत होकर चाहें तो कल ही गोहत्या बन्द हो सकती है। मुसलमान और अँगरेज़ जिन देशों में उत्पन्न हुए, उन देशों में अन्न की इतनी पैदावार नहीं, जितनी की उनको आवश्यकता है, अतएव उन देशों में मांस और मछली खानेवाले मनुष्य अधिक उत्पन्न हुए, जिनसे उनके संस्कार ही मांसाहार के थे, उनकी धार्मिक पुस्तकें भी उनको आज्ञा देती हैं—उनके नेताओं के कर्तव्य भी उनकी सहायता करते हैं; परन्तु हिन्दुओं की दशा उनसे बिलकुल पृथक् है। हिन्दुओं के वेद मांसाहारी को राक्षस बतलाकर राजा को दण्ड देने की आज्ञा देते हैं। ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ५ में 'राक्षसो हन्' सूक्त के

२५ मंत्र इस विषय में विद्यमान हैं। हिन्दुओं के धर्मशास्त्र मनुस्मृति में ८ आदमियों को घातक अर्थात् कसाई बतलाया है—पशु के मारने की सम्मति देनेवाला, मारनेवाला, अंगों के पृथक्-पृथक् करनेवाला, मांस के लानेवाला, पकानेवाला, खानेवाला, परोसनेवाला इत्यादि हिन्दुओं के नेता मांसाहारियों को राक्षस ही समझते रहे। रावण यद्यपि पुलस्त्य मुनि का पोता, लङ्का का राजा और पंडित होने के कारण भी राक्षस कहलाया। आज-कल प्रायः हिन्दू उपदेशक हिन्दू के अर्थ ही हिंसा से दूर रहनेवाला कर रहे हैं। जबकि इन सब बातों की विद्यमानता हिन्दू लोग मांसाहार को छोड़ने पर तय्यार नहीं, ऐसी दशा में मुसलमानों से आशा रखना कि वह मांसाहार और गो हिंसा छोड़ दें, एक मूर्खता का ख़याल है। हिन्दू और सिक्खों में मांसाहार जितना बढ़ता जाता है। उतनी ही गोहिंसा बढ़ती जाती है। नई रोशनी और बिरादरी के गिर जाने से हिन्दुओं में मांसाहार दावानल की तरह बढ़ रहा है। जो जातियें माँस से बिलकुल घृणा करती थीं। अर्थात् गौड़, सनाढ्य, ब्राह्मण, अग्रवाल वैश्य, महेश्वरी वैश्य, ऐसे बहुत से बनिये व जैनी लोग बिना किसी विवाद के निरामिषाहारी समझी जाती थीं—आज-कल इन जातियों के सैकड़ों बालक मांसाहार और मद्यपान के इच्छुक दृष्टि पड़ते हैं। यह बात भी सर्वसम्मत है कि हिन्दू मुसलमानों से अधिक रुपयेवाले हैं और मुसलमानों से अधिक रुपया कमाना जानते हैं, इसलिये जिस माँस को हिन्दू खाते हैं (और मांसाहारी हिन्दुओं की संख्या पन्द्रह करोड़ से कम नहीं) उसका बहुमूल्य होना आवश्यक है। जब मुसलमान उस मांस को जिसे हिन्दू खाते हैं, अपनी निर्धनता और मांस के बहुमूल्य होने के कारण खा नहीं सकते। तो मजबूरन गौ जैसे

लाभकारी पशु को बध करते हैं। यदि पन्द्रह करोड़ हिन्दू मांसाहार को छोड़ दें तो बकरे इत्यादि का सस्ता हो जाना सम्भव है इस दशा में और मुसलमान भी इसको खाकर गोहिंसा से बच सकते हैं और गवर्नमेंट भी फ़ौजों के लिये इसको ख़रीदने में आगा-पीछा न करेगी—अगर हिन्दू ये चाहें कि हम तो अपने पेट को पशुओं की कब्र बनाते हैं और मुसलमान मांसाहार से हाथ खींचलें तो हिन्दुओं की इच्छा न तो न्याय कहला सकती है और नाहीं मुसलमान इसको मान सकते हैं। अतएव वर्त्तमान् दशा में जो लोग चाहते हैं कि गौहत्या बन्द हो जावे तो उनका कर्त्तव्य यह है कि हिन्दुओं को मांसभक्षण करने से पृथक् करने की कोशिश करें और जितना रुपया गोरक्षा के वास्ते खर्चना मंजूर हो उसको मांसाहार के विरुद्ध प्रचार करने में व्यय करें—यदि हिन्दुओं से मांस छुड़ाने में सनातन-सभा, महामण्डल, जैन सभा, आर्यसमाज और दूसरी जातीय सभायें सफल हो जावें या हिन्दू सभा ही इस सफलता को प्राप्त कर ले तो समझना चाहिए कि उसने वैदिक धर्म की रक्षा का बड़ा काम कर लिया—बहुत से लोग प्रश्न करेंगे कि इस समय हिन्दुओं की इन जातियों में जिनमें मांसाहार का प्रचार न था, तब मांसाहार क्यों बढ़ रहा है—इसका उत्तर यह है कि वर्त्तमान समय में बहुत से कारण हैं, जिनसे मांसाहार की उन्नति हो रही है। पहला कारण तो शिक्षा प्राप्ति के लिये विलायत जाना है, जहाँ कोई आदमी जब तक अपने धर्म पर पूर्ण विश्वास रखनेवाला न हो, मांसाहार से बच नहीं सकता। क्योंकि वहाँ अधिक लोग मांसाहारी ही साथी मिलते हैं। दूसरा कारण धार्मिक शिक्षा की न्यूनता है, जिससे हिन्दू आत्मिकोन्नति से दूर रहकर जिह्वा के स्वादु के दास बन गये। तीसरा कारण उस असत्य विचार का फैल जाना है कि

मांसाहार बल बढ़ाता है। यदि विचारदृष्टि से देखा जावे तो ऐसी बहुत-सी चना इत्यादि घास पात हैं, जिनमें मांस से अधिक बल है। चौथा कारण इस ख़याल का फैल जाना है कि खाने पीने से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। वस्तुतः यह विचार नितान्त मूर्खता का विचार है; क्योंकि आहार से मन बनता है और मन से अच्छे और बुरे कर्म बनते हैं। यदि कोई मनुष्य ख़राब औजार से काम करेगा तो अवश्य ही खराब होगा। इसी ख्याल से प्रत्येक मत में खाने पीने के सम्बन्ध में आदेश निरदेश विद्यमान हैं। यह भक्ष्याभक्ष्य तीन प्रकार से है—प्रथम धर्मशास्त्र का बतलाया हुआ, जिससे मन ख़राब बनता है—इसका धर्मशास्त्र अभक्ष्य बतलाता है, जिससे मन अच्छा बनता है। उसको भक्ष्य अर्थात् खाने योग्य बताता है। दूसरा वैद्यक शास्त्र के अनुसार जिनका शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्ध है। जिससे शरीर को लाभ पहुँचे उसको भक्ष्य अर्थात् खाने के योग्य कहते हैं, जिससे शरीर को हानि पहुँचे, यह वैद्यकशास्त्र के अनुसार अभक्ष्य है अर्थात् खाने योग्य नहीं—तीसरा समाज की अपेक्षा से जिसको समाज अभक्ष्य माने वह खाने योग्य नहीं और जिसे समाज विहित कहे वह खाने योग्य है। समाज की स्थिति यतः शरीर पर निर्भर है, इसलिये शरीर को समाज के सम्बन्ध में उत्कृष्टता दीगई है—यदि शरीर रोगी हो तो समाज भी रोगी होगा। अतएव समाज को स्वस्थ रखने के लिये शरीर का स्वस्थ रखना आवश्यक है और शरीर को ठीक रीति पर काम में लगाने के लिये शुद्ध मन की आवश्यकता है। यदि मन खराब हो तो शरीर ठीक काम नहीं कर सकता—इस लिये शरीर पर मनको उत्कृष्टता प्राप्त है और मन यतः आहार से बनता है अतः आहार को मन से पृथक् रखना पशुता है। इसी कारण सम्पूर्ण मतवादियों ने

विहित और अविहित का सिद्धान्त दर्ज किया है। ऐसी दशा में जब कि शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक उन्नति के साथ अहार का सम्बन्ध है तो जो आर्यसमाज शारीरिक, आत्मिक और सामाजिकोन्नति का मुख्योद्देश्य रखकर स्थापन हुआ है, उसके नादान नेताओं का यह ख्याल कि खाने पीने से धर्म का कोई सम्बन्ध ही नहीं, कैसा भयानक है। जहाँ ये विचार धर्म-शास्त्र के विरुद्ध हैं, वहाँ प्रमाणों से भी दोषपूर्ण सिद्ध होता है। बस जब तक हिन्दू लोग मांसाहार को न छोड़ें तब तक गौहत्या का बन्द होना असम्भव है यदि हिन्दू मांसाहार छोड़दें तो गौहत्या का बन्द होना आवश्यक है मानो गोहत्या हिन्दुओं के हाथ में है इस दशा में कौन कह सकता है कि गोहत्या मुसलमान करते हैं या गवर्नमेंट करती है—बुद्धिमानों को यही कहना पड़ता है कि गोहत्या मांसाहारी हिन्दुओं के कारण होती है। हिन्दू यदि गोरक्षा चाहते हैं तो उनका कर्त्तव्य है कि मांसाहार को छुड़ाने में समस्त शक्ति व्यय करदें—हिन्दू लोग गोरक्षा के वास्ते प्राण देते थे, क्या उनकी सन्तान जिह्वा के चस्के को भी नहीं छोड़ सकती। गुरु गोविन्दसिंहजी देवी से प्रार्थना भी करते हैं कि गोघात का दोष संसार से मिटाऊं, क्या गुरु गोविन्दसिंह के सच्चे भक्त गोभक्षण जो गोघात का कारण है, इसको करके गोरक्षक कहला सकते हैं। बाबा नानक साहब तो स्थान-स्थान पर मांसाहार का खण्डन करते हैं क्या बाबानानक के अनुयायी मांस भक्षण करते हुए बाबा साहब के सच्चे अनुयायी कहला सकते हैं। वेदों ने तो मांसाहारी को राक्षस बतला ही दिया है, प्राचीन काल में इस पर प्रयोग भी होता रहा है। रावण पुलस्त्य मुनि का पोता, सब का भक्त होते हुए भी मांसाहार के कारण राक्षस कहलाया। ऐसी दशा में जो ब्राह्मण मांसाहार करते हुए सनातन धर्मी कहलाते

हैं, वह ऐसे ही ब्राह्मण और सनातन धर्मी हैं, जैसे पंजाब में नाई का नाम राजा रख दिया जाता है। ऋषि दयानन्द ने तो मांसाहारियों और मद्य पीनेवालों के हाथ का खाना तक मना किया है, तो उस दशा में वह आर्य कैसे कहला सकता है जो कि धर्म को जिह्वा के स्वादु के आगे तुच्छ समझता है। वैदिक धर्मियो! यदि तुम गोहत्या को दूर करना चाहते हो तो मांसाहार को दूर करो अन्यथा मुसलमानों और ईसाईयों पर गोहत्या का दोष लगाना छोड़ दो। वर्तमान दशा में गोहत्या का दोष तुम्हारे सिर है, क्या तुम गोरक्षा के लिये कटिबद्ध होकर मांस भक्षण छुड़ाने का यत्न नहीं करोगे? जब हिन्दुओं से गो मांस भक्षण छुड़ा देंगे तो अपने आप भारत में गोरक्षा हो जायगी—अन्न सस्ता हो जायगा—अर्थात् भारत का सब क्लेश दूर हो जायगा।

मुफ़्त तालीम

(अशुल्क शिक्षा)

संसार में मनुष्य जीवन के लिये जल और वायु यह दो ऐसी वस्तुयें हैं कि जिनके बिना मनुष्य एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता, सुतराम परमेश्वर ने इन पदार्थों को इतनी अधिकता से उत्पन्न किया है कि वह प्रत्येक स्थान पर बिना किसी मूल्य के प्राप्त होता है। निर्धन से निर्धन के घर में भी वायु बहता है, क्योंकि बिना उसके जीवन नहीं रह सकता ? जल की नदियाँ बह रही हैं, कुये बन सकते हैं। यद्यपि वहाँ से जल प्राप्ति में कुछ परिश्रम करना पड़ता है परन्तु वह भी अमूल्य प्राप्त होता है। क्या वह देश हतभाग्य नहीं कि जिस देश में वायु और जल धनवानों की सम्पत्ति हो जावें और वह रुपये से बिकने लगें। उस दशा में कोई भी निर्धन जीवित नहीं रह सकता है ? तब क्या उस देश की जीवित देश में गणना होगी ? जिसका कि मृत भाग अर्थात् उस के निर्धन निवासी जीवन से रहित हो जावें। क्या कोई बुद्धिमान स्वीकार करेगा कि जल और वायु बेची जाया करें। जिससे उसके निर्धन भाई रहित होकर अपना जीवन खो बैठें। जो सम्बन्ध शारीरिक जीवन का वायु और जल के साथ है, वही सम्बन्ध आत्मिक जीवन का शिक्षा के साथ है। क्योंकि बिना शिक्षा के आत्मिक जीवन स्थिर ही नहीं रह सकता और जहाँ आत्मिक जीवन न हो, वहाँ मन और इन्द्रियों पर अधिकार किस प्रकार हो सकता है और जहाँ मन और इन्द्रियां स्वतन्त्रता से काम करने लगें, वहाँ सामाजिक जीवन किस प्रकार

हो सकता है ; क्योंकि सामाजिक जीवन का आधार योग्यता पर है अर्थात् कुछ कर्म जो करने योग्य है जो मनुष्य के शारीरिक तथा सामाजिक और आत्मिक जीवन के लिये लाभदायक है उनको करना ही योग्यता का कार्य है । जो मनुष्य योग्यता रखता है, वह स्वतन्त्र नहीं हो सकता ; क्योंकि स्वतन्त्र वह कहला सकता है जो करने न करने और उल्टा करने की शक्ति रखता हो। परन्तु बुद्धि बुरे कामों के करने से रोकती है कोई बुद्धिमान इसके विरुद्ध नहीं कर सकता अर्थात् जिन कामों के करने में बुद्धि रोकती है उसे ज्ञान में नहीं ला सकता अन्यथा वह अपने पाँव स्वयं कुल्हाड़ी मारता है और जो अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारे वह बुद्धिमान कैसे कहला सकता है अतएव बुद्धि बुरे कामों से रोकती और शुभ कर्मों की ओर लगाती है, जो मनुष्य बुद्धि के अनुकूल नहीं करते वह अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जब तक इस भारतवर्ष में योग्यता रही तब तक पुरुष जगद्गुरू और चक्रवर्ती राजाओं को उत्पादक था, जबसे इस देश ने योग्यता को तिलांजलि दी है, तबसे इसकी दुर्गति होने लगी। यद्यपि यहाँ के दान के लिये देशकाल और पात्र का विचार आवश्यक था परन्तु योग्यता के न होने से इसकी काया पलट गई। देश के कहने से तात्पर्य यह था कि देश में जिस वस्तु की आवश्यकता हो, उस देश में उसी वस्तु का दान किया जावे। शीत प्रधान देशों में कपड़े का दान और उष्ण देश में जल का दान, जिसमें अकाल हो वहाँ अन्न का दान तथा जिस देश में रोग है वहाँ औषधि का दान देना योग्य है, मूर्खों ने देश के अर्थ तीर्थ स्थान के लिये हैं और काल के अर्थ थे—जिस समय कोई किसी विशेष वस्तु का इच्छुक हो यथा कोई मनुष्य ग्रीष्म ऋतु में कम्बल बाँटे तो वह काल नहीं या शीत ऋतु में पियाऊ लगावे। मनुष्यों ने काल शब्द के अर्थ अमावस्यादि

दिनों के भी लिये हैं। पात्र के अर्थ थे अधिकारी परन्तु मनुष्यों ने समय के प्रभाव से ऐसा पलटा दिया कि प्राचीन उत्तम बातें मिथ्या अर्थ के प्रयोग होने के कारण लाभदायक होने के स्थान में हानिकारक हो गई हैं।

यदि मनुष्य बुद्धिमान और मूर्ख को ब्राह्मण न विचारते तो ब्राह्मणों में से विद्या की न्यूनता कदापि न होती और यह जगद्गुरुओं की सन्तान ऐसी दुर्गति को कभी प्राप्त न होती। मूर्ख मनुष्य तो इसे पुण्य समझते हैं कि उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन खिलाया परन्तु पंडित और मूर्ख की पहिचान नहीं करते। वह मूर्ख विद्या के नाशक होकर पाप के भागी हो गये यदि वह मनुष्य विद्वान् और मूर्ख में भेद रखते विद्वानों का सत्कार और मूर्खों से उपेक्षा करते तो ब्राह्मण इस दुर्गति को प्राप्त होकर वैदिक धर्म के नाश का कारण न होते। प्रथम जिस देश में आत्मिक जीवन का हेतु विद्या ही बिकने लगे और निर्धन मनुष्य द्रव्य न होने के कारण विद्या से रहित हों तो वह देश क्यों न महामारी दुर्भिक्ष, और मुकद्दमे बाज़ी इत्यादि बुराइयों का केन्द्र हो जावे? फिर भला जहाँ वेद विद्या जिसको आज तक भारत के ऋषि मुनि सदैव बाँटते ही चले आये, जो मनुष्यों के भीतर ईश्वर विश्वास के उत्पन्न करनेवाली विद्या है, बिकने लग जावे तो विद्या के गौरव की महान हानि है और निर्धनों का विद्या से रहित होने से उस देश का नाश होना आवश्यकीय है। मनुष्य विद्या क्यों बेचते हैं? केवल इस कारण कि जनता इस बुद्धि से रहित है, कि कौन-सी इन्स्टीट्यूशन (संस्था) दान क अधिकारी है अथवा वह जो निर्धनों को बिना शुल्क शिक्षा देते हैं या जो शिक्षा बेचते हैं। मनुष्यों का यह आक्षेप कि अशुल्क शिक्षा (मुफ्त तालीम) देनेवाली संस्था के पास धन न होने से

उनकी स्थिति थोड़े ही दिनों की होती है और यही मनुष्यों की अयोग्यता को प्रकट करती है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु की स्थिति परमात्मा के अटल नियम पर है। हम दस करोड़ रुपये संग्रह करलें और वह रुपया बैंकों (कोठियों) में एकत्रित किया जावे। परन्तु परमात्मा को हमारे कर्मों के अनुकूल उसकी स्थिति स्वीकृत न हो तो कोठियों का दिवाला निकल जावे और वह संस्था समाप्त हो जावे। हम बहुत उच्च और उत्तम भवन, बनवा लें। भूकम्प आ जावे वह सब नष्ट हो जावें जिनको आज कल तीर्थ कहा जाता है, किसी समय में यह सब उच्च शिक्षा के स्थान थे। जिनके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी, महमूद ग़ज़नवी ने जब कोट काङ्गड़ा लूटा तो सैकड़ों ऊँट सोने चाँदी के पात्रों से भरकर ले गया, उस समय न तो रुपये ने रक्षा की और न किसी दूसरे पदार्थ ने। दूसरी बात यह है कि अशुल्क शिक्षा वाले स्थानों में जो सामान की न्यूनता है, जिससे वह सर्व साधारण को निर्बल दिखाई देता है। जिसके कारण जनता उसकी सहायता कम करती है वह भी तो जनता की अयोग्यता का फल है। क्योंकि यदि जनता बुद्धि से काम लेती और अशुल्क शिक्षा देनेवाली संस्थाओं को इसलिये कि वह शिक्षा जिसे आत्मिक सौजन्य समझ नहीं बेचते किन्तु मुफ्त तालीम करते हैं और उत्तम परिगणना करते हैं तथा उनकी सहायता को अपना कर्तव्य विचार करते अशुल्क शिक्षा देनेवाली संस्थायें दृढ़ हो जातीं, जिससे सर्व साधारण का झुकाव भी उसी ओर हो जाता और सर्व साधारणों के झुकाव से उनके पास आवश्यकीय सामग्री का पहुँच जाना आवश्यक था, जिससे प्रत्येक मनुष्य का ख़याल हो सकता कि वह देश में अशुल्क शिक्षा करने का पुरुषार्थ करे, जिससे देश को आत्मिक भक्ष प्राप्त होकर आत्मिक जीवन सुदृढ़ हो, जिससे

प्रत्येक प्रकार की उन्नति दिखाई देने लगे क्या यह शोक जनक दृश्य नहीं कि वैदिक धर्मानुयायी भी जिनके पूर्वज सदैव से अशुल्क शिक्षा देते रहे, उसके विरुद्ध शिक्षा देने का काम कर रहे हैं। क्या कोई सिद्ध कर सकता है कि किसी समय में भी भारतवर्ष के ऋषियों ने शिक्षा का द्वार निर्धनों के लिये बन्द किया हो, जहाँ तक पता लगाओगे ऐसा एक भी उदाहरण न मिलेगा, यदि उस समय में शिक्षा बेचने वाले भव्य दृष्टि से देखे जाते तो महात्मा मनुष्यों शुल्क देकर पढ़नेवालों और वेतन लेकर पढ़ानेवालों को बुरा बतलाते। जब से भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य आया है, तबसे तप का अभ्यास न होने से वेद पढ़कर जो काम करना चाहिये उसके योग्य नहीं होते। बस जिस देश का दुर्भाग्य आता है, उसमें नाज का अकाल पड़ता है। जिससे बहुधा मनुष्यों को दुःख होता है परन्तु नाज के बिना कई दिन तक मनुष्य जी सकता है। जिस देश का उससे भी अधिक दुर्भाग्य आया हो उस देश में पानी का अकाल होता है। जिस में नाज के दुर्भिक्ष के सादृश्य अधिक कष्ट होता है; क्योंकि पानी के बिना एक दिन भी कठिन हो जाता है। जिस देश का अधिक दुर्भाग्य वहाँ के निवासियों को वायु से रहित किया जाता है जिससे पल-पल का जीवन भी दुःसाध्य हो जाता है; परन्तु इससे केवल शरीर को ही हानि पहुँचती है आत्मा को कोई हानि नहीं होती; परन्तु जिस देश का अधिकतम दुर्भाग्य होता है, उस देश में विद्या का दुर्भिक्ष होता है उस देश के दुर्भाग्य के विषय में कोई शब्द नहीं कह सकते; क्योंकि इससे मनुष्य जीवन जिसके ५ मिनट के बराबर भी चक्रवर्ती राज्य नहीं हो सकता-निष्फल जाता है पुरुष और पशु में कोई भेद नहीं रहता यदि प्रभु ने पशु न उत्पन्न किये होते तो उससे कोई विशेष हानि न थी; क्योंकि

उसको सामग्री ही इस प्रकार की मिलती है परन्तु विद्या से शून्य, पशुओं से भी निकृष्ट हैं। इसी विचार को लेते हुये ऋषि दयानन्द ने तेरह घंटे की समाधि जिसके तुल्य संसार को कोई राज्य और धन भी सुख देनेवाला नहीं हो सकता, छोड़ दी, जिससे कि भारत-वर्ष के मार्ग में जो ब्रह्म विद्या के न जानने से रुकावटें उत्पन्न हो रही हैं, उनको दूर करें। सब से पहिली रुकावट जिसने वैदिक शिक्षा के प्रेमियों को हताश कर रक्खा था, वेदों की शिक्षा का उद्धार था, जिसके कारण ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरे वर्णों को वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं दिया जाता था। आज कल हजारों क्षत्रिय और वैश्य उपनयन संस्कार से रहित पाये जाते हैं, जब यज्ञोपवीत न हो तो वेदारम्भ संस्कार कैसा जिसका वेदारम्भ संस्कार नहीं हुआ, वेद वह किस प्रकार पढ़ सकता है ? ब्राह्मण भी जन्म से माने जाते थे गुण कर्म का ध्यान तनिक भी न था। दूसरी रुकावट बाल विवाह था, जिसने ब्रह्मचर्याश्रम के गले पर छुरी फेर रक्खी थी, जिस कुटुम्ब में इस प्रकार का अधिक पाप हो अर्थात् जिसके लड़के बहुत छोटी अवस्था में ब्याहे जाते हों, वही कुटुम्ब सब से उत्तम समझा जाता था लड़के का बड़ी अवस्था तक कुंवारा रहना कुटुम्ब में दोष होने का प्रमाण था, भला ऐसी दशा में कौन वेद पढ़ता और पढ़ाता, चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। जिसको ऋषि दयानन्द ने वेद रूपी सूर्य के आगे जो भिन्न २ प्रकार के बादल आगये थे उनको दूर किया। एक ओर तो वेद मन्त्रों के प्रमाण और बुद्धि-पूर्वक युक्तियों से यह सिद्ध किया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और किसी विशेष सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं हो सकती, नहीं वर्ण उत्पत्ति के विचार से वेदों का अधिकारी हो सकता है; किन्तु चारों वर्णों को वेद के पढ़ने का अधिकार है। दूसरी ओर से

यह सिद्ध किया कि ब्राह्मणादि वर्ण, गुण, कर्म, स्वभाव से होते हैं, जन्म के कारण नहीं। तीसरी ओर बाल विवाह का खण्डन, ब्रह्मचर्य्याश्रम की प्रतिष्ठा तथा आवश्यकता को बड़ी प्रबलता से बतलाया। वेदों की शिक्षा से संसार का उपकार हो और लोग मूर्खता के गढ़े से निकल कर ब्रह्म विद्या से लाभ तथा ब्रह्मानन्द को प्राप्त करें, परन्तु जिस देश का दुर्भाग्य होता है, उसके लिये उत्तम से उत्तम वस्तुयें उपकारी नहीं होतीं। उन के लिये उत्तम से उत्तम उपदेश लाभदायक नहीं हो सकते। कैसे भी योग्य आचार्य्य मिलें, उनका कल्याण दुर्लभ है, जैसा कि एक कवि कहते हैं॥

तिही दस्ताने क़िस्मत राचि सूदज़ रहवरे कामिल।
कि खिज्र अज़ आवे हैवां तिश्ना मे आरद सिकन्दर रा॥

जिसके भाग्य के हाथ रिक्त (खाली) हैं अर्थात् जिसका भोग बुरा है, उसका योग्य मार्गोपदेशक गुरु से क्या लाभ हो हो सकता है जैसा कि सिकन्दर को ख्वाजा खिजर अमृत से प्यासा ही लाया है। तात्पर्य यह कि जो आचार्य के आचरणों का अनुकरण करता है उसी को आचार्य के उपदेश से लाभ हो सकता है ; परन्तु जो उसके अनुकूल न करे, उस को उच्च से उच्च उपदेश से भी कुछ लाभ नहीं पहुँच सकता। ऋषि ने बड़ी प्रबलता से भारत निवासियों को वेदों की शिक्षा की ओर आकर्षित किया वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म बतलाया जो स्वयं वेदों को पढ़ कर और बाल ब्रह्मचारी बनकर इस बात को सिद्ध किया कि इस समय में भी वेद पढ़ सकते हैं सारांश यह कि जितनी रुकावटें वेदों के प्रचार के मार्ग में थीं, अपनी जिह्वा और लेखनी के बल से उनको दूर किया अपने

सत्य तप और बल के व्यवहार से प्रत्येक के चित्त में वेदों के गौरव को बड़े २ शास्त्रार्थों द्वारा अर्थात् सर्व साधारण में वेदों की प्रतिष्ठा स्थापन कर दी ; परन्तु शोक ! उन सम्पूर्ण परिश्रमों से भी भारत का दुर्भाग्य दूर नहीं हुआ, जिन मनुष्य के हाथ में ऋषि ने वेदों के प्रचार का काम दिया था, जिन मनुष्यों से यह आशा थी कि यह मनुष्य वेदों की शिक्षा को सार्वजनिक करने के लिये पुरुषार्थ करेंगे, जिनको ऋषि ने दीन अनाथों की शिक्षा देने की घोषणा वेद मण्डल स्थापन करने के लिये वसीयत करते हुए की थी, वही मनुष्य वेदों की शिक्षा के मार्ग में रुकावट डालने वाले हुए, उनके निर्बल मस्तिष्क में आगया कि सर्वांश में संस्कृत शिक्षा से भिक्षा मांगने वाले उत्पन्न होंगे। हा शोक ! राम और कृष्ण की सन्तानों के यह विचार। क्या राम और कृष्ण ने अमेरिका और जापान में शिक्षा पाई थी क्या वह इङ्गलिस्तान में जाकर आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में पढ़े थे, क्या वह भीख मांगते थे ? क्या वह निरे संस्कृत के शिक्षा पाये हुये न थे—भीष्म और द्रोण की सन्तानों के यह विचार क्या हताश करने वाले तथा शोकजनक नहीं ? क्या अन्य मनुष्य युद्ध विद्या और राजनीति योरुप में जाकर सीखते थे ? गौतम और कणाद की सन्तानों के लिये क्या यह विचार प्रशंसा के योग्य हो सकते हैं। कदापि नहीं परन्तु मन्दभाग्य को क्या किया जावे जिन्हें राम और कृष्ण के विचारों का भाग नहीं मिला ; किन्तु "मिल" और "स्पेन्सर" के विचारों का अनुकरण किया है, जिन्हें भीष्म और द्रोण के भावों का अंश नहीं मिला किन्तु "बोनापार्ट" के जीवन चरित्र और इङ्गलैंड का इतिहास मस्तिष्क में घर कर गया है। जिन्हें गौतम, कणाद, कपिल और व्यास के प्रतिष्ठा के योग्य विचार प्राप्त ही नहीं हुए ; किन्तु

"हक्सली" और 'टिन्डल' के भावों ने मस्तिष्क में डेरा जमा लिया है। इस प्रकार के मनुष्यों से वेदों के प्रचार की आशा करनी "बन्ध्या के पुत्र का विवाह करना है।" अस्तु वही हुआ कि जो नियमानुकूल होना आवश्यक था अर्थात वेदों की शिक्षा के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकावट उत्पन्न हो गई। जिनके माता पिता धनवान नहीं, जिनके पास शुल्क देने की शक्ति नहीं, जिनके पास पर्याप्त सामग्री नहीं, जिससे एक मुट्ठी रुपये दे सकते हों, उनको बेदों के पढ़ने का अधिकार नहीं। यह निर्विवाद विषय है कि भारतवर्ष संसार के सम्पूर्ण देशों से निर्धन है इसमें प्रति सैकड़ा एक भी धनवान नहीं। यद्यपि पहिली रुकावटों से करोड़ों मनुष्य वेदों के पढ़ने के अधिकारी थे। क्योंकि भारतवर्ष में जन्म के ब्राह्मणों की संख्या दो या तीन करोड़ से कम नहीं, यदि अन्वेषण किया जावे तो सात या आठ प्रति सैकड़ा ब्राह्मण से कम इस देश में नहीं मिलेंगे। अर्थात् ऋषि दयानन्द से पूर्व तो आठ प्रति सैकड़ा को वेदों के पढ़ने का अधिकार था तथापि ऋषि की दृष्टि में वेदों के प्रचार में बहुत बड़ी रुकावट थी, जिसके दूर करने के लिये उनसे ईंट पत्थर तक खाये, अन्त को विष भी खाया; परन्तु ऋषि इस रुकावट के दूर करने में लगातार प्रयत्न करते रहे, लाखों कष्टों और सहस्रों से घबड़ाकर इस विचार का त्यागन नहीं किया—प्राण तक दिये; परन्तु अपने उद्देश्य की ओर चलना बन्द नहीं किया; परन्तु हतभाग्य से 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' ऋषि ने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की अर्थात् जो रुकावटें उस समय थीं, वह दूर हो गईं, जो लोग कहते थे कि शूद्र के कान में वेद के शब्द यदि चले जावें तो उसके कान में सीशा भर देना चाहिये। वही लोग आजकल सामान्य उत्सवों में जहाँ चारों वर्णों के मनुष्य होते

हुए बल पूर्वक वेदों के मंत्र पढ़ने में आते हैं; परन्तु यही रुकावट जिसने प्रति सैकड़ा एक को भी वेदों के मंत्र पढ़ने का अधिकार नहीं यह कितना भयानक दृश्य है? क्या इसका दूर करना हमारा कर्त्तव्य नहीं, क्या ऋषि दयानन्द की आत्मा से उपदेश लेनेवाले क्या ऋषि दयानन्द के भावों को अपना मार्गोपदेशक स्वीकार करनेवाले मनुष्य इस रुकावट को शान्ति भाव से स्वीकार कर सकते हैं। कदापि नहीं। परन्तु बहुत से मनुष्य कहते हैं कि यह बन्धन तो कल्पना मात्र है, जब पचास लाख रुपया गुरुकुल में हो जावेगा; परन्तु यह विचार कैसा पोच और किस प्रकार की बुद्धि तथा मस्तिष्क से निकला हुआ है कि जिसको सुनकर समझदार मनुष्य के हृदय में तो वैदिक धर्म की अवनति का चित्र खिंच जाता है और ऐसे भोंगे [मूर्ख] मनुष्यों की बातों पर जो इस प्रकार के पोच भावों और बाल्य मोदनवत् मस्त हैं, हँसी आती है।

शङ्कराचार्य और स्वामी दयानन्द

आज-कल बहुत से मूर्ख आर्यसमाजी जो महात्मा शङ्कर की फिलासफ़ी, वैराग्य और धार्मिक प्रेम से अनभिज्ञ हैं। जिनके हृदय में न तो वेदों की श्रद्धा है और नाहीं विचारशक्ति है—प्राय: महात्मा शङ्कराचार्य के विषय में ऐसे बुरे शब्द प्रयोग करते हैं, कि जिनसे इनकी मूर्खता और क्षुद्रता का प्रकाश होता है और समझदारों को भी आर्यसमाज पर कलङ्क लगाने का अवसर मिलता है। इसी वास्ते आवश्यकता मालूम होती है कि महर्षि दयानन्द की सम्मति स्वामी शङ्कराचार्य के विषय में प्रकाशित की जाय। जिससे लोगों को मालूम हो जावे कि स्वामी शङ्कराचार्य की प्रतिष्ठा स्वामी दयानन्द के हृदय में किस प्रकार थी और जो ये मूर्ख आर्यसमाजी उन पर कलङ्क लगाते हैं, वह किस दृष्टि से देखने योग्य हैं। बहुत से लोगों का यह विचार है कि स्वामी शङ्कराचार्यजी ने कर्म करने का सर्वथा निषेध किया है. इस वास्ते वह नास्तिक कहलाने के योग्य हैं; परन्तु ऐसे लोगों को स्वामी शङ्कराचार्य की बालबोध पुस्तक तक का भी ज्ञान नहीं और न उन्होंने शङ्करफिलासफ़ी को देखा है, अन्यथा कोई पुरुष भी स्वामी शङ्कराचार्य पर यह कलङ्क नहीं लगा सकता। शङ्कराचार्य अपनी पुस्तक बालबोध के 'साधन प्रकरण' में लिखते हैं कि—

तत्र पूर्वकाण्डोदित निष्कामकर्मानुष्ठानादन्तःकरणशुद्धिर्यतो वैदिककर्मानुष्ठानात् पुण्योपचये पापक्षयात् रजस्तमो निवृत्तिद्वारारागद्वेषनिवारणम्।

अर्थ—अब मुक्ति की इच्छा रखनेवाले को पुरुषार्थ-सिद्धि अर्थात् उद्देश्य पर पहुँचने के वास्ते जो अनादि अविद्या से रुकावटें पैदा होती हैं, उनके दूर करने के वास्ते साधन दिखलाते हैं। सबसे पहले कर्मकाण्ड से बतलाये हुए निष्काम के अनुष्ठान से हृदय की शुद्धि प्राप्त होती है फिर वैदिक कर्म करने से पुण्क का उदय और पाप का नाश होता है। फिर रजोगुण और तमोगुण की निर्वृत्ति द्वारा रागद्वेष की निवृत्ति होती है। जैसे वृक्ष का कारण बीज है, ऐसे ही रजोगुण और तमोगुण पाप के बढ़ने के कारण है। जो महात्मा इस प्रकार अन्तःकरण शुद्धि के लिये निष्काम कर्म का उपदेश करता है, उसको कर्मकाण्ड का विरोधी बतलानेवाला अपनी मूर्खता प्रकट करता है। बहुत से लोगों को मालूम तक नहीं, जो शङ्कराचार्य ने वसीयत के तौर पर लिखा है। 'वेदोनित्यमधीयतां तदुदितं कर्मम्वनुष्ठीयताम्' अर्थात् वेद नित्य पढ़ो और उसके बतलाये हुए कर्मों को करो, शङ्कराचार्य का उपदेश हमें जहाँ तक मिलता है, सब जगह निष्काम कर्म करने का उपदेश पाया जाता है, जहाँ आत्म-बोध में शङ्कराचार्य ने वेदान्त का उपदेश किया है, जहाँ आत्म-बोध का अधिकारी, कि जिसे वेदान्त का उपदेश किया जावे उसे स्वीकार किया है। जिसने कर्मकाण्ड से पाप को अर्थात् मन के मैल को दूर कर दिया हो और जिसने चित्त की वृत्तियों को शान्त कर दिया हो और जो रागादि से रहित हो। देखो आत्मबोध का पहला श्लोक—

तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम्।
मुमुक्षूणां हितार्थाय आत्मबोधो विधीयते॥

अर्थात् जिन्होंने तपों से पापों को नष्ट कर दिया, जो शान्त हैं, रागद्वेपादि से शून्य हैं, मोक्ष की इच्छा रखनेवाले है—उन्हीं

के कल्याण के लिये यह आत्मबोध लिखा जाता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि शङ्कराचार्य कर्मकाण्ड के विरोधी नहीं थे। जो आर्य समाजी अपनी मूर्खता से स्वामी शङ्कराचार्य को कर्म-काण्ड का विरोधी बतलाता है वह भूल पर है। एक दूसरा दोष यह भी अनपढ़ आर्यों की ओर से शङ्कराचार्य के विरुद्ध लगाया जाता है कि उन्होंने बृहदारण्यक उपनिषद् में से एक श्रुति निकाल दी है। यह दोष देहली में जो आर्य समाज का वार्षि-कोत्सव हुआ था, उसमें शङ्कर फिलासफी से अनभिज्ञ किसी आर्य ने लगाया था; परन्तु यह दोष भी भूल से ही लगाया गया है—वह श्रुति यह है:—

यच आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं आत्मनोन्तरो यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

यह श्रुति स्वा० दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के १९७वें पृष्ठ पर उद्धृत की है और इसपर पता शतपथ ब्राह्मण का लिखा है। १४१वें काण्ड के छठे अध्याय के ५वें ब्राह्मण ३०वीं श्रुति में विद्यमान हैं—स्वामी शङ्कराचार्य ने शतपथ का भाष्य ही नहीं किया, शतपथ के १४वें काण्ड बृहदारण्यक में जिस पर शङ्करा-चार्य ने भाष्य किया है—यद्यपि और सब श्रुतियाँ जो इस स्थल पर हैं बृहदारण्यक में मौजूद हैं; परन्तु ये श्रुति नहीं—अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि शतपथ की श्रुति बृहदारण्यक बनानेवाले ने नहीं रक्खी या शङ्कराचार्य ने भाष्य करते समय निकाल दी। अब इस बात की सिद्धि उन लोगों के ऊपर है, जो महात्मा शङ्कराचार्य पर दोष लगाते हैं कि वह सिद्ध करें कि शङ्कराचार्य के पहले यह श्रुति बृहदारण्यक में थी; क्योंकि इस समय जिस कदर मूल बृहदारण्यक छपी हुई मिलती हैं—उनमें ये पाठ नहीं

दूसरे यह बात भी सिद्ध करना आवश्यक है कि शतपथ के १४ काण्ड और बृहदारण्यक में कुछ भी अन्तर नहीं। अगर इस श्रुति के अतिरिक्त और भी भेद है तो उनका मत बिल्कुल गिर जाता है—जैसा कि हमारा ख़याल है और जिसे हम किसी दूसरी पुस्तक में सिद्ध करेंगे कि उन दोनों में भेद नहीं तो उस दशा में यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ये श्रुति निकाली गई; परन्तु स्वामी शङ्कराचार्य पर दोष उस समय भी सिद्ध नहीं हो सकता—सम्भव है कि उपनिषद् अलहदा करनेवाले ने निकाली हो अथवा शङ्कर से पूर्व या पश्चात् किसी ने निकाली हो—हमारे मित्र कहेंगे कि यतः यह श्रुति स्पष्ट नवीन वेदान्त अर्थात् शङ्कराचार्य के सिद्धान्त जीव ब्रह्म की एकता के विरुद्ध है। इसलिये अवश्य शङ्कराचार्य ने ही निकाली है; क्योंकि इसकी विद्यमानता में अद्वैत सिद्ध नहीं हो सकता था ऐसा कहने वाले संस्कृत भाषा के नियम और शङ्कराचार्य की महान् योग्यता से नितान्त अनभिज्ञ हैं; क्योंकि संस्कृत भाषा में व्यवस्था करना कुछ भी मुश्किल मालूम नहीं होता—फिर शङ्कराचार्य जैसे तार्किक विद्वान् को व्यवस्था न करके निकालने की आवश्यकता होती—कदापि नहीं प्रत्युत इस श्रुति को वेदान्त के शङ्कर भाष्य के टीकाकार वाचस्पति मिश्र ने अपनी भासती की व्यवस्था करके दिखला दिया है, यहाँ पर देखनेवालों को ये श्रुति भी अद्वैतवाद के साथ मिलती हुई मालूम होती है। शङ्कराचार्य पर आक्षेप करने वालों को इतना भी मालूम नहीं कि उपनिषदों में इस प्रकार की बहुत सी श्रुतियाँ विद्यमान् हैं कि जिनसे द्वैतवाद सिद्ध होता है और इस श्रुति से जितना द्वैतवाद निकल सकता है, उनमें से इसमें अधिक मालूम होता है; परन्तु शंकराचार्य ने किसी श्रुति को भी नहीं निकाला केवल अर्थों में व्यवस्था

करदी है अर्थात् अपने अभिप्राय के अनुकुल अर्थ करके दिखला दिया है—हमें आर्यसमाजों की इस भूल को देख कर अत्यन्त शोक होता है कि वह अपनी मूर्खता से व्यर्थ शंकर जैसे निष्काम वैदिक धर्म के प्रचारक और निस्वार्थ सच्चरित्र विद्वान् पर बजाय इसके कि उसके परिश्रम का धन्यवाद करते कि जिससे आप बौद्ध धर्म के स्थान में वैदिक धर्म के अनुयायी दृष्टि पड़ते हैं। यदि उस समय शंकराचार्य बौद्ध, जैन, पाशुपत और वाममार्ग जैसे मतों का खण्डन करके धर्म का प्रचार न करते तो आज वैदिक धर्म का नाम लेनेवाला कठिनता से दृष्टि पड़ता। स्वा० दयानन्दजी ने तो शंकर को पूर्ण प्रतिष्ठा से स्मरण किया है। परन्तु अनपढ़ और मूर्ख आर्यसमाजी उसको मक्कार बताते हैं और गालियाँ देते हैं क्या ऐसे कृतघ्नी लोग स्वा० दयानंद को गाली नहीं देते—हम यहाँ वह सम्मति उद्धृत करते हैं जो स्वा० दयानन्द ने शंकर के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में लिखी है। देखो सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास का २८७वाँ पृष्ठ।

बाईस सौ वर्ष हुए कि शङ्कराचार्य नामक द्रविड़ देशोत्पन्न एक ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि ओहो! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई। इसको किसी प्रकार हटाना चाहिये। शङ्कराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे; परन्तु ये जैन मत की पुस्तकों को भी पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहाँ उस समय सुधन्वा राजा जो जैनियों के ग्रंथ और संस्कृत भी पढ़ा था, वहाँ जाकर

वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो और जैन मत को मानते हो, इसलिए मैं कहता हूँ कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ करा अपनी इस प्रतिज्ञा पर कि जो हारे वह जीतने-वाले का मत स्वीकार करे और आप भी जीतनेवाले का मत स्वीकार कीजिये—यद्यपि सुधन्वा राजा जैन मत में था तो भी संस्कृत के ग्रंथ पढ़ने से उसकी बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था, इसलिए उसके मन में अत्यन्त पशुता नहीं समाई थी क्योंकि जो विद्वान् होता है, वह सत्य असत्य की परीक्षा करके सत्य को ग्रहण कर असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान उपदेशक नहीं मिला था, तब तक सन्देह में थे कि इनमें से कौन-सा सत्य है और कौन-सा असत्य। जब शङ्कराचार्य की ये बात सुनी तो बड़ी प्रसन्नता से बोले कि हम शास्त्रार्थ कराकर सत्य और असत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। फिर जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई, उसमें शङ्कराचार्य का वेद मत और जैनियों का वेद विरुद्ध मत था। अर्थात् शङ्कराचार्य का मत वेद धर्म का प्रतिपादन और जैनमत का खण्डन करना और जैनमत की प्रतिष्ठा और जैनियों का मण्डन और वेद धर्म का खण्डन था। शास्त्रार्थ कई दिन तक हुआ। जैनियों का मत यह था कि सृष्टि का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं यह जगत और जीव अनादि हैं। इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता, इसके विरुद्ध शङ्कराचार्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा जगत् का कर्ता है। यह जगत् और जीव मिथ्या है; क्योंकि इस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया वही धारण और प्रलय करता है—जीव और प्रपञ्च स्वप्न के समान हैं। परमेश्वर आप ही सब जगत् रूप होकर लीला कर रहा है।

बहुत दिन शास्त्रार्थ होता रहा ; परन्तु अन्त को युक्ति और प्रमाणों से जैनियों का मत गिर गया और शङ्कराचार्य का यह मत सिद्ध हो गया। तब उन जैनियों के पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को ग्रहण किया और जैनमत को छोड़ दिया। फिर बहुत हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने दूसरे अपने मित्र और सम्बन्धी राजाओं को लिखकर शङ्कराचार्य कराया परन्तु जैनियों के हार जाने से सब हार गये। तत्पश्चात् शङ्कराचार्य के कुल आर्यावर्त्त में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वा आदि राजाओं ने कर दिया और उनकी रक्षा के लिये नौकर भी साथ कर दिये। इसी समय से सबके यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन-पाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर समस्त अर्यावर्त्त में घूम-घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। इत्यादि

इसके आगे स्वा० दयानन्द सरस्वती शङ्कर के मत के सम्बन्ध में लिखते हैं—अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य का निज मत था, वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खण्डन के वास्ते उस मत को स्वीकार दिया तो कुछ अच्छा है। हमारे पाठक स्वा० दयानन्द ने शङ्कराचार्य को वेदों का प्रचारक, आस्तिक धर्म का प्रचारक, सब शास्त्रों का पढ़ा हुआ, बड़ा विद्वान् उपदेशक स्वीकार किया है ; किन्तु मूर्ख आर्यसमाजी उसको मक्कार, और उपनिषदों में श्रुति निकाल देनेवाला बतलाते हैं। हम हैरान हैं कि हम स्वा० दयानन्द की सम्मति को मानें या इन मूर्ख और प्रसिद्धिप्रेमी आर्यों की सम्मति को सत्य समझें। यह स्वा० दयानन्द परम विद्वान् और वैदिक धर्म के प्रचारक थे और वे शङ्कर फिलासफी को जानने के कारण उनके गुणों से भी परिचित थे—इसलिये उनकी सम्मति को ग्रहण करना ठीक है। वर्त्तमान

दशा में आर्यसमाज बहुत से सिद्धान्तों में स्वा० दयानन्द के सिद्धान्तों से बाहर निकलकर सम्प्रदायों की आकृति में आ गया है, जिसकी चिकित्सा इस समय होना सुगम है; किन्तु पश्चात् बहुत ही कठिन होगा। असल बात यह है कि शङ्कराचार्य की परिभाषाओं से लोग अनभिज्ञ हैं अन्यथा स्वा० दयानन्द और शङ्कराचार्य के सिद्धान्तों में बहुत ही कम अन्तर है। यथा शङ्कर जगत् को मिथ्या कहते हैं, जो जैनियों के जगत् को मिथ्या बतलाने के मुक़ाबिले है—इसका अर्थ यह है कि जैनी जगत् को अनादि मानते हैं, शङ्कराचार्य जगत् को प्रकृति का विकार मानते हैं—जिसे आर्यसमाज प्रकृति कहता है, उसे शङ्करमाया कहते हैं मानों परमेश्वर ने प्रकृति से जगत् को बनाया है—यह स्वा० शङ्कराचार्य का सिद्धान्त है—यही स्वा० दयानन्द का सिद्धान्त है कि परमेश्वर ने जगत् को प्रकृति से बनाया है। रहा जीव ब्रह्म की एकता, इससे शङ्कराचार्य का क्या अभिप्राय है? इसको हम किसी दूसरी जगह पर दिखलायेंगे। यहाँ पर उसके दिखाने का अवसर नहीं; क्योंकि ये विषय बहुविवादास्पद है और ट्रैक्ट की जगह कम है। बाक़ी रहा यह कि स्वामी दयानन्द तीन काण्ड वेद के मानते हैं, ऐसा ही शङ्कराचार्य का मत है। स्वामी दयानन्द ज्ञान से मुक्ति मानते हैं, ऐसे ही शङ्कराचार्य स्वामी दयानन्द कर्म अन्तःकरण की शुद्धि स्वीकार करते हैं। ऐसे ही शङ्कराचार्य के दिल में स्वामी दयानन्द कहते हैं वेद का पढ़ना आर्यों का परमधर्म है, वैसे ही शङ्कर कहते हैं कि "वेदो नित्यमधीयताम्। इत्यादि" इसमें सन्देह नहीं कि इस समय जो शङ्कराचार्य के चेले नवीन वेदान्ती हैं, उन्होंने शङ्कराचार्य के मत को ऐसा बिगाड़ रक्खा है कि जो लोग शङ्कर की पुस्तकें न पढ़ कर उन लोगों की कहावतें सुनते हैं। उनके दिल में बहुत ही

दोष शङ्कर फ़िलासफ़ी में मालूम होते हैं; परन्तु आर्यसमाजियों के चाल व्यवहार को देखकर लोग स्वामीजी पर दोष नहीं लगाते। अभी तो स्वामीजी को मरे केवल सत्रह वर्ष बीते हैं। जिसमें आर्यसमाज स्वामीजी के सिद्धान्त से बहुत दूर निकल गया है, आगे को न मालूम क्या होगा? जब शङ्कर की तरह बाईस सौ वर्ष व्यतीत हो जायँगे तब देखना कि आर्यसमाज की क्या दशा होगी? इसलिये आर्यपुरुषों का काम है कि अभी से इस रोग को दूर करने का प्रयत्न करें। अन्यथा भारी हानि उठानी पड़ेगी। जिस प्रकार बालब्रह्मचारी परोपकारी शङ्कराचार्य को लोग उलटा समझ रहे हैं, ऐसे ही बालब्रह्मचारी परोपकारी स्वामी दयानन्द के परिश्रम का परिणाम निकलेगा।

अक़ल के अन्धे गांठ के पूरे

जो लोग संसार में ठगी का पेशा करते हैं, वह सुबह ही उठकर किसी देवता से प्रार्थना किया करते हैं, कि हे महादेव भोले ! अक़ल का अन्धा गांठ का पूरा भेज। इससे पहिले कि संसार में अक़ल का अन्धा और गांठ का पूरा आदमी मालूम करें, वह अपने देवता को ही भोला बना देते हैं—भोले के अर्थ अज्ञ वा अक़ल के अन्धे के हैं—दूसरी ओर जो लोग व्यभिचारिणी बुद्धि रखते हैं, वह अपने देवताओं को भी व्यभिचारी बना देते हैं। यदि किसी को इस बात का पता लगाना स्वीकार हो, कि कौन अक़ल के अन्धे और गांठ के पूरे हैं तो वह मूर्तिपूजक वा हिन्दू धर्म सभा के लोगों को देख लें। उन्हें अच्छी तरह से मालूम हो जायगा कि उनमे बढ़कर अक़ल का अन्धा और गांठ का पूरा मिलना मुश्किल है। आप कदाचित् प्रश्न करें कि तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि ये लोग अक़ल के अन्धे और गांठ के पूरे हैं। इसका उत्तर यह है कि इन लोगों को मित्र, शत्रु का तनिक भी ज्ञान नहीं प्रत्युत अपनी जिह्वा से अपने कार्यों से अपने-अपने देवताओं की निन्दा करते हुए शर्म नहीं खाते ; बल्कि उस पर अभिमान करते हैं कि कृष्ण के उपासक गोपालसहस्रनाम का पाठ करते हुए कृष्ण को चोर और जारों का सरदार बतलाते हैं—जैसा कि लिखा है।

चोरजारशिखामणि—

गोपाल जो कृष्ण हैं वह स्त्रियों का यार है और चोरों और जारों का सरदार है—राधा कृष्ण को मन्दिरों में नचा-नचाकर

महात्मा कृष्ण पर व्यभिचार का दोष लगाते हुए भी इसको धर्म ही समझ रहे हैं—यदि उनसे पूछें कि राधा कृष्ण की स्त्री तो थी ही नहीं और नाहीं कृष्ण से राधा का विवाह होने का कोई प्रमाण ही मिलता है। क्या अकेली राधा को ही लेते हैं, नहीं-नहीं ललिता, विशाखा इत्यादि। असंख्य नाम पुकारे जाते हैं। कृष्ण को माखन चोर अपनी जबानों से कहते हैं। चीरहरणलीला तो प्रसिद्ध है—निदान वह कौन-सा दोष है, जो महात्मा कृष्ण जैसे योगिराज पर नहीं लगाते। विष्णु को जालन्धर दैत्य की स्त्री वृन्दा से व्यभिचार करके उसके पातिव्रतधर्म का नाश करनेवाला कहते हैं और उसके श्राप देने से विष्णु शालिग्राम का पत्थर हो जाना और विष्णु के श्राप से वृन्दा का तुलसी हो जाना जिसका वर्णन कार्त्तिकमाहात्म्य और पद्मपुराण में सविस्तार लिखा हुआ है, जिस कथा के कारण तुलसी शालिग्राम की पूजा और विवाह का पौराणिकों में प्रचार है। आज तक तो हर एक पौराणिक इस कथा को सच मानता था; परन्तु बाबू केदारनाथ बी० ए० वकील मंत्री पौराणिक हिन्दू सभा आगरा ने आर्यसमाज के तीस प्रश्नों के उत्तर में जो उन्होंने ईश्वरानन्दगिरि से दिलवाये हैं, इस कथा को मिथ्या माना है। क्योंकि उन्होंने लिखा है कि विष्णु ने जालन्धर की स्त्री वृन्दा से व्यभिचार नहीं किया—जब विष्णु ने व्यभिचार किया तो उसको वृन्दा ने श्राप भी नहीं दिया होगा। क्योंकि श्राप तो किसी बुरे कर्म के कारण ही मिला करता है। जब श्राप नहीं दिया तो विष्णु शालिग्राम पत्थर किस तरह होंगे और वृन्दा को भी शाप नहीं हुआ होगा तो वह तुलसी किस प्रकार बनी होगी। यदि हम लाला केदारनाथ के लेख के अनुकूल वृन्दा का पातिव्रतधर्म नाश न करना प्रामाणिक मान लें तो तुलसी शालिग्राम की पूजा की जड़ ही उखड़

जाती है। क्योंकि इस पूजा की जड़ ही इस व्यभिचार पर रक्खी गई है—और बहुत से अकल के अंधे कहने लगते हैं कि पुराण वालों ने अलङ्कार से यह दिखाया है कि यदि विष्णु भी व्यभिचारी हो तो पत्थर हो जायगा—ऐसे लोगों को सोचना चाहिए कि यदि उनकी बात को सच मान लिया जावे तो प्रथम तो तुलसी, शालिग्राम की पूजा और विवाह जिसको हिन्दू पौराणिक लोग कर रहे हैं, सर्वथा निर्मूल हो जावेगा। दूसरे विष्णु को तो व्यभिचार के कारण शाप मिला ; परन्तु वृन्दा ने क्या अपराध किया था, जो उसको शाप मिलना बतलाया जाता है। इसी तरह मार्कण्डेय पुराण के द्वारा जो हयग्रीव अर्थात घोड़े के शिरवाले अवतार की कथा प्रचलित हुई है। उसमें विष्णु का शिर कटना लिखा है, जो पौराणिक चाहे हयग्रीव की कथा निकालकर देख लें ; परन्तु लाला केदारनाथ ने इसको अशुद्ध बतलाकर मार्कण्डेय पुराण और हयग्रीव अवतार का भी खण्डन कर दिया। इस तरह पर पौराणिक लोगों ने जो निन्दा अपने देवताओं की पुराणों में की है, अक़ल के अन्धे और गांठ के पूरे लोग रात-दिन सुनते हैं ; परन्तु सिवाय सत् बचन महाराज के एक शब्द भी नहीं कहते। किस तरह उनकी अक़ल की आँखें अन्धी हो रही हैं और गांठ का पूरा समझकर टकेपंथियों ने भेड़ियाचाल में डाल रक्खा है। उनमें से जो लोग निस्वार्थ हैं, वे शास्त्रज्ञान और बुद्धि से शून्य हैं—और जो लोग शिक्षित एवं बुद्धिमान हैं, उन्हें स्वार्थ और प्रतिष्ठा के विचार ने दबा रक्खा है। यदि कोई नि:स्वार्थ आदमी पढ़ा लिखा भी है और उनकी चालों से भी विज्ञ हैं तो वह बिरादरी के भय के मारे चूँ नहीं कर सकता ; क्योंकि अक़ल के अन्धों और गाँठ के पूरों की बिरादरी स्वार्थ परत: के हाथ कठपुतली का काम दे रही है। जब तक इन कठ-

पुतलियों में विद्या की जान न पड़ जावे तब तक इनका नाम अक़ल के अन्धे और गाँठ के पूरे बहुत ठीक है। हम यहाँ एक कहानी सुनाते हैं।

एक बार किसी राजा के नवयुवक लड़के के विचार में हुआ कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती, इसलिये गुरु बनाना चाहिए, मंत्रियों से पूछा कि बड़े महाराज का गुरु कौन था? उन्होंने उत्तर दिया कि महाराज पं० विद्यानिधि जी महाराज के गुरु थे, जो बहुत बड़े महात्मा इस देश में गिने जाते थे।

राजा—तो हम भी उन्हीं को गुरु बनायेंगे।

मंत्री—महाराज! उनको तो देवलोक गये आज १० वर्ष हो गये।

राजा—उनके कोई लड़का है या नहीं?

मंत्री—उनका लड़का तो सरकार की अवस्था का है।

राजा—बस हम उसको गुरु बनायेंगे। उसके पिता हमारे पिता के गुरु और वह हमारे गुरु। तत्काल मंत्री कुछ मनुष्यों के सहित जायँ और पण्डितजी को बड़ी प्रतिष्ठा के साथ कचहरी में ले आवें।

मंत्री—"जैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जायगा"। यह कह कर पण्डितजी को लेने के वास्ते चल दिये और पंडितजी के पुत्र से राजा की आज्ञा को निवेदन कर दिया। पं० विद्यानिधि का पुत्र ऐसा मूर्ख था कि और ब्राह्मणों ने हँसी से उसका नाम निरक्षर भट्टाचार्य रख लिया था; किन्तु वह इस नाम से बहुत प्रसन्न होता था; क्योंकि पंडित बनना चाहता था और परिश्रम करना नहीं चाहता था। वह अपनी निर्बुद्धिता से भट्टाचार्य से निरक्षर भट्टाचार्य को बहुत बड़ी उपाधि समझता था—जब उसे

मंत्री महाशय ने राजा की आज्ञा सुनाई तो वह दही चिउड़े खा रहा था। राजा साहब की आज्ञा सुनते ही तत्काल वह हाथ मुँह धोकर मंत्री महोदय के साथ चल दिया। मार्ग में वह सोचता गया कि राजा साहब को मन्त्रोपदेश की जगह क्या उपदेश करे। उसे केवल दो ही शब्द याद थे एक तो "श्रीगणेशायनमः" दूसरा "आयुष्मान भव" परन्तु अर्थ उनके भी मालूम न थे केवल यह मालूम था कि एक तो पालागन वा प्रणाम के उत्तर में कहते हैं—दूसरा किसी कार्य के प्रारम्भ में कहते हैं, जिस समय वे राजा साहब के पास पहुँचे तो उनकी निम्न प्रकार बातचीत होना प्रारम्भ हुई।

राजा साहब—पण्डित जी महाराज ! प्रणाम करता हूँ।

पण्डितजी—"आयुष्मान भव" इस संस्कृत के वाक्य को सुनकर और ये समझकर कि ये विद्यानिधि के पुत्र हैं अवश्य भारी पंडित होंगे, राजा साहब को विश्वास हो गया कि ये संस्कृत के बड़े पण्डित हैं, उनसे गुरुमंत्र लेने की प्रार्थना की। पण्डितजी के पास संस्कृत का केवल एक वाक्य शेष रह गया था, गुरुमंत्र के स्थान पर उसी का उपदेश कर दिया अर्थात् "श्रीगणेशाय-नमः" याद करा दिया और कह दिया कि जिस किसी को गुरु के वाक्य में श्रद्धा नहीं होती, वह नास्तिक और नीच योनि में जाने के योग्य होता है।

राजा साहब—गुरू महाराज ! इस मंत्र का अर्थ क्या है ?

पण्डितजी—मनमें सोचने लगे कि क्या बतलायें। दही चिउड़े जो घर में अभी खाये थे, वही याद आ गये। राजा साहब को श्रद्धालु और मूर्ख अर्थात् 'अक्ल का अन्धा और गांठ का पूरा समझकर बतला दिया कि श्रीगणेशायनमः का अर्थ दही चिउड़ा है। राजा साहब ने इस गुरुवाक्य को सत्य मानकर श्रद्धा से

दिल में धारण कर लिया और गुरुजी को बहुत-सा धन दक्षिणा देकर बिदा कर दिया। थोड़ी देर में काशी का एक पण्डित राजा साहब से मिलने आ गया और राजा साहब से कहा कि मैं व्याकरण और दूसरे शास्त्रों का पंडित हूँ, आपको जो कुछ संदेह हो उसको दूर कर लीजिये।

राजा साहब—पंडितजी महाराज! 'श्रीगणेशायनमः' वेदमंत्र के क्या अर्थ हैं?

काशी का पंडित—यह वेद का मंत्र नहीं, इसके अर्थ यह हैं—'गण' कहते हैं 'गिरोह' को 'ईश' कहते हैं 'मालिक' को 'नमः' के अर्थ सत्कार करना और 'आय' चतुर्थी विभक्ति का चिह्न है, इसके अर्थ हुए गिरोह के स्वामी को नमस्कार करता हूँ।

राजा साहब पंडितजी की वाणी से दही चिउड़े के स्थान में गुरुजी के उपदेश के विरुद्ध दूसरे अर्थ सुनकर कि वेदमन्त्र नहीं, बहुत ही अप्रसन्न हुए और मनमें सोचा कि गुरुजी का कथन तो मिथ्या हो ही नहीं सकता, यह पंडित झूठ बोलता है। आज्ञा दी कि इस झूठे पंडित को जेलखाने में ले जाओ। इस अक़ल के अन्धे और गाँठ के पूरे राजा के मिलने को काशी के बहुत से पंडित आये; परन्तु गुरुजी की कृपा से सब को इनाम और भेंट के स्थान में जेलखाना नसीब हुआ। थोड़े ही समय में प्रसिद्ध हो गया कि इस राजा के दरबार में कोई पंडित 'श्रीगणेशाय नमः' का अर्थ ही नहीं कर सकता। जब ये खबर काशी में पहुँची कि इस शब्द के अर्थ करने में इतने पंडित अकृतकार्य होकर जेल में चले गये तो काशी में भी यह संवाद चहुँ ओर फैल गया। कोई कुछ ख्याल करता था और कोई कुछ। अन्त में एक बुद्धिमान पण्डित ने कहा कि ज्ञात होता है कि राजा तो मूर्ख है, किसी ने जाल में डाल दिया है। अच्छा मैं जाकर इसका भेद खोलूँगा।

पंडितजी काशी से चलकर राजा के नगर के किसी बाग़ में आ ठहरे और माली आदि लोगों से इस बात का पता लगा लिया कि राजा का गुरु कौन है और सीधे गुरुजी के मकान पर पहुँचे और उनकी प्रशंसा करके कहा कि महाराज आपके पास पढ़ने के लिये आया हूँ, निरत्तर भट्टाचार्य जी महाराज ने कहा कि मुझे फ़ुरसत कम मिलती है। पंडितजी ने कहा कि अच्छा महाराज "श्रीगणेशायनमः" का अर्थ बतला दीजिये—मैंने सुना है कि उसका अर्थ तो किसी को आता नहीं। राजा साहब नें बहुत से पण्डित अर्थ न जानने के कारण कैद कर दिये हैं। और भी बहुत से ख़ुशामद के शब्द कहे, जिसमे निरत्तर भट्टाचार्य को विश्वास हो गया कि ये भी मूर्ख आदमी है। उसने कहा कि "श्रीगणेशायनमः" का अर्थ है "दही चिउड़ा" पण्डित सुनकर हैरान हो गया और कहा कि महाराज! मैंने सुना है कि आप राजगुरु हैं। निरत्तर भट्टाचार्य ने अभिमान से कहा कि हम तो महाराज के खान्दानी गुरु हैं।

पण्डित—तो क्या महाराज को भी आपने यही अर्थ बतलाये हैं?

निरत्तर भट्टाचार्य—निस्सन्देह यही ठीक अर्थ हैं और यही बतलाये हैं।

इसके पश्चात् पण्डित प्रणाम करके वहाँ से चला गया और महाराज से मिला। राजा ने उससे भी "श्रीगणेशाय नमः" का अर्थ पूछा। पण्डितजी ने कहा कि महाराज! इसके अर्थ तो मैं पीछे से बताऊँगा, मुझे आपसे कुछ प्रार्थना करनी है।

राजा—कहिए, आप क्या कहना चाहते हैं?

पण्डित—मेरी प्रार्थना यह है कि आप बड़े राजाधिराज

प्रतापी और धर्मात्मा हैं, आप कुछ थोड़ा-सा व्याकरण पढ़ लें तो राजसूययज्ञ करने के योग्य हो जावें।

राजा—बहुत अच्छा, मैं राजसूययज्ञ अवश्य करूँगा और उसके लिये कुछ शास्त्र भी पढ़ूँगा। पण्डित ने लघु-कौमुदी व्याकरण कुछ कोप और काशिका पढ़ा, शास्त्रीय शब्दों के अर्थ समझने योग्य कर दिया। जब राजा को धातु अन्वय और शब्दार्थ का ज्ञान हो गया तो पंडित ने कहा कि महाराज अब आप अपने "श्रीगणेशाय नमः" का अर्थ पूछिए। राजा ने कहा बतलाइये। पंडित ने 'दही चिउड़ा' अर्थ बतलाया। राजा ने कहा कि महाराज अब तो वह खराबी चली गई क्या अब भी मुझे अक़ल का अन्धा और गांठ का पूरा समझते हैं, तब पंडित ने कहा कि फिर आपने इतने पंडित क्यों कैद कर रक्खे हैं ? राजा ने कहा कि महाराज ! अविद्या के कारण अपराध हुआ।

ठीक यही दशा आगरे की धर्मसभा के सभासदों ने कर दिखाई। आर्यसमाज के प्रश्नों के उत्तर क्या दिये, अपने पुराणों की दुर्दशा कराई, जो हिन्दू धर्मसभा की बुनियाद हैं। जिस ईश्वरानन्द ने आपके शालिग्राम और तुलसी की पूजा और विवाह को मिथ्या सिद्ध कर दिया, जिसने ही श्राद्ध अवतार को मिथ्या सिद्ध किया—लिंगपुराण, शिवपुराण सबको रद्दी कर दिया, आपने अक़ल के अन्धे और गांठ के पूरे राजा की भाँति उसको विजयपत्र लिख दिया और ये न सोचा कि आप ही मुद्दई और आप ही विजयपत्र देनेवाले जज बन गये। यद्यपि लाला केदारनाथजी बी० ए० वकील होने के कारण इस बात को समझ भी गये हों ; परन्तु पक्षपात का चश्मा आँखों पर लगा हुआ था—वह सत्य और असत्य का विचार क्यों होने देते ? जिस प्रकार वह अक़ल का अन्धा और गांठ का पूरा राजा मिथ्या

कहनेवाले को गुरू मान कर सत्य बतलानेवालों को कैद करता था। यदि हिन्दू धर्मसभा के सभासद् ज्ञानशून्य होने के कारण और निर्बुद्धिता के कारण विजयपत्र दे दें तो हम ही क्या— हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि जबकि बाबू केदारनाथजी बी० ए० एक योग्य वकील धर्मसभा में सम्मिलित हैं तो तुम्हारा धर्मसभा के सभासदों को कम अक़्ल कहना किस प्रकार ठीक हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि हम तो उन्हें कम अक़्ल कहना नहीं चाहते ; परन्तु जब वे स्वयं ही कम अक़्ली का दावा करते हैं तो हम क्या करें ? हमारे बहुत से मित्र कहेंगे कि उन्होंने कम अक़्ली का दावा कब किया है, उसका उत्तर यह है कि सनातनधर्म का दावा है कि प्रतिमापूजन कम अक़्लों के लिये या पुराण स्त्री, शूद्र कम अक़्लों के लिये बनाये हैं, अब जो अपने आपको प्रतिमापूजन और पुराण की शिक्षा के अधिकारी समझते हैं तो वह महात्मा चाणक्य के कथनानुसार कम अक़्ली का दावा कर रहे हैं। देखो चाणक्यनीति

(८) जैनी पण्डितों से प्रश्न

(१) जिस मुक्ति के वास्ते आप जैन धर्म को ग्रहण किये हुए हैं, वह जीव का स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक ? अगर स्वाभाविक धर्म है तो इसके लिये जैन धर्म की क्या आवश्यकता है ? यदि नैमित्तिक धर्म है तो उसका निमित्त क्या है ?

(२) मुक्ति नित्य है या अनित्य यदि नित्य है तो उसका किसी कारण से होना किस प्रकार सम्भव है ? क्योंकि नित्य की तारीफ (लक्षण) ये है जो किसी कारण से उत्पन्न न हो। यदि अनित्य है तो उसका अनन्त होना बन नहीं सकता क्योंकि सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसका आदि हो और अन्त न हो। क्या किसी जैनी ने एक किनारावाला दरिया या एक सीमावाली वस्तु देखी है ?

(३) जैन धर्म में सृष्टिकर्ता तो ईश्वर को मानते ही नहीं। जिस परमाणु मुद्गल या भूतों के स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं, वह स्वभाव से गतिवाला है या गति शून्य ! यदि गतिवाला है तो संयोग परमाणुओं में हो नहीं सकता ; क्योंकि सब की गति बराबर होने से जो दरम्यान में फासला है, वह बना ही रहेगा। यदि गति शून्य स्वीकार करें तो भी संयोग नहीं हो सकता। अतः कोई वस्तु बन नहीं सकती।

(४) क्या जैन धर्म के वे आचार्य जिन्होंने जैन धर्म के शास्त्र लिखे हैं। राग से रहित थे या रागवाले यदि राग से रहित थे तो उन्होंने शास्त्र कैसे बनाये ? यदि रागवाले थे तो उनके बनाये ग्रंथ किसी तरह प्रमाण हो सकते हैं ?

(५) आप लोग जो जगत् को अनादि मानते हैं तो जगत् प्रवाह से अनादि है या स्वरूप से ? यदि प्रवाह से अनादि है तो उसका कारण क्या है। क्योंकि कोई प्रवाह बिना कारण हो नहीं सकता। यदि स्वरूप से मानते हैं तो विकार क्योंकर हो सकते हैं क्योंकि विकारों में पहिला विकार "पैदा होना" है। तो जो चीज पैदा होती है, वो ही बढ़ती है। ऐसी कोई वस्तु बतलाओ जो पैदा न हो और बढ़ती हो।

(६) जो कर्म का बन्धन अनादि है, उसका अन्त किसी प्रकार हो सकता है ? क्योंकि अनादि वस्तु के दोनों किनारे नहीं हो सकते। जिसका एक किनारा है, उसीका दूसरा भी होना आवश्यक है।

जीव जो कर्म करता है, उसका फल देनेवाला तो आप मानते ही नहीं और यह नियम है कि जो जिससे पैदा होता है, वो उससे निबन्ध होता है और निर्बल किसी सबल को बाँध नहीं सकता। अतः कर्म का फल किस तरह होता है।

(८) जो दृष्टान्त शराब वगैरह के पीने में नशा आने का दिया जाता है वो सही नहीं क्योंकि शराब द्रव्य है और पीना कर्म है। वह नशा शराब द्रव्य का न कि पीने के कर्म का। अगर पीने के कर्म का फल कहो तो पानी पीने में भी नशा होना चाहिये क्योंकि पीना कर्म इस जगह भी है।

(९) इसमें क्या प्रमाण है कि जैन शास्त्रों को जैनियों के आचार्यों ने लिखा है ? क्योंकि आज जैन आचार्य प्रत्यक्ष लिखते हुए तो नजर नहीं आते। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान किस तरह हो सकता है। अगर प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों न हों तो शब्द प्रमाण हो ही नहीं सकता। पस जैन शास्त्रों के बनानेवाले कोई आचार्य नहीं।

(१०) जैन लोग जिस प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं, वह किसी द्रव्य का हो ही नहीं सकता ; क्योंकि हर एक चीज़ की छः सिफ़त होती हैं। प्रत्यक्ष एक तरफ के गुणों का होता है। जैसे एक किताब को जब देखते हैं तो उसके रूप और परिमाण का प्रत्यक्ष होता है। जब किसी दीवार को देखते हैं तो भी रूप और परिमाण का प्रत्यक्ष होता है। तब किस तरह कह सकते हैं कि यह रूप किताब का है और यह दीवार वग़ैरह का ?

(११) जैन लोग जिस जीव को मानते हैं, उसके होने में क्या प्रमाण है ? क्योंकि जीव रूप नहीं जो आँख से दृष्टि आये। रस नहीं जो रसना से मालूम हो, जैनमत का जीव साबित नहीं हो सकता।

(१२) जैन लोग जिन इन्द्रियों से देखकर ईश्वर को जगत् कर्ता मानना चाहते हैं, तो इन इन्द्रियों को किस प्रमाण से साबित करते हैं। क्या इन्द्रियों का प्रत्यक्ष होता है ? जवाब मिलता है नहीं। अनुमान होता है क्योंकि अनुमान में व्याप्ति का होना लाजमी है। जिसका तीन काल में प्रत्यक्ष न हो उसकी व्याप्ति नहीं और जिसकी व्याप्ति न हो अनुमान नहीं हो सकता। अतएव जैनियों को इन्द्रियों के अस्तित्व से इनकार करना चाहिये।

(१३) जैन लोग जिस सप्तभङ्गी न्याय को लेकर ईश्वर की अस्तिता के सम्बन्ध में पेश किया करते हैं, अगर उसी सप्तभङ्गी न्याय को तीर्थङ्करों के सम्बन्ध में इस्तेमाल किया जावे तो उसका नतीजा बतलाइये।

(१४) धर्म गुण है, कर्म है, स्वभाव है क्योंकि आप उस को एक पदवी पदार्थ मानते हैं, जिस द्रव्य, गुण कर्म वग़ैरह हो सकता है। वह नित्य है या अनित्य ?

(१५) शरीर से अलाहिदा कभी जीव रहता है या नहीं ?

अगर रहता है तो किस परिमाणवाला होता है अणु, मध्यम, या विभु !

(१६) क्या एक ही वस्तु में दो विरुद्ध धर्म रह सकते हैं या नहीं ? जैसे सर्दी व गर्मी । अगर नहीं रह सकते तो सप्तभङ्गी न्याय की समाप्ति ; अगर रह सकते हों तो उसकी मिसाल दो । अगर मिसाल नहीं तो उसको न्याय किस तरह कह सकते हो ।

(१७) जिसकी उपासना की जाती है, उसके सर्व गुण आते हैं या कोई-कोई । अगर सब (गुण) आते हैं तो मूर्ति पूजन के साथ जड़ता आना लाजिमी है । जहाँ जड़ता और चैतन्यता दो शामिल हो जावें, उसे अविद्या कहते हैं । अगर कोई गुण आता है तो उसमें न्याय बतलाइये कि किस नियम से आता है ।

(१८) क्या जीव और अजीव जिन दोनों पदार्थों को आप स्वीकार करते हैं, इनको सप्तभङ्गी न्याय से पृथक् मानते हैं ।

(१९) पाप व पुण्य को तमीज करने के वास्ते आप किस कसौटी को मानते हैं । वह कसौटी किसी आचार्य ने बनाई है या अनादि काल से चली आती है !

(२०) आपके जीवों की संख्या अनन्त है और काल भी अनन्त है । जीवों की तादाद में कमी नहीं और जो जीव मुक्त हो जाता है (लौटता नहीं) गोया जीव की तादाद कभी खतम या बहुत कम तो न हो जायगी, जिससे सृष्टि का सिलसिला खतम हो जावे ; क्योंकि जिसमें आमदनी न हो, खर्च हो, उसका दिवाला निकलना आवश्यक है ।

स्वामी दयानन्द और वृक्षों में जीव

आज कल बहुत से लोगों को यह विचार है कि स्वामी दयानन्द ने वृक्षों में जीव का होना मात्र माना है अर्थात् वृक्षों को जीव का शरीर माना है। हम पिछले अङ्कों में दिखा चुके हैं कि महात्मा गौतम ऋषि वृक्षों को शरीर नहीं मानते; परन्तु कतिपय मनुष्यों के विचारानुकूल स्वामी दयानन्द वृक्षों को शरीर मानते हैं। अब वह दोनों ऋषि माननीय तथा वैदिक सिद्धांतों के जानने और मानने वाले हैं, वरन् स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तकों में महात्मा गौतम जी के लेख को प्रमाणिक मानकर सत्य की खोज के लिये उनके प्रमाण दिये हैं, जिससे कि स्पष्ट प्रकट होता है कि स्वामी दयानन्द गौतम जी को अपनी अपेक्षा अधिक प्रमाणिक मानते थे। दूसरे स्वामी दयानन्द ने गौतम जी के लेखों में मिलावट होना भी नहीं सिद्ध किया। ऐसी दशा में यदि इन दोनों ऋषियों के सिद्धांतों में विधि मिले तो इनमें से किसी एक को वेद के अनुकूल अथवा प्रतिकूल बताना बहुत दुष्कर है। परन्तु अब जब कि वृक्ष योनि होने में दो ऋषियों के सिद्धांतों में हमारे बहुत से आर्यों के कथनानुसार विरोध दीखता है, हमारा धर्म हमें बाध्य करता है कि इस विषय का अनुसंधान करें। जिस समय हम स्वामी दयानन्द के मन्तव्य तथा आर्य उपदेश रत्न-माला को विचार पूर्वक देखते हैं तो उसमें तो इस विषय का कोई वर्णन नहीं मिलता, जिससे पता चलता है कि स्वामी दयानन्द ने इस विषय को कोई विषेष दृष्टि से नहीं देखा और नहीं किसी स्थल पर इस पर विचार किया है। परन्तु परस्पर

सत्यार्थ प्रकाश तथा वेद भाष्य भूमिका में कई स्थलों पर इसका वर्णन आया है। यद्यपि वहां पर स्वामी जी का तातपर्य्य वृक्षों को शरीर सिद्ध करने का नहीं, तथापि उन प्रमाणों में जो भृगु संहिता से उस स्थल पर दिये गये हैं, स्थावर शब्द को देख कर और भाषा में उसका अर्थ वृक्षादि पढ़कर बहुत से भाषा (ही) जानने वालों का चित्त दुविधा में पड़ा हुआ है; क्योंकि भूमिका के पृष्ठ १२२ से इसका खण्डन होता है। जहां तक हमने विचारा हमें तो स्वामी जी तथा गौतम जी की सम्मति में कुछ भी भेद नहीं जान पड़ा, बरन् स्पष्ट पता चलगया कि जो स्वामीजी के भाष्य को न समझने के कारण भ्रम में पड़े हुए हैं, अन्यथा स्वामीजी वृक्षों को शरीर नहीं मानते। जैसा कि सत्यार्थ प्रकाश पृष्ट २६ से प्रकट होगा—

"गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्रदश रात्रेण शुध्यति॥ मनु० ५।६५

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो तो मृतक शरीर को जिसका कि नाम प्रेत है, दाह करने वाला शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ शुद्ध होता है—

अब यहाँ पर स्वामीजी का यह आशय नहीं कि शिष्य दशवें दिन शुद्ध होता है, वरन् वह भूत और प्रेतों का खण्डन करना है, परन्तु बहुधा मनुष्य जो स्वामीजी के मन्तव्य से सर्वथा अनभिज्ञ हैं यह मान लेते हैं कि मृतक उठाने वालों की शुद्धि स्वामीजी के विचार में दसवें दिन होती है और इसे सिद्ध करने के निमित्त वह इस प्रमाण को उद्धृत करते हैं। बुद्धिमान जानते हैं कि स्वामीजी ने किस बात के लिये यह श्लोक उद्धृत किया है। इसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २५२ को देखो। मनुस्मृति में पाप

और पुण्य की बहुप्रकार की गति। यहाँ स्वामीजी ने मनुष्य का प्रमाण दिखाया है:—

"शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।"

अर्थः—कई प्रकार के कायक कर्मों के कारण मनुष्य स्थावर भाव अर्थात् वृक्ष में रहने वाला जीव बनता है। इस स्थल के श्लोकों से स्वामीजी का यह तात्पर्य नहीं कि वृक्ष देह अर्थात् योनि है, वरन् स्पष्टतया यह दिखाया है कि पाप कायक वाचक तथा मांसिक होते हैं। अब दूसरा वाक्य देखो पृष्ठ २५२।

स्थावराःकृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः।

अर्थ—स्थावर अर्थात् वृक्षादि, कृमि अर्थात् मलस्थानादि के कीड़े, दूसरे मकोड़े इत्यादि। यहां स्वामीजी गुणों से अवस्थाओं का होना प्रकट करते हैं। इन दोनों स्थलों पर स्थानवर वृक्षस्थ जीव के अर्थ में आया है। परन्तु छापने वालों की अवहेलना के कारण वृक्षस्थ के बदले वृक्षादि छपा है। तीसरे स्थान पर इसका वर्णन जैनियों के प्रश्न के उत्तर में आया है।

प्रश्न—(जैनी) बनस्पति तथा कन्दमूल अर्थात् शकरकन्दी आदि पृथ्वी से उपजने वाली वस्तुएं हैं। हम लोग उनको नहीं खाते, क्यों कि बनस्पति में बहुत और कन्दमूल में अत्यन्त जीव हैं जो हम उनको खावें तो उन जीवों को मारने तथा दुःख होने से हम लोग पापी होजावें।

उत्तर—(स्वामी) यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है, क्योंकि हरे शाक के खाने में जीव का मरना तथा उन्हें दुःख पहुँचना किस प्रकार मानते हो जबकि दुःख प्राप्त होना तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं दीखता। यदि दीखता हो तो हमें दिखाओ।

स्वामीजी के इस उत्तर से स्पष्ट विदित होता है कि वह हरे

शाक एवं कन्दमूल के खाने में जीव का मरना नहीं मानते। यदि बनस्पति में स्वामीजी जीव मानते तो हरे शाक के खाने से जीवों का मरना अवश्य स्वीकार करते, क्योंकि किसी शरीर को खाने से जीवों का मरना अवश्यमेव मानना पड़ता है। और जैनी के प्रश्न से भी विदित होता है कि वह भी वृक्ष को शरीर नहीं मानता, वरन् वृक्षों में रहने वाले जीवों का मरना तथा उनको दुःख पहुँचना मानता है, प्रत्येक शरीर में उसका अभिमानी एक ही जीव होता है, अब जब कि वनस्पति में वहुत और कन्दमूल में अत्यन्त जीव मानता है तो उसका आशय कन्द मूल तथा शाक को शरीर मान कर उसके अभिमानी जीव नहीं वरन् उसमें रहने वाले जीव हैं और स्वामीजी के उन शब्दों में जो उसके आगे लिखे हुए हैं पता चलता है कि वे शाक पात में रहने वाले जीवों को भी वायु के जीवों की भाँति सुख दुःख का अनुभव करने वाला नहीं मानते, क्योंकि योनि अथवा शरीर कर्मों का फल भोगने के लिये दिया जाता है, अथवा कर्म करने के निमित्त। इसी लिये न्याय वात्स्यायन भाष्य में शरीर को भोगायतन माना है, अब वृक्ष कर्तव्य तो करते ही नहीं और स्वामीजी के लेखानुसार दुःख सुख का भोग भी नहीं करते, तो जब उसमें न तो कर्तव्य हुआ और नाहीं भोग तो उसमें जीव किस अभिप्राय से जायगा और जहाँ भोग न हों वह भोगायतन किस प्रकार हो सकता है। (याद रखिये कि) सिवाय मुक्ति के किसी शरीर में जीव बिना दुःख सुख भोग के नहीं रह सकता। जब स्वामीजी वनस्पति के खाने में जीव का मरना नहीं मानते तो स्पष्टतया प्रकट होगया कि वास्तव में स्वामीजी स्थावर अर्थात् वनस्पति को जीव का शरीर नहीं मानते और जिस समय हम स्वामीजी कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ १२२ के उस वेद मंत्र के अर्थ पर जो कि यजुर्वेद अध्याय ३१ का मंत्र है, विचार करते

हैं तो उससे स्वामीजी का सिद्धांत स्पष्ट हो जाता है कि जो खाने के निमित्त बना है, वह जड़ अर्थात् जीव रहित है एवं जो खाने के लिये प्रयत्न करता है। वही जीव संयुक्त अर्थात् चेतन है। यदि हम मनु के उन श्लोंको के साथ स्वामीजी के इस लेख तथा वेद मंत्र का मुक़ाबला करें तो सत्यार्थ प्रकाश में वृत्तस्थ के स्थान पर वृक्षादि का प्रयोग किया जाना स्पष्ट हो जाता है अन्यथा वेद मंत्र के विरुद्ध है। इसे स्मृति का प्रमाण मानना ठीक नहीं; परन्तु वृक्षों में अभिमानी जीव के माननेवाले महात्मा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ २०६ पर का वह मंत्र उद्धृत करते हैं जिसकी भाषा में वृक्षादि योनि लिखा है—देखो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ २०६ पंक्ति ६।

द्वेसृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुतमर्त्यानाम्ता-
भ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरापितरं मातरं च ॥६॥

अर्थ—'इस संसार में दो प्रकार के जीवों को सुनते हैं (१) मनुष्य शरीर का धारण करना और (२) पंच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतंग और वृक्षादि का होना इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि मनुष्य वृक्षों के जन्म में जाता है और यह वेदमंत्र है। अतः यहाँ वृक्षों में जीव का होना स्वामी दयानन्द के अर्थ से पूर्णतया सिद्ध है; परंतु हम उन भाइयों से प्रार्थना करेंगे कि वे इस मंत्र के स्वामी दयानंद कृत संस्कृत भाष्य को इसके पूर्व के पृष्ठ पर देखने की कृपा करें और फिर उस अर्थ से पता चल जायगा कि वृक्षों में जीव है कि नहीं, हम इस संस्कृत के भाष्य को नीचे लिखते हैं:—

'(द्वेसृति०) अस्मिन्संसारे पाप पुण्य फल भोगाय

द्वौ मार्गौस्तः । एकः पितृणां ज्ञानिनां देवानां विदुषांच, द्वितीयः (मर्त्यानां) विद्या विज्ञान रहितानां मनुष्याणाम्

अर्थ—इस संसार में पाप और पुण्य फल भोगने के हेतु दो मार्ग हैं। एक पितृ, ज्ञानी, देवता तथा विद्वानों का और दूसरा विद्या और विज्ञान से रहित मनुष्यों का।

इस संस्कृत भाष्य और मूलवेद मंत्र में कोई शब्द नहीं, जिससे वृक्षों में जीव का होना अथवा वृक्ष योनि का होना पाया जाता हो। स्वामी दयानंद सरस्वती के वेद भाष्य में इस मंत्र के संस्कृत भाषा भाष्य से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध नहीं होता—नहीं-नहीं, खोज भी नहीं मिलता—अतः मानना पड़ता है कि जिसने भूमिका में संस्कृत भाष्य की भाषा की है अथवा लिखी है। उसने अपनी ओर से लिखा है। स्वामीजी का यह सिद्धांत नहीं यदि स्वामीजी का यह सिद्धांत होता तो वह अपने वेद भाष्य में अवश्य लिखते।

हमारे विचार में जिन लोगों ने स्वामी दयानंद के सिद्धांत को विचारा है, वह कदापिकाल वृक्षों को शरीर नहीं मान सकते। जबकि जीव का वृक्ष शरीर नहीं तो उसमें भोग के लिये जीव का आना सम्भव नहीं जान पड़ता। अतः जहाँ कहीं किसी पुस्तक में किसी दूसरे विषय में प्रमाण देते हुए इसका भी वर्णन हुआ है, वहाँ लक्षणा समझनी उचित है जैसा कि स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश में स्वयं कहा है कि जहाँ असम्भव हो वहाँ लक्षणा करनी चाहिए बहुत से मनुष्य कहेंगे कि वृक्ष का शरीर होना तथा उसमें उसके अभिमानी जीव का होना क्यों असम्भव है? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो वृक्ष में भोग साधन इंद्रियाँ प्रत्यक्ष में नहीं और जहाँ भोगसाधन न हों, उसे भोगायतन कह

ही नहीं सकते और स्वामीजी भी वृक्षों में दुःख सुख भोगना स्वीकार नहीं करते तो जब भोग ही न हो तो उस योनि में जीवात्मा किस कारण आवेगा और बिना किसी हेतु के ईश्वर का कोई शरीर बनाना असम्भव है। दूसरे वृक्ष अभिमानी जीव का होना किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं। क्योंकि वृक्ष में जीव के स्वरूप लक्षण ज्ञान और प्रयत्न का पता नहीं मिलता और जहाँ लक्षण न हो, तहाँ लक्ष का रहना असम्भव है। तीसरे स्वामीजी वृक्षों को भोग के लिये बना हुआ मानते हैं तथा हरे वृक्षों के खाने में पाप नहीं बताते, जैसा कि जैनियों को उत्तर देते हुए स्वामीजी ने दिखाया है, बनस्पति में जीव मानने शाकफलादि खाने में हिंसा का होना आवश्यक है और- वेद ने हिंसा का निषेध किया है तथा बनस्पति खाने ही के लिये बनाई है तो यदि बनस्पति खाने से मनुष्य हिंसा करता है तो हिंसा से बचने के लिये कोई दूसरा पदार्थ मनुष्य के भोजनों के लिये होना चाहिये; परन्तु बनस्पति के अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु का होना किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। शब्द प्रमाण अर्थात् वेद से भी बनस्पति खाने के लिये बनी है, ऐसा सिद्ध है ही और प्रत्यक्ष में बनस्पति के अतिरिक्त अन्य कोई खाद्य पदार्थ नहीं जान पड़ता। अतः बनस्पति खाए बिना कोई मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। बहुधा मनुष्य कहेंगे कि दुग्ध तथा मांस यह दो पदार्थ भोजनार्थ विद्यमान् हैं, जिनसे कि मनुष्य जीवित रह सकता है; परन्तु यह विचार उनका ठीक नहीं कि यह दोनों भी बनस्पति ही के खाने से उत्पन्न होते हैं यदि बनस्पति को खाद्य वस्तु न माना जावे तो दुग्ध तथा मांस बन ही नहीं सकते। अब इनमें से दुग्ध ऐसा पदार्थ है कि जो खाद्य वस्तुओं की गणना में आ सकता है; क्योंकि उसका बढ़ना मनुष्य

के परिश्रम पर निर्भर है—जैसे कि जो गाय वा भैंस इस समय दो सेर दुग्ध देती है, उसे यदि खूब उत्तम पदार्थ खिलाये जायें और भले प्रकार उसकी टहल की जावे तो वह पाँच छः सेर तक दूध दे सकती है, इससे स्पष्टतया यह परिणाम निकलता है कि यह दूध हमारे अहार देने तथा परिश्रम का फल है। इसी कारण दूध का पीना पाप नहीं समझा जाता है; क्योंकि दुग्ध देने में पशु को तनिक भी कष्ट नहीं होता; परन्तु मांस पशुओं के शरीर का एक भाग है। वह बिना हत्या किये प्राप्त नहीं हो सकता। अतः वह खाने के योग्य नहीं। जिसकी कि हम यहां पर पूर्ण बहस नहीं कर सकते। यदि स्वामीजी के उस विज्ञापन को देखा जावे, जिसमें कि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि आदि में लिखे हुए मनुस्मृति आदि के प्रमाणों के विषय मे वेद भाष्य के अंग में दिया है तो स्पष्टतया मानना पड़ता है कि स्वामी दयानन्द वृक्षों में जीव नहीं मानते, वह जिस पुस्तक का प्रमाण वेद के अतिरिक्त देते हैं, वह वेदानुकूल होने से प्रमाण होता है। वेद विरुद्ध होने से नहीं। अब मनु के यह श्लोक उस वेद मंत्र के प्रतिकूल हैं जो स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका पृष्ठ १२२ में दिया है और न्यायदर्शन के कर्त्ता गौतम आदि के सिद्धान्त के भी विरुद्ध है। अतः यह श्लोक केवल गवाही की रीति से लिये गये हैं; प्रमाण की भाँति नहीं।

अकाल मृत्यु मीमांसा

सिद्धार्थं सिद्ध सम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥

हमको इस "अकाल मृत्यु मीमांसा" नामक विषय लिखने की आवश्यकता इसलिये हुई कि जब यह विचार कि यदि हम विचार कर देखें तो सृष्टि के आदि से आज तक जितने भी प्रसिद्ध युद्ध वीर धर्माविराधक पुरुष हुए, उनमें से यदि पूर्वज वीरों की ओर दृष्टि डालें तो एक महान् ही आश्चर्य प्रतीत होता है। वह क्या आश्चर्य है? यह कि आश्चर्य पूर्व के यावत् पुरुष अर्जुन, भीष्मादि पर्यन्त वीर हुए हैं, उनके भीतर कौन-सा बल था कि जिसके भरोसे वे सैकड़ों सहस्रों नहीं नहीं, लक्षों, करोड़ों मनुष्य वीरों के संग युद्ध करने को सम्बद्ध हुआ करते और किंचित्‌मात्र भी भय उनको नहीं होता था। यहाँ तक कि पुरु जैसे छोटे राज्यवाले राजा भी सिकन्दर जैसे बड़े बादशाह के साथ सेना रहित हुए, चारों ओर मे सेना से घिरा हुआ होने पर भी सिकन्दर से यह पूछे जाने पर कि हे पुरु! बतलाओ अब तुम अकेले ही हाथी पर आरूढ़ हो। चारों ओर से सिकन्दर की महा बलिष्ट सेना से घिरे हुए स्वयं सेना रहित हो, ऐसी दशा में तुम्हारे साथ हम कैसा व्यवहार करें? वह पुरु तनिक भी भय को प्राप्त नहीं होता और उस बल के आश्रय कि जो उनकी आत्मा

में वर्तमान है, यह उत्तर देता है कि मुझसे वह व्यवहार करो कि "जो बादशाह बादशाहों के साथ करते हैं" अपने को भी बादशाह ही समझाना ऐसी दशा में किस बल के आश्रय है।

प्रियवर ! आजकल के वीरब्रुवों की पूर्व काल वीरों के साथ यदि तुलना की जावे तो हँसी आती, नहीं नहीं शोक होता है कि हा ! भारत वसुन्धरा ! क्या ऐसे वीर पुरुषों की सवित्री होने के स्थान में सम्प्रति बन्ध्या ही हो गई ? परन्तु आप जानते हैं कि 'कारणाऽभावात्कार्याभावा:" इस ऋषि प्रोक्त नियम के अनुसार पूर्वार्जित आत्मिक बल अपने कारण के अभाव नष्ट हो जाने से ही नष्ट हो गया। आवश्यकता इस ग्रन्थ की यह है कि "आवश्यक है कि उस कारण का जो इतने बड़े भारी आत्मिक बल (जिससे पूर्व काल के ऋषि और राजाओं की कीर्ति जगत् में सुप्रकाशित हुई) का हेतु है। अन्वेपण जहाँ तक हो सके किया जावे, जिसमे परमात्मा की कृपा से पुनः वैसे ही पुरुष उत्पन्न होने सम्भव हो सकें। उन अनेकशः कारणों में से जो कि मनुष्यों को महा भीरु (डरपोक) बनाने का हेतु है। एक यह भी हेतु है कि "अकाल मृत्यु का विश्वास होना।" इस सबसे मुख्य हेतु वे मनुष्यों को जो कि बड़े-बड़े भारी धर्मवीर होने सम्भव थे, अधर्मात्मा बन गये, इसी विश्वास ने जो बड़े-बड़े युद्धवीर होने सम्भव थे, महाभीरु बनाया, कहाँ तक लिखें, इसी कारण से यह भारतवर्ष जिसको मनु जैसे महात्मा भी यह कहा करते थे कि:—

एतद्देशप्रशूतस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥ १ ॥

ऐसी दशा में गिरा दिया कि जिससे अन्य देशों में साधा-

रणतया से भी गिर गया। सत्य है कि " सत्यमेव जयते नानृतम्" सत्य ही की जय होती है न कि झूठ की ; इस झूठे विश्वास ने मनुष्यों के आत्मिक बल का सर्वथा नाश कर दिया ; क्योंकि सचाई ही बल और जीवन है, झूठे मनुष्यों को निर्बल बना देता तथा मार देता है। यदि इस पुस्तक से थोड़े मनुष्यों का भी पर्याप्त उपकार होगा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझता हुआ अन्य कार्य में प्रोत्साहित हूँगा।

प्रथम इससे कि हम अकाल मृत्यु के होने और न होने की परीक्षा करें, सर्व साधारण को यह समझ लेना आवश्यक है कि जो मनुष्य अकाल मृत्यु को मानते हैं। उनका यह अकाल मृत्यु शब्द भी ठीक है अथवा नहीं। यदि हमारे भाई इस शब्द का अर्थ यह करें कि "बिना काल के मृत्यु का हो जाना" तो यह सर्वथा अयुक्त है ; क्योंकि चाहे कभी क्यों न मृत्यु हो, वह किसी न किसी काल में तो अवश्य होगी, बिना काल के मृत्यु का होना असम्भव है। महात्मा कणाद ऋषि ने कहा है—

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥
वै० द० २। २। ६

अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमानादि लक्षणोंवाले काल का नित्य पदार्थों में अभाव होता है और अनित्य पदार्थों में भाव होता है इसलिये काल कारण है, जो पदार्थ नित्य होता है उसमे हुआ होता है, होगा इत्यादि व्यवहार नहीं होते क्योंकि वह नित्य है। इसी प्रकार जो पदार्थ अनित्य होता है, उसमें संसर्ग हुआ होता है, इत्यादि व्यवहार हुआ करते हैं। जिस लिये कि मृत्यु होती है, अतः अनित्य है। अनित्य होने से उसके साथ हुई होगी, इत्यादि काल का सम्बन्ध है। जब मृत्यु के साथ काल का सम्बन्ध है

तो यह कहना कि—"बिना काल के मृत्यु हो जाना सर्वथा अयुक्त है।

प्र०—हम इसका यह अर्थ करते हैं कि—"ईश्वरों ने जितनी आयु यावत् प्राणियों की नियत करदी है, उस नियत काल से पहिले अथवा पश्चात् किसी विघ्न विशेष से पहिले अथवा किसी सुकर्म विशेष से पश्चात मृत्यु का होना अकाल मृत्यु कहलाता है। इसका उदाहरण यह है कि जैसे एक दीपक तैल से परिपूर्ण हो, जब तक उसमें तैल रहेगा, तभी तक वह दीपक जलता रहेगा, यहाँ तैल उस दीपक की आयु समझना चाहिये। बस जैसे तैल से परिपूर्ण दीपक तैल के समाप्त होने से पहिले वायु आदि के लगने आदि विघ्नों से बुझ जाता है, इसी प्रकार आयु के अधिक होने पर भी नाना प्रकार के सर्प का काटना आग से जल जाना पानी में डूबना आदि विघ्नों से प्राणी आयु समाप्ति से पहिले ही मर जाते हैं, इसी का नाम अकाल मृत्यु है।

उ०—प्रथम तुम यह बतलाओ कि ईश्वर ने जो प्राणियों की आयु नियत की है, वह ईश्वर के ज्ञान में है वा नहीं अर्थात् ईश्वर को आयु नियत करने से प्रथम यह ज्ञान था वा नहीं कि इस प्राणी की ऐसे-ऐसे कर्मों के अनुसार इतने काल तक आयु होनी चाहिये। यदि कहो नहीं तो क्या उसने कर्मों के अनुसार (जितने जैसे कर्म किये हों, आयु कैसे दी? यदि कर्मों के विरुद्ध दी तो वह न्यायकारी नहीं। यदि तुम कहो कि ईश्वर को ज्ञान था तो ईश्वर के सत्य ज्ञानी होने से जैसा ईश्वर ने जाना था, वैसा ही आयु का काल होना चाहिये। न कि पहिले वा पीछे अर्थात् जैसे ईश्वर ने किसी प्राणी की सौ वर्ष की आयु नियत की और ईश्वर को यह ज्ञान भी है कि यह प्राणी सौ वर्ष तक जीवित रहेगा, अब यहाँ यदि वह मनुष्य सौ वर्ष से पहिले वा

पीछे मर जावै तो ईश्वर को जो यह ज्ञान था कि यह मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहेगा मिथ्या हो गया, जिस लिये कि ईश्वर मिथ्या ज्ञानी नहीं है ; किन्तु सत्य ज्ञानी है अर्थात् जितने काल तक ईश्वर ने आयु नियत की है, वह जानकर की है और ईश्वर ने जैसा आयु का काल जाना है, उसके विपरीत नहीं हो सकता। इससे सिद्ध हुआ कि आयु की समाप्ति से प्रथम कोई प्राणी नहीं मर सकता, इसलिये अकाल मृत्यु नहीं होती।

प्रश्न—यदि आप ऐसा कहेंगे तो ईश्वर के सर्वज्ञ होने से जैसा ईश्वर ने जाना है, वैसा ही मनुष्य पाप पुण्य करेंगे। यदि न करेंगे तो ईश्वर मिथ्या ज्ञानी हो जायगा। यदि करेंगे तो मनुष्यों को पाप पुण्य के करने में परतन्त्र होने से अथवा वह पाप और पुण्य ही नहीं कहला सकते और न किसी के भविष्यत पाप और पुण्य दूर हो सकते हैं, इससे पापों से बचना भी असम्भव होगा। यदि आप इसे नहीं मानते तो आप उसे भी न मानिये कि जो आपने पहिले दोष दिया था ; क्योंकि दोनों पक्ष समान हैं।

उत्तर—प्रियवर ! क्या ईश्वर ने जैसे आयु नियत की है। (जैसे कि तुम्हारा भी पक्ष हुआ है।) क्या इसी प्रकार प्राणियों के पाप पुण्य भी नियत कर दिये हैं, यदि किये हैं तो क्या तुम्हारे पास इस पक्ष का पोषक कोई श्रुति स्मृति अथवा युक्ति सिद्ध प्रमाण हैं ? यदि कहो कि ईश्वर सर्वज्ञ है तो इसलिये हम पूछते हैं कि क्या ईश्वर सर्वज्ञ होने से अपना अन्त भी जानता है यदि जानता है तो ईश्वर के सत्यज्ञानी होने से ईश्वर अनन्त नहीं रहेगा। यदि कहो कि ईश्वर का अन्त ही नहीं है, इसलिये जो पदार्थ अभावरूप है, उसको ईश्वर भावरूप नहीं जानता ; क्योंकि ईश्वर मिथ्याज्ञानी हो जायगा तो ऐसे ही यहाँ भी समझो कि

ईश्वर जीव के कर्मों को अव्यवस्थित ही जानता है अर्थात् यह ज्ञान नहीं है कि ये कर्म इस प्राणी के नियत हैं। क्योंकि यदि अनियत को नियत जान जावे तो ईश्वर मिथ्या ज्ञानी हो जावे इसलिये तुम्हारी शङ्का ही भ्रम मूलक है ; क्योंकि अनियत कर्मों का अनियत होने का ज्ञान ही सत्यज्ञान है ; परन्तु तुम्हारा पक्ष ही यह है कि आयु ईश्वर ने नियत की है, इसलिये नियत आयु का ही नियत होने का ज्ञान सत्य ज्ञान है न कि अनियत कर्मों के नियत होने का ज्ञान। इससे अनियत और नियत की परस्पर तुलना करना अयुक्त है।

यदि तुम यह कहो कि आयु भी नियत नहीं है तो किस अवधि से पहिले मरने को तुम अकाल मृत्यु कहोगे ? क्योंकि अनियत होने की दशा में कोई अवधि ही नहीं रहती। दूसरे अनियत मानने में तुम्हारे पहिले जो पक्ष किया गया था, उस पक्ष को भी हानि होगी। इससे प्रतिज्ञा हानि नामक निग्रहस्थान से निग्रहीय हो जाओगे। तीसरे आयु के अनियत मानने में ईश्वर का नियम ही क्या रहेगा आयु का मिलना किसी कर्म का फल न रहेगा। क्योंकि कर्म का फल अनियत नहीं होता तथा—

सतिमूले तद्विपाको ज़ात्यायुर्भोगाः। यो २। १३

अर्थात् मूल कर्मों के विद्यमान होने से ही योनि आयु और भोग होते हैं, इस महर्षि पतञ्जलि के वाक्य की क्या सङ्गति करोगे। क्योंकि जब योनि आयु और भोग तीनों विपाक हैं तो वात्स्यायन मुनि के कथनानुसार (जो कि आगे दिखाया भी जावेगा) सब कर्मों के पीछे के जन्मों में विपाक (फलदायक) होने से इस जन्म के कर्मों से अगाड़ी और पूर्व जन्मों के कर्मों

से वर्तमान जन्म की आयु नियत होनी चाहिए और तुमने जो यह कहा था कि जैसे दीपक अपनी आयुरूप तैल के होते हुए भी निर्वाण (बुझा हुआ) हो जाता है, ऐसे ही मनुष्य भी अपनी आयु से प्रथम मर जाता है।

यह भी ठीक नहीं। क्योंकि प्रथम तो दीपक की आयु जिसने नियत की है, वह मनुष्य होने से सर्वाज्ञ नहीं हो सकता। इससे दीपक के (तैल की समाप्ति मे पहिले) बुझ जाने से भी मनुष्य को जो यह ज्ञान था कि यह दीपक जब तक तैल रहेगा। तब तक प्रज्वलित रहेगा। यदि मिथ्या हो जावे तब भी कोई हानि नहीं। क्योंकि मनुष्य के ज्ञान में भ्रमादि दोष होना सम्भव है; परन्तु यदि आयु के नियत कर्ता सर्वाज्ञ सर्वशक्तिमान परमात्मा के ज्ञान में भी दोष आजावे तो बड़ी भारी हानि है। क्योंकि सर्वज्ञ होने से उसमें भ्रमादि दोप का होना असम्भव है, इससे अल्पज्ञ और सर्वज्ञ की तुलना करना बड़ा भारी अज्ञान है:—

दूसरे—तुमने जो यह दृष्टांत दिया कि दीपक तैल समाप्ति से पहिले ही बुझ जाता है तो यहाँ यह सोचना चाहिए कि जैसे किसी प्राणी की आयु सौ वर्ष की नियत की गई हो यदि वह पचास वर्ष की आयु में तुम्हारे कथनानुसार अकाल मृत्यु से मर जावे तो अब जो उसका दूसरा जन्म होगा तो वह शेप आयु पचास वर्प तक जीवेगा और पचास वर्ष की समाप्ति होने पर मर जावेगा। उस मनुष्य के विपय में तुम तो यह कहते हो कि यह सौ वर्प तक जीवित न रहा; किंतु पचास ही वर्ष में मर गया, इसलिये यह अकाल मृत्यु से मरा है यह कथन ठीक है अथवा वह अपने आयु के अनुसार ही मरा है यह कथन ठीक है। तुम्हारे निकट उन मनुष्यों के विपय में कि जो सौ वर्ष से पहिले ही मर जाते हैं, क्या प्रमाण है कि जो यह सिद्ध

करे कि यह अकाल मृत्यु से मरा है अथवा पूर्व जन्मों की भोगी हुई आयु से शेष रही, आयु को भोग कर।

तीसरे—तुम्हारे पक्ष में मनुष्य की सौ वर्ष की आयु होने में कल्पना करो कि किसी मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है और जब वह एक वर्ष का हुआ, तब किसी ने मार डाला। इसी प्रकार जब वही दूसरे जन्म में एक वर्ष का हुआ तब भी मार डाला। ऐसे ही तीसरे जन्म में प्रयोजन यह है कि अकाल मृत्यु के सम्भव होने से सौ बार हो। यदि एक-एक वर्ष की हो-होकर अकाल मृत्यु से मर जावे। अब उसने अपनी आयु में मरण जन्म का दुःख सुख तो भोगा ; परन्तु उसे कर्म करने का अवसर ही नहीं मिला। क्योंकि एक वर्ष के बच्चे को धर्माऽधर्म का अधिकार ही नहीं, इससे मनुष्य योनि जो उभय योनि माना गया है, वह नहीं रहा केवल भोग योनि ही रहा न कि कर्म योनि भी:—

प्रश्न—कर्म योनि, भोग योनि और उभय योनि इनको स्पष्ट करके समझाओ ?

उत्तर—त्रिधात्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोग देहो-भयदेहाः ॥ सां० ॥ ६ । १२४

महात्मा कपिलजी कहते हैं कि व्यवस्था से योनि तीन प्रकार की हैं १—कर्म योनि, २—उपभोग योनि, ३—उभय योनि। इन तीनों में से कर्म योनि वे ऋपि हैं कि जो सृष्टि के आदि में मुक्ति से लौटकर आते हैं, उन्हें कर्म योनि इसलिये कहते हैं कि वे पूर्व जन्म के पाप और पुण्य के अभाव से दुःख सुख नहीं भोगते ; किन्तु कर्म ही करते हैं अच्छे और बुरे कर्मों से बुरा फल उन्हें उस जन्म से अलग जन्मों में मिलता है और उनका वह जन्म पुनः तत्त्व ज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त होने के प्रयोजन

ईश्वर की दया से होता है ; परन्तु वे कर्म में स्वतन्त्र ही रहते हैं दूसरी योनि उपभोग योनि है वे ईश्वर के न्यायानुसार केवल दुःख-सुख भोगने के अर्थ ही होते हैं। पाप पुण्य करने के लिये नहीं— जैसे पशु पक्षी आदि तीसरे उभय योनि जो दुःख-सुख भोगने और कर्म करने के लिये भी होती हैं, जैसे मनुष्य स्त्री बस जो मनुष्य सौ वर्ष की आयु को लेकर एक-एक वर्ष का हो-हो कर सौ बार मर जावे तो उसे कर्म करने का अवकाश ही नहीं मिला तो उभय योनि न रही। चौथे—तुम्हारे पास इस विषय में क्या प्रमाण है कि मनुष्य की आयु सौ ही वर्ष की होती है। यदि नहीं है तो आयु की अवधि न होने से किसी अवधि मे पहिले मरने को अकाल मृत्यु कहोगे ?

उ०—सौ वर्ष की आयु होती है, इस विषय में शब्द प्रमाण है—जैसा कि सन्ध्या में भी लिखा है।

जीवेम शरदः शतम्

अर्थात् हम सौ वर्ष तक जीवें और दूसरा प्रमाण यह कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजीविषेच्छतꣳसमाः
एवंत्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ यजुः

अर्थात् ईश्वर उपदेश करते हैं कि जीव ! (वह) इस जन्म अथवा जगत में (कर्माणि कुर्वन्नेव जिजीविषेत) कर्मों को करता हुआ ही जीने की इच्छा करे, कब तक ! (शतꣳसमाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त, इससे क्या लाभ होगा ! (एवम् इस प्रकार से) (त्वयि नरे कर्म न लिप्यते) तुझ नर में कर्म लिप्त नहीं होगा पर मैं (नेतोऽन्यथास्ति) इससे अन्य प्रकार से कर्म लिप्त होने से पृथक् नहीं हो सकता। यहाँ भी सौ वर्ष की आयु बतलाई है।

परिहार तुमने जो इन दो मंत्रों से सौ वर्ष की आयु सिद्ध की है, वह ठीक नहीं ; क्योंकि तुमने पहिला मन्त्र यह दिया है कि—

जीवेम शरदः शतम्

हम सौ वर्ष तक जीवें। इससे तुम्हारा पक्ष यह सिद्ध नहीं होता है कि आयु सौ वर्ष की होती है। प्रत्युत यह मन्त्र प्रार्थना विषयक है, इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है। हम सौ वर्ष तक जीवें। इससे सौ वर्ष की ही आयु है।

यह सिद्धांत नहीं होता क्या जब यह प्रार्थना की जावे—'हे ईश्वर ! हमें चक्रवर्ती पूज्य का सुख दे' तब क्या यह सिद्ध होता है कि सब चक्रवर्ती राजा हैं, सब मनुष्यों का चक्रवर्ती राजा होना असम्भव नहीं तो क्या है ?

इसी प्रकार सौ वर्ष के जीने के लिये प्रार्थना किये जाने पर सब मनुष्यों की सौ वर्ष की आयु समझना भी अज्ञान है। वास्तव में प्रार्थना उस वस्तु की की जाती है, जो अपनी जाति में सबसे उत्तम हो। जितने राज्य हैं, उनमें सबसे बड़ा चक्रवर्ती राज्य है। इसलिये उसकी प्रार्थना की गई। इसी प्रकार जितने प्रकार की आयु है, उनमें सबसे बड़ी मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है, इसलिये उसकी प्रार्थना की गई। योगियों की चार सौ वर्ष तक अधिक-से अधिक रहती है, इससे उसको चार सौ वर्ष तक जीने के लिये इच्छा की गई इत्यादि। दूसरी प्रार्थना उस वस्तु की की जाती है, जो अप्राप्त (प्राप्त न हुई) हो और इष्ट भी हो, यदि हमें सौ वर्ष की आयु प्राप्त है, तो उसकी प्रार्थना कैसी ?

उ०—यदि हम यह मान लेंगे कि आयु तो सौ वर्ष की ही है ; परन्तु बीच में जो विघ्न आवेंगे, उनके हटाने के लिये प्रार्थना की जाती है, तब क्या कह सकोगे ?

समाधान—जब तुम्हारी अकाल मृत्यु अवश्य होनी है तो

क्या प्रार्थना करने से हट जावेगी ? अथवा क्या कहीं प्रार्थना का यह फल लिखा है ? यदि नहीं तो तुम्हारा कथन ही अयुक्त है और तुमने जो दूसरा मन्त्र यह दिया था कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ᳪसमाः ।
एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ यजुः ॥

इस मन्त्र से भी यह सिद्ध नहीं होता कि आयु सौ वर्ष की है ; किन्तु इसमें यह आज्ञा दी कि तू सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। क्या परमात्मा ने यहाँ यह आज्ञा दी है। तू सर्व शुभ कर्मों को कर और अशुभ कर्मों को परित्याग कर। इससे यह सिद्ध होता है कि सब जीवों ने शुभ कर्मों को ग्रहण और अशुभ कर्मों का परित्याग कर रक्खा है। इसी प्रकार ईश्वर की सौ वर्ष तक जीने की आज्ञा होने से भी यह सिद्ध नहीं होता कि सब मनुष्यों की सौ वर्ष की आयु है ; क्योंकि आज्ञा भी सौ वर्ष तक जीनेवाले को ही सौ वर्ष तक जीने के लिये दी जाती है। नहीं तो आज्ञा कैसी ?

पाँचवें तुम अकाल मृत्यु के मानने में इसका क्या उत्तर दोगे कि जो मनुष्य सौ वर्ष की आयु अपने कर्मानुसार प्राप्त होकर अकाल मृत्युवश बीच में मर गया और पुनः दूसरे जन्म में शेष सौ वर्ष की आयु को भोगा, ऐसी दशा में उसको जो एक मृत्यु और एक जन्म का दुःख हुआ, वह किस कर्म से हुआ ?

उस दुःख को तीन ही प्रकार से मान सकते हो या तो बिना कारण, यदि कारण से मानो तो उस दुःख के दो ही कारण हो सकते हैं अपने पाप अथवा अन्य के पाप से अकाल की मृत्यु। यदि कहो कि बिना कारण तो यहाँ सोचना चाहिए कि मृत्यु और

जन्म कार्य हैं ; क्योंकि होती हैं और कार्य बिना कारण होता नहीं, इसमें प्रमाण ।

कारणाभावात्कार्याभावः । वै० द०

अर्थात् कारण के न होने से कार्य भी नहीं होता । इससे बिना कारण मृत्यु जन्म नहीं हो सकते । यदि कहो कि कर्मों से अर्थात् पाप से, तो इस जन्म के अथवा पूर्व जन्म के कर्मों से ? यदि कहो कि पूर्व जन्म के कर्मों से तो अकाल मृत्यु ही नहीं रही ; क्योंकि पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही तो मृत्यु हुई जैसा कि ईश्वर ने उसके कर्मों के अनुसार नियत की थी । "यदि तुम कहो कि इस जन्म के ही पाप से हुई" इसमें प्रथम तो इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिल सकता जो कि आगे युक्ति वा प्रमाण पूर्वक निराग्रह पुरुषों को संतोष-जनक सिद्ध किया जावेगा ।

इस कारण प्रथम तुम यह बतलाओ कि इसी जन्म के कर्मों से ही अकाल-मृत्यु और अकाल जन्म होता है (क्योंकि दुःख सुख कर्मों का ही फल है) तो बहुत से मनुष्य एक, दो, तीन, चार, पाँच वर्ष के होकर भी मर जाते हैं अब बतलाओ कि उनके मृत्यु और जन्म के दुःख का क्या कारण है यह तो रहा ही नहीं ; क्योंकि तुमने जो यह कहा था कि इस जन्म के पाप ही का कारण है यह तो रहा ही नहीं ; क्योंकि एक दो वर्ष के बच्चे पाप व पुण्य कर ही नहीं सकते, जब कर ही नहीं सकते तो उनकी अकाल मृत्यु किस कर्म से हुई ?

प्र०—बहुत से मनुष्य यह कहते हैं कि माता पिता के कर्मों से ही उनके पुत्रों को दुःख और सुख होता है, इससे उनके ही कर्म से अकाल मृत्यु मान लें तो क्या हानि है ?

समाधान—यह बात सर्वथा अयुक्त है ; क्योंकि प्रथम तो

अन्य के कर्मों का फल अन्य को होता नहीं; जो कि आगे सिद्ध किया जावेगा। दूसरे यदि माता पिता के कर्मों से ही अकाल मृत्यु हो तो यह क्यों ? "कि एक पुत्र जीवित रहे और एक मर जावे" किन्तु दोनों पर एकसा ही प्रभाव होना चाहिए।

प्रश्न—हम उस बच्चे की मृत्यु पूर्वजन्म के कर्मों से ही मान लें तो क्या हानि है ? क्योंकि हम पूर्वजन्म के और इस जन्म के कर्मों से भी दुःख सुख मानते हैं।

समाधान—हानि तो कुछ नहीं; परन्तु यह स्मरण रहे कि तुम हमारे पक्ष का तो खण्डन कर ही नहीं सकते; क्योंकि उसको तुमने मान लिया है कि पूर्व जन्म के कर्मों से भी इस जन्म में फल मिलता है। इसका खण्डन करना तो अपना ही खण्डन करना है। तुम्हारा पक्ष है कि इस जन्म के कर्मों का भी फल मिलता है, इस विषय में तुम्हें प्रमाण देने की आवश्यकता है।

प्र०—यदि बिना कारण मान लें तो क्या और भी कुछ हानि है ?

स०—बिना कारण मानोगे तो तुम्हारा ईश्वर कैसे सिद्ध होगा; क्योंकि यदि बिना कारण कार्य हो सकता है तो बिना ही कारण सृष्टि, स्थिति, लय भी हो जायगा। पुनः सृष्टि, स्थिति और लय के कारण रूप ईश्वर का अनुमान कैसे होगा ?

प्र०—जो मनुष्य पाँच वर्ष से आगे पाप-पुण्य करने के अधिकारी हो जाते हैं, यदि हम उनकी सौ वर्ष से पहिले मृत्यु को अकाल मृत्यु मान कर उसका कारण उसके वर्त्तमान जन्म का पाप विशेष मान लेवें तो क्या हानि है ?

स०—प्रथम इससे कि तुम उसकी मृत्यु के कारण इस जन्म के पाप मानो, यह विचार लो कि इस जन्म के कर्मों (पाप-पुण्यों) का फल इस जन्म में मिल सकता है या नहीं ?

निस्सन्देह यह तुम्हारा अज्ञान है कि इस जन्म के कर्मों का फल इसी जन्म में मिल जावे।

प्र०—तुम्हारे निकट इस विषय में क्या प्रमाण है कि इस जन्म का फल इस जन्म में नहीं मिल सकता ?

स०—इस विपय में न्यायशास्त्र के आचार्य महर्षि गौतम जी अपने रचे हुए न्याय-दर्शन के चतुर्थाध्याय में बतलाते हैं कि फल इसी जन्म में मिलता है या दूसरे जन्मों में। हम यहाँ उस प्रकरण के सूत्रों को न्याय-दर्शन से उद्धृत करके लिखते हैं और अपने भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि ध्यान देकर अवलोकन करें। जैसा कि—

प्रेत्यभावानन्तरं फलं तस्मिन् । वा० भा०

भाष्यकार वात्स्यायन मुनिजी लिखते हैं कि न्याय के आत्मा आदि १२ प्रमेयों में प्रेत्यभाव के आगे "फल" प्रमेय है, इसलिये अब फल की परीक्षा करते हैं—

सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः। अ० ४। आ० १ सू० ४४।

अर्थात् पकाना आदि क्रिया का फल शीघ्र (तत्काल) देखने में आता है, जैसा कि भोजन कृषि (खेती) आदि क्रियाओं का फल कालान्तर में देखने में आता है—जैसे अन्नादिक इन दोनों प्रकारों के देखते हुये हमें हवनादि शुभ कर्म और हिंसादि अशुभ कर्म के फल में यह संशय होता है कि वास्तव में पाप पुण्य रूप क्रिया का फल (दुःख सुख) भोजन की भाँति पाप पुण्य के करने के पश्चात् ही मिलता है अथवा दूसरे जन्मों में—

आक्षेप—इस विषय में वाद विवाद करने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष देखने में आता है कि एक मनुष्य चोरी करता है।

और पकड़ा जाता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्काल चोरी का फल तत्काल ही मिल गया। इससे सिद्ध हुआ कि इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में मिलता है, अब क्या कह सकोगे, इसका उत्तर महर्षि गौतमजी देते हैं कि—

न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात्। अ० ४, आ० १, सू० ४५।

अभिप्राय यह है कि जो संसार में पकड़ा जाना आदि फल प्रतीत होता है, वह इस जन्म के कर्मों का फल नहीं है; किन्तु पूर्व जन्मों में जो कालान्तर में पाप किये थे, उनका फल है। इसी प्रकार इस जन्म में होनेवाले सब दुःख सुखों का कारण पूर्व जन्म के कर्म समझने चाहिये।

शङ्का—वाहजी वाह! जबकि प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि चोरी की और पकड़े गये और कहते भी हैं कि चोरी से पकड़ा गया। भला ऐसी प्रत्यक्ष सिद्ध बात का तुम कैसे खण्डन कर सकते हो? उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः।

परिहार—प्रियवर! तुम सोचो कि संसार में तीन प्रकार की दशा प्रत्यक्ष होती है, प्रथम यह है कि एक मनुष्य चोरी करता है और पकड़ा जाता है, द्वितीय यह कि एक मनुष्य चोरी करता है परन्तु पकड़ा नहीं जाता अर्थात् बहुत से चोर बच जाते हैं, तृतीय यह कि एक मनुष्य चोरी नहीं करता; परन्तु पकड़ा जाता है। अब यहाँ यदि उस कर्म का यह स्वभाव माना जावे कि वह वर्तमान जन्म में ही फल देता है तो सबको एक समान होना चाहिये अर्थात् यह न होना चाहिये कि एक मनुष्य पकड़ा जावे और एक नहीं; क्योंकि स्वभाव बदला नहीं करता। यदि मानें कि ईश्वर फल देता है तो भी यह न होना चाहिये क्योंकि ईश्वर

न्यायकारी और सबके लिये समान होने से यह नहीं कर सकता कि एक के कर्म का फल अभी देवे और एक का अन्य जन्म में।

प्र०—यदि हम यह मानलें कि जिसके पूर्व जन्म के पुण्य विशेष हों, वह पकड़ा जाता और जिसके पुण्य विशेष न हो, वह पकड़ा जाता है तो क्या हानि है ?

उ०—मानना न मानना कोई मनमानी बात नहीं है, जब तक कि कोई प्रमाण न हो, क्या तुम्हारे निकट इस विषय में कोई प्रमाण है ? यदि नहीं तो अप्रामाणिक सिद्धान्त का उत्तर ही क्या दिया जावे ?

प्र०—जो मनुष्य चोरी करके पकड़ा जाता है, वह भिन्न काल भिन्न देश और भिन्न अवस्था आदि के कारण। ऐसे ही जो नहीं पकड़ा जाता, वह भी भिन्न काल, देश और अवस्था आदि के कारण, इसका क्या उत्तर दे सकोगे ?

उ०—क्या तुम्हें विदित नहीं कि देश कालादि दुःख रूप बन्धन के हेतु नही हो सकते—जैसा कि महर्षि कपिलजी ने भी अपने सां० द० में लिखा है कि—

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्। सां० द० १२।

अत्र विज्ञान भिक्षु व्याचष्टेनाऽपि काल सम्बन्ध निमित्तकः पुरुषस्य बन्धः/कुतः ? व्यापिनो नित्यस्य कालस्य सदा सर्वाविच्छेदेन सर्वदा मुक्तामुक्त सकल पुरुष सम्बन्धात्। सर्वावच्छेदेन सकल पुरुषाणां बन्धापत्ते रित्यर्थः।

अर्थात् पुरुष को जो दुःखरूप बन्धन होता है, वह काल के सम्बन्ध से नहीं होता। क्योंकि काल के नित्य व सर्व व्यापक

होने से सबको सर्वदा दुःख होना चाहिए। अर्थात् मुक्त और अमुक्त इन दोनों के साथ काल का सम्बन्ध है यदि काल के सम्बन्ध से दुःख माना जावे तो मुक्त भी (मुक्ति की अवधि से प्रथम ही) बद्ध हो जायेंगे, इससे सिद्ध हुआ कि काल से दुःख नहीं होता।

यदि कहो कि देश के सम्बन्ध से ? दुःख रूप बन्धन होता है, यह भी ठीक नहीं क्योंकिः—

न देशयोगतोऽप्यस्मात्। सा० द० १३।

देशयोगतोऽपि न बन्धः। कुतः ? अस्मात् पूर्व सूत्रोक्तान्मुक्तामुक्तसर्व-पुरुष-सम्बन्धात्। मुक्तस्यापि बन्धापत्तेरित्यर्थः। वि० भिक्षुः॥

अर्थात् देश [जगह] के सम्बन्ध से भी दुःख रूप बन्ध नहीं होता। क्योंकि जो पहिले सूत्र में दोष दिये हैं वे यहाँ भी आ जायेंगे। अर्थात् देश भी सर्व व्यापक और नित्य होने से मुक्त और अमुक्त जितने भी जीव हैं। उन सबके साथ सम्बन्ध रखता है। इससे मुक्त जीव भी मुक्ति की अवधि से पहिले ही बन्धन में आ जायेंगे, इससे देश के सम्बन्ध से बन्धन नहीं हो सकता। यदि कहो कि अवस्था के निमित्त से बन्धन दुःख प्राप्ति होता है, यह भी ठीक नहीं है क्योंकिः—

नावस्थातो देहधर्मत्वात्तस्याः। सां० द० १४

संघात-विशेष-रूपताख्या देहरूपा याऽवस्था न तन्निमित्तकोऽपि पुरुषस्य बन्धः। कुतः ? तस्या अवस्थाया देहधर्म्मत्वात्। अचेतन-धर्म्मत्वादित्यर्थः। अन्यधर्मस्य

साक्षादन्यधर्मत्वाऽति प्रसङ्गात् ॥ मुक्तस्यापि बन्धापत्ते रित्यर्थः ॥ इति विज्ञान भिक्षुः ॥

अर्थात् बाल्य, युवा, वृद्ध होने में शरीर की नाना प्रकार की अवस्था होती है अर्थात् शरीर के संघात विशेष (परमाणुओं का निस्सरण और प्रवेश होते हुए अवयवों के घटने बढ़ने आदि से जो एक देह का समुदाय हो जाता है, वह बाल्य, यौवन और वृद्धत्व में प्रकारान्तर हो जाता है) से बन्धन नहीं होता। क्योंकि वह अवस्था पुरुष [आत्मा] से भिन्न का धर्म्म है, आत्मा न बालक है न युवा है और न ही वृद्ध है ; किन्तु शरीर की ही ये अवस्था है, जिस लिये कि अवस्था शरीर का धर्म्म है, इसलिये इससे पुरुष का बन्धन नहीं हो सकता। क्योंकि अन्य के धर्म्म से अन्य बद्ध नहीं हुआ करता। यदि मान लें कि अन्य के धर्म्म से अन्य का बन्धन और मोक्ष हो सकता है तो अति प्रसंग हो जावे अर्थात् किसी बद्ध जीव के धर्म से मुक्त जीव बद्ध हो जायगा और मुक्त जीव के धर्म से कोई बद्ध मुक्त हो जायगा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि अवस्था से बन्धन नहीं होता।

असङ्गोऽयं पुरुष इति । सां० द० १५ ।

इति शब्दो हेत्वर्थे, पुरुषस्यासंगत्वादवस्थाया देहमात्र-धर्मत्वम् । इति पूर्वसूत्रेणान्वयः । पुरुषस्याऽवस्थारूप विकार-स्वीकारे विकारहेतुसंयोगाख्यः संगः प्रसज्येतेति भावः । असंगत्वे च श्रुतिः। स यदत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवति असंगोह्ययं पुरुष इति । संगश्च संयोगमात्रं न भवति। कालदेश सम्बन्धस्य पूर्वमुक्तत्वात् । श्रुतिस्मृतिषुपद्मपत्रस्थ

जलेनेव पद्मपत्रस्थस्यासङ्गतायाःपुरुषस्याऽसंगतायां दृष्टांततः श्रवणाच्च । इति विज्ञान भिक्षुः ॥

यह शङ्का थी कि यदि पुरुष का ही धर्म अवस्था माना जावे तब उससे बन्धन होने में कोई दोष नहीं । इस विषय में महर्षि कपिल जी समाधान करते हैं कि इस पुरुष का किसी वस्तु से भी संग नहीं है ; किन्तु यह पुरुष असङ्ग है, क्योंकि पुरुष की अवस्था विशेष रूप को पुरुष में विकार मानने में पुरुष में विकार का हेतु जो कि संयोग [जैसा कि दो परमाणुओं में होता] है । वह मानना पड़े, इससे पुरुष असंग नहीं रहेगा ; परन्तु श्रुति में यह लिखा है कि—

असङ्गो ह्ययं पुरुष इति—

क्योंकि यह पुरुष असंग है । यहाँ संग का अर्थ संयोगमात्र नहीं लिया ; क्योंकि पहिले सूत्रों में काल और देश का संयोग कह आये हैं अर्थात् संयोग मात्र तो पुरुष और कालादि का होता है परन्तु···की भाँति नहीं होता तिस पर भी श्रुति स्मृति के अनुसार जैसे कमल का पत्र [पत्ता] जल में रहता हुआ भी उसमे सम्बन्ध नहीं करता । ऐसे ही जीवात्मा कालादि से संयोग होने पर भी उससे सम्बन्ध नहीं करता ; किन्तु अविद्या से अपने को फँसा हुआ समझ लेता है । इससे सिद्ध हुआ कि देश, काल, अवस्था आदि पुरुष के बन्धन के हेतु नहीं हैं, इस कारण तुमने जो हेतु माना था, वह नहीं रहा । अब इससे आगे न्याय-दर्शन में जो और परीक्षा की है वह भी सुनिये ।

अगाड़ी सूत्रों के लिखने से प्रथम सर्व साधारण को यह भी जतला देना आवश्यक है कि इन सूत्रों के जो अर्थ किये जावेंगे वे सब वात्स्यायन मुनिजी के भाष्य और पञ्चानन

भट्टकृत वृत्ति के अनुकूल किये जावेंगे। यदि किसी को इन अर्थों में कुछ भी सन्देह हो, वह प्रशंसित पुस्तकों से मिलावे सबके सब मिल जावेंगे और शङ्का निवृत्त हो जावेगी। निदर्शनवत् हम पूर्व के दोनों सूत्रों का अर्थ जो कि वात्स्यायन जी ने लिखा है, वह लिखे देते हैं, शेष सूत्र पाठक वर्ग भाष्य में स्वयं देख लेवें।

४४ वें सूत्र—सद्यः कालान्त इत्यादि पर बात्स्यायनजी "पचति दोग्धीति सद्यः फलमोदन पयसी, कृपति वयतीति कालान्तरे फलं शस्याऽधिगम् इति। अस्ति चेयं क्रिया अग्निहोत्रं जुहूयात् स्वर्ग काम इति एतस्या फले संशयः"।

इसको हमारे लिखे भापार्थ से मिलाओ तथा ४५ वें सूत्र न सद्यः कालान्त० इस पर वात्स्यायन मुनि "स्वर्गः फलं श्रूयते तच्च भिन्नेऽस्मिन देह भेदाद् उत्पन्नते इति न सद्यो ग्रामादिकानामारम्भफल मिति"।

इसको भी हमारे लिखे भापार्थ से मिलाओ ठीक अर्थ मिल जायगा। अगले सूत्रों का अर्थ भी जिसकी इच्छा हो मिलावे। अब पूर्व पक्ष करते हैं कि—

कालान्तरेणाऽनिष्पत्तिर्हेतु विनाशात् ॥ ४६ न्या० द०

अर्थात् तुम्हारा जो यह सिद्धांत है कि कर्म का फल वर्तमान जन्म में नहीं होता यह ठीक नहीं क्योंकि कर्म दुःख और सुख का कारण है। जब हम इस जन्म में कर्म कर चुके तो कर्म का नाश अभाव हो गया जब कर्म का अभाव हो गया तो दूसरे जन्मों में फल किसका मिलेगा; क्योंकि कर्म कारण है और दुःख सुख उसके कार्य हैं बस जब कारण अर्थात् कर्म का वर्तमान जन्म में नाश हो गया तब दूसरे जन्म में कार्य दुःख सुख कैसे हो सकते हैं; क्योंकि कारण के नाश हो जाने पर

कार्य नहीं रहता, यह उन मनुष्यों का पक्ष है कि जो इस जन्म के कर्मों का फल इसी जन्म में मानते हैं अर्थात् भोगवादी नहीं हैं, इसका उत्तर महर्षि गौतमजी यह देते हैं कि—

प्राङ् निष्पत्तेर्वृक्षफलवत्तत्स्यात् । न्या० द० ४७

अर्थात् जैसे वृक्ष और फल का कारण बीज है ; परन्तु वृक्ष और फल तभी उत्पन्न होंगे कि जब बीज (लगकर) नष्ट हो जायगा, जब तक बीज नष्ट न हो जावे तब तक न तो वृक्ष उत्पन्न होता है और नहीं उसके फल उत्पन्न होते हैं बस जैसे कि बीज के (पहिले ही) नष्ट हो जाने से ही उसके फल उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार कर्मों (पाप पुण्यों) के नष्ट हो जाने पर भी जन्मान्तरों में दुःख सुख होते हैं, इससे कोई भी दोष नहीं और जैसे बीज की विद्यमानता में वृक्ष फल नहीं उत्पन्न होते । इसी प्रकार वर्तमान कर्मों का फल वर्तमान में नहीं होता ।

प्रश्न—तो वैशेपिक का यह सूत्र कैसे सत्य होगा कि 'कारणाभावात् कार्याभावः'

अर्थात् कारण के अभाव से कार्य का अभाव होता है ।

उ०—यहाँ उपादान कारण से अभिप्राय है—जैसा कि घट के प्रति मट्टी किन्तु निमित्त कारण मे प्रयोजन नहीं ; क्योंकि वर्तमान में देखा जाता है कि निमित्त कारण कुलाल (कुम्हार) के नाश होने पर भी घट का नाश नहीं होता । इससे दुःख सुख के निमित्त कर्मों के नाश होने पर भी दुःख सुख होते हैं और ऐसे ही बीज के नाश होने पर भी वृक्षादिक ।

प्रश्न—जैसे हम खेती आदि कर्म का फल इसी जन्म में प्राप्त कर लेते हैं यदि इसी प्रकार पाप पुण्यादि का फल इसी जन्म में लें तो क्या हानि है ?

उ०—यह ठीक नहीं ; क्योंकि जैसे वृक्ष सम्बन्धी जितने भी काम किये जाते हैं। बोना सींचना आदि उन सबका उद्देश्य वृक्ष रूप फल की उत्पत्ति है—बस इसी प्रकार प्राणिमात्र के जितने कर्म हैं, वे सब सुख दुःख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्तिरूप उद्देश्य को लेकर हैं। जबतक हमें उसका फल मिल जावे, तब तक ही वर्तमान काल माना जाता है—बस तुमने जो वर्तमान की कृषि आदि क्रिया से वर्तमान कर्मों की तुलना की थी, वह ठीक नहीं क्योंकि जैसे खेती आदि के आरम्भ से लेकर समाप्ति तक वर्तमान काल है, इसी प्रकार सम्पूर्ण कर्मों का भी फल प्राप्ति तक (चाहे जब हो) वर्तमान काल समझना उचित है, इस पर वात्स्यायन मुनिजी ने भी कहा है कि—

आरब्धक्रियासन्तानो वर्त्तमानः कालः पचतीति ।

अर्थात् आरम्भ से समाप्ति तक सब क्रिया वर्तमान काल की होती है—"जैसे पकाता है" यहाँ पकाना रूप क्रिया के आरम्भ से लेकर पकाने की समाप्ति तक वर्तमान काल कहाता है ; क्योंकि भूत काल तब होता है, जब यह कहते कि पका चुका अर्थात् क्रिया की समाप्तिहो गई और भविष्यत् तब होता, जब यह कहते कि पकावेगा। यहाँ क्रिया का आरम्भ ही नहीं हुआ इत्यादि बस इसी प्रकार पाप पुण्य के आरम्भ से लेकर समाप्ति अर्थात् उनके फल दुःख सुखादि की प्राप्ति तक वर्तमान काल समझो।

शङ्का—तुम्हारे इस कथन से भी हमारी शङ्का का परिहार नहीं हुआ ; क्योंकि जब हम इसी जन्म में फल प्राप्ति मानेंगे, तब पुण्य पाप के आरम्भ से लेकर इसी जन्म में जब तक फल (दुख या सुख) मिलेगा, तब तक वर्तमान काल मान लेंगे। प्रयोजन यह कि तुमने जो न्याय दर्शन के सूत्रों से यह सिद्ध

किया था कि 'दुःख और सुख रूप फल पाप, पुण्य के करने के काल (अर्थात् जब पाप पुण्य करें उसी काल) में नहीं हुआ करते, इस सिद्धान्त से हमारे सिद्धान्त में कुछ हानि नहीं हुई क्योंकि जैसे खेती आदि का फल न तो उत्काल ही मिलता और नहीं जन्मान्तर में मिलता है प्रत्युत इसी जन्म में कुछ *कालांतर में मिल जाता है* इसी प्रकार पापादि का फल भी अन्य *जन्मों में नहीं मिलता,* हाँ इसी जन्म में कालांतर में मिल जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि आप कर्म फल की प्राप्ति को अन्य जन्म में सिद्ध न करके न्याय दर्शन से कालांतर में सिद्ध करते हुए भी 'भोगवाद, को सिद्ध करना चाहें तो नहीं हो सकता। इसलिये यदि आप के निकट कोई न्यायदर्शन का ऐसा प्रमाण है कि जिससे कालांतर ही नहीं किन्तु जन्मांतर में ही कर्म फल सिद्ध करे तो बतलाइये।

समाधान—आपने जो शङ्का की वह ठीक है अर्थात् अनेक मनुष्यों को यह भ्रम हो सकता है कि कालांतर से अभिप्राय आगामी जन्म कैसे हो सकता है ? इस शंका का समाधान महर्षि गौतमजी के सूत्रों से स्वयं हो जाता है कि गौतमजी ने "कालांतर से अभिप्राय जन्मान्तर ही लिया है" इस बात को हम आगे दिखलावेंगे परन्तु क्रमागत प्रकरण में वादी ने "भोगवाद" विषय में एक और शङ्का की है, इसलिये प्रथम हम उस शंका का उत्तर बतला देवें।

शंका—वादी यह शंका कि तुम्हारा जो यह सिद्धान्त है। "पाप व पुण्य दुःख तथा सुख के कारण हैं।" यह सिद्धान्त तब सत्य हो जब आप संसार में कार्य कारण भाव अर्थात् कार्य और कारण का होना सिद्ध करदें क्योंकि यह बात प्रमाण सिद्ध है कि—"न कोई किसी वस्तु का कारण है और न कोई वस्तु किसी

का कार्य है।" यदि कोई कहे कि इसमें क्या प्रमाण है तो इस विषय में वादी न्याय दर्शन का यह (पूर्व पक्ष का) सूत्र प्रमाण में देता है कि—

नासन्नसन्नसदसत्सदसतोर्वैधर्म्यात्, न्या० द० अ० ४ आ० १ सू० ४८।

अर्थ—कोई पदार्थ किसी पदार्थ का कारण और कार्य नहीं; क्योंकि कार्य कारण भाव मानने में इन तीन बातों का उत्तर नहीं हो सकता, प्रथम यह कि कारण से जो कार्य उत्पन्न होता है, वह कार्य अपनी उत्पत्ति से प्रथम कारण में था या नहीं? यदि कहो की "कार्य कारण में नहीं था तो उपादान कारण का नियम नहीं रहे अर्थात् न तो वट के बीज में वृक्ष है और नहीं सर्षप [सरसों] के बीज में वृक्ष है। जब दोनों ही वृक्ष से रहित है, तो बट [बड़] के बीज से बट का वृक्ष क्यों उत्पन्न हो? तथा सरसों के बीज से सरसों का ही वृक्ष क्यों? यदि कहो कि बड़ के बीज में बट तथा सरसों के बीज में सरसों का वृक्ष प्रथम ही था तो तुम्हारा यह सिद्धान्त नहीं रहा कि कार्य कारण में अपनी उत्पत्ति से प्रथम विद्यमान् नहीं रहता, इससे सिद्ध हुआ कि कार्य अपनी उत्पत्ति से प्रथम ही कारण में विद्यमान् रहता है, अब दूसरी बात यह है कि कार्य को यदि अपनी उत्पत्ति से प्रथम ही विद्यमान् माना जावे तो वह उत्पन्न ही नहीं हुआ; क्योंकि उत्पन्न वह होता है जो पहिले न हो और फिर हो जावे; परन्तु कार्य उत्पन्न होने से पहिले ही रहता है तो न वह उत्पन्न हुआ और न कोई उसका कारण; क्योंकि कारण भी उसी वस्तु का हुआ करता है जो अनित्य हो—बस जो वस्तु उत्पन्न न हो वह अनित्य है और न कोई उसका कारण है। तीसरी बात यह कि यदि कोई कहे कि हम

कार्य को उसकी उत्पत्ति से प्रथम विद्यमान् और अविद्यमान् भी मान लें अर्थात् कार्य उत्पन्न होने से पहिले होता भी है और नहीं भी होता यह भी ठीक नहीं, क्योंकि किसी पदार्थ में दो विरोधी धर्म [स्वाभाविक] नहीं होते। यदि हम कार्य उत्पत्ति से प्रथम होना और न होना भी मानलें तो ये दोनों विरोधी हैं, विरोधी होने से एकाधिकरण अर्थात् कार्य में नहीं रह सकते, इससे क्या सिद्ध हुआ कि न कोई किसी का कार्य है और नहीं कारण है। जब यह सिद्धान्त हुआ तो पाप और पुण्य भी दुःख सुखादि के कारण नहीं, जब यह सिद्धान्त हुआ तो पाप से दुःख और पुण्य से सुख कभी नहीं मिल सकता। इसलिये तुम्हारा जो यह पक्ष था कि कर्मों का फल दूसरे जन्मों में मिलता है, यह नहीं रहा क्योंकि जब दुःख सुख के कारण ही पाप पुण्य नहीं है तो उनसे दुःख सुख कैसे, इस शङ्का का समाधान महर्षि गौतमजी इससे अगले सूत्र में करते हैं कि—

उत्पादव्ययदर्शनात् । न्या० द० । १४ ॥ ४३

अर्थ—महर्षि गौतमजी कहते हैं—'हमारा यह सिद्धांत है कि कार्य अपनी उत्पत्ति से प्रथम कारण में नहीं होता ; किन्तु उत्पन्न होता है क्योंकि संसार में देखा जाता है कि पदार्थों की उत्पत्ति और नाश दोनों होते हैं यदि कार्य उत्पन्न होने से पहिले ही विद्यमान रहता है तो उत्पत्ति ही किसकी हो; और जब किसी की उत्पत्ति न हो तो नाश ही किसका हो ; परन्तु यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध हैं, अर्थात् प्रत्यक्ष में उत्पत्ति और नाश दोनों देखने में आते हैं इसलिये यह बात ठीक नहीं कि कार्य उत्पत्ति से पहिले ही विद्यमान रहता है तथा च।

बुद्धिसिद्धन्तुतदसत् । न्या० द० ४ । १ । ५०

अर्थ—यह बात बुद्धि से भी सिद्ध है कि प्रत्येक वस्तु सब पदार्थों का कारण नहीं होती ; क्योंकि यदि सब वस्तुओं का कारण हो तो तो जो मनुष्य आम का वृक्ष बोना चाहता है, वह आम के ही बीज से आम का वृक्ष बोने के लिये प्रवृत्त नहीं होता ; प्रत्युत प्रत्येक बीज से ही आम का वृक्ष बोने को प्रवृत्त होता ; परन्तु यह सब जानते हैं आम के ही बीज में ऐसी शक्ति है कि जो आम का वृक्ष उत्पन्न करे और में नहीं, इससे सिद्ध हुआ कि कार्य कारण भाव सत्य ही है। पाठकों को यह भी अवगत हो कि वादी ने जो यह कहा था कि उपादान का नियम अर्थात् अमुक बीज से ही अमुक वृक्ष उत्पन्न हो, यह नहीं रहेगा। यदि हम उस वृक्ष को उत्पन्न होने से पहिले ही मानलें, इसका उत्तर उक्त समाधान में यह दिया गया है कि यद्यपि बीज के अन्दर वृक्ष नहीं होता क्योंकि वृक्ष के स्थूल होने से सूक्ष्म रूप बीज के अन्दर रहना असम्भव है तथापि प्रत्येक बीज में उस वृक्ष के ही उत्पन्न होने की शक्ति ईश्वर ने रखदी है, जिस कारण वह उसी वृक्ष को उत्पन्न कर सकता है, जिसका कि यह बीज है ; परन्तु यहाँ कोई ऐसी शंका करे कि बीज के अंदर यदि वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति है तो जब तक हम उस बीज को बोते नहीं तब ही क्यों नहीं वृक्ष को उत्पन्न कर देता। इससे बीज के ही अंदर शक्ति नहीं है। इस शंका का उत्तर यह है कि शक्ति ऐसा गुण है कि जो अनुद्भव दशा [जाहिर न होने की हालत] और उद्भव दशा (जाहिर होने की हालत) इन दोनों दशाओं में रहता है—जैसे मनुष्य में बोलने की शक्ति है ; परन्तु मनुष्य को इच्छा है कि वह बोले या न बोले अर्थात् जब बोलता है, तब उसकी शक्ति प्रकट होजाती है और जब नहीं बोलता तब प्रकट तो नहीं होती ; परंतु शक्ति रहती अवश्य है—इसी प्रकार बीज को बोना आदि उपयोगी कर्म करने

से उस बीज की शक्ति प्रकट हो जाती है और जब तक नहीं तब तक यद्यपि बीज की शक्ति प्रकट तो नहीं होती तथापि उस बीज में रहती अवश्य है और यही कारण है कि प्रत्येक बीज से सर्व प्रकार के वृक्ष फल, शाखा आदि उत्पन्न नहीं होते। क्योंकि उसमें सर्व प्रकार के वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है, यही प्रत्येक कारण का सर्व कार्यों के उत्पन्न न करने का कारण है।

अब हम पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि 'हम प्रथम कह आये थे कि गौतमजी के न्याय दर्शन के चतुर्थाध्याय के प्रथम आह्निक में जो फल प्राप्ति (अर्थात् कर्मों का फल तत्काल मिलता है वा कालांतर में इस विषय की परीक्षा) का प्रकरण है, वहाँ तत्काल का अभिप्राय इस जन्म का है और का अभिप्राय आगामी जन्म अर्थात् इस जन्म के भिन्न अगले जन्मों का है इसी अभिप्राय को प्रकट करनेवाले उसी प्रकरण के सूत्र में हैं कि—

आश्रयव्यतिरेकाद् वृक्षफलोत्पत्तिवदित्यहेतुः । न्या० द० ४ । १ । ५ ।

अर्थ—यह सूत्र पिछले सूत्र अर्थात् 'न सद्यः कालान्तरे' इस सूत्र से लेकर 'बुद्धि सिद्धं तु तद्सत्' इस सूत्र पर्यन्त सूत्र से आगे का पूर्व पक्ष सूत्र है। इस सूत्र में वादी 'महर्षि गौतम' के इस सिद्धांत में कि 'जिस जन्म में मनुष्य पाप पुण्य रूप शुभाशुभ कर्म करता है, उसी जन्म में उस कर्म का फल नहीं मिलता; किन्तु अगले जन्मों में मिलता है, यह शङ्का करता है कि तुम्हारा यह सिद्धांत ठीक नहीं कि कर्म करें भिन्न जन्म में और उसका फल मिले भिन्न जन्म में। क्योंकि यह सिद्धांत तुम्हारे दिये हुए वृक्ष के ही दृष्टांत से खण्डित हो जाता है अर्थात् तुमने जो यह कहा था कि जैसे वृक्ष रूप फल का बीज कारण है अर्थात्

बीज के बिना फल उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार बिना कर्म रूप बीज कारण के उसका फल दुःखादि उत्पन्न नहीं होता—जैसे बीज के नष्ट होने (पृथ्वी में लग जाने) के अनन्तर ही कालांतर में बल उत्पन्न होता है न तो बीज के नष्ट हुए बिना फल उत्पन्न होता और न ही (नष्ट होने के अनंतर) भी तत्काल अर्थात् उसी समय फल उत्पन्न होता। इसी प्रकार न तो कर्मों के नष्ट हुए बिना उसका फल होता और नष्ट हो जाने पर भी तत्काल भी नहीं मिलता इत्यादि। दृष्टांत से ही तुम्हारा सिद्धांत स्थिर नहीं रहता। इसका कारण यह समझो कि तुम्हारे बीज, वृक्ष और फल के दृष्टांत में बीज और बोना कर्म का उदाहरण है, फल दुःखादि का और वृक्ष शरीर का (क्योंकि जैसे बोना सींचना आदि कर्म और फल दोनों वृक्ष के आश्रय हैं, इसी प्रकार पापादि कर्म और दुःखादि फल भी दोनों शरीर के आश्रय हैं। अतः वृक्ष शरीर का उदाहरण है।) यहाँ वादी यह कहता है कि जैसे सींचना आदि कर्म और (वृक्ष के) फल लगना आदि उस कर्म का फल दोनों का आश्रय एक ही वृक्ष है, दो वृक्ष नहीं अर्थात् हम जिस वृक्ष को सींचते हैं, उसी वृक्ष से हमको उसका फल मिलता है, यह नहीं कि हम सींचें और वृक्ष को और फल मिले और वृक्ष से इससे सिद्ध हुआ कि बोना, सींचना आदि कर्म उसका फल (वृक्ष के जो आम्रादि फल लगते हैं वे) दोनों एक ही वृक्ष के आश्रय [सहारे] हैं; परन्तु जो तुम्हारा दृष्टांत [जिस कर्म फलादि के लिये वृक्ष का दृष्टांत दिया था वह] है वहाँ दोनों अर्थात् कर्म रूप बीज का और दुःखादि रूप फल का एक ही आश्रय नहीं है। क्योंकि जिस शरीर में कर्म किया जाता है उसी शरीर में दुःखादि फल नहीं मिलता अर्थात् वृक्ष की भाँति कर्म रूप बीज का और दुःखादि फल का एक ही आश्रय

नहीं, इसलिये तुमने जो वृक्ष और बीज का तथा फल का दृष्टांत दिया था, उससे यह सिद्ध नहीं होता कि किसी और किसी जन्म में फल मिले। किंतु यह सिद्ध होता है कि कुछ काल में इसी जन्म में फल मिल जाता है।

पाठक महाशयो ! अब आप ध्यान दें कि यदि गत सूत्रों में आये हुए "कालान्तर" इस शब्द से गौतम जी का कदाचित् दूसरे जन्म का अभिप्राय न होता किन्तु किसी जन्म में कर्म करने के काल से भिन्न काल का ही अभिप्राय होता तो क्या वादी का यह सूत्र 'जिसका अभिप्राय इस जन्म से नहीं किंतु अन्य जन्म से है यह अति स्पष्ट है, इस विषय में व्यर्थ न होता क्योंकि शंका उसी पक्ष में की जाती है कि जिसको वादी मानता हो इस लिये कि वादी ने अन्य जन्म के कर्मों का फल अन्य जन्म में मिलता है इस जन्म में नहीं इस सिद्धांत में शंका की है, इस लिये गौतमजी का यही सिद्धांत समझना चाहिये और दूसरे इस शंका का उत्तर भी गौतमजी ने ऐसा ही दिया है कि जिससे कालान्तर से अभिप्राय जन्मान्तर स्पष्ट हो जाता है इस लिये पहिले जो कालान्तर शब्द आया है, उसका अभिप्राय इस जन्म से नहीं।

वादी ने जो ५१ वें सूत्र में शंका की थी, उसका व्युदास [परिहार अर्थात् खण्डन] ५२ वें सूत्र में यह करते हैं कि—

प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः । न्या० द० ४ । १ । ५२

अर्थ—वादी ने जो उक्त सूत्र में यह कहा था कि बीज, वृक्ष फलादि का दृष्टान्त जो कि कर्म शरीर और फल (दुःख सुख के लिये दिया था, वह ठीक नहीं ; क्योंकि बीज और फल का आश्रय एक ही वृक्ष है ; परन्तु कर्म और दुःख सुख का आश्रय एक ही

शरीर नहीं है। इस शंका का समाधान महर्षि गौतम करते हैं कि हमारे सिद्धांत में भी एक ही आश्रय है ; क्योंकि हम कर्ता और भोगता शरीर को नहीं मानते, जिससे तुम्हारा यह कहना ठीक हो कि पाप और पुण्य का आश्रय अन्य शरीर है तथा दुःख सुख का अधिष्ठान [आश्रय] अन्य किन्तु हम कर्ता और भोगता आत्मा को ही मानते हैं शरीर मन इन्द्रियादिक तो आत्मा के भोग के साधन हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसे मूल (जड़) का सींचना आदि कर्म [जो कि उस वृक्ष का कारण है] और उस वृक्ष के फल [जो कि उस सेचन क्रिया का फल है ये दोनों] एक ही वृक्ष के आश्रित होते हैं, अर्थात् जिस वृक्ष को सींचते हैं, उसी वृक्ष के फल लगते हैं न कि सींचें और वृक्ष को और फल लगें और वृक्ष के इसी प्रकार यहाँ भी कर्म और दुःख सुख का आश्रय एक ही आत्मा है अर्थात् यद्यपि दूसरे जन्म में वे शरीर इन्द्रियादि नहीं रहते कि जिससे आत्मा ने पापादि कर्म किये थे ; किन्तु ईश्वरीय नियम से अन्य शरीरादिक प्राप्त होते हैं तथा जो कर्तृत्व और भोक्तृत्व अर्थात् कर्म करने और फल भोगने का आश्रय है वह तो एक ही है, जिस आत्मा ने कर्म किये, थे वही फल भोगता है अथवा जो आत्मा कर्म का आश्रय है, वही दुःख सुखादि का। क्योंकि आत्मा नित्य है एक ही आत्मा पापादि कर्म करता है पुनः वही आत्मा जन्मान्तर में जाकर फल भोगता है, इसी से सिद्ध हुआ कि यदि महर्षि गौतम का यह सिद्धान्त होता कि कर्म और फल का आश्रय शरीर ही है तब वादी की शंका ठीक होती कि आश्रय भिन्न-भिन्न हैं। अथवा यह होता कि कर्म और फल का आश्रय रूप जो आत्मा है वह भिन्न है, अर्थात् कर्म करने वाला आत्मा फल नहीं भोगता, और फल भोगने वाले आत्मा ने कर्म नहीं किये, या यह कहिये

कि आत्मा अनित्य है, इस सिद्धान्त के मानने पर गौतम जी का सिद्धान्त ठीक न होता ; परन्तु गौतम जी का इनमें से कोई भी सिद्धान्त नहीं, इस लिये वादी का आक्षेप ठीक नहीं।

शंका—इस सूत्र पर वादी यह आशंका करता है कि तुम्हारा यह कथन कि दुःखादि फल, और तत्कारण पापादि कर्म का आश्रय एक ही आत्मा है जैसे कि उदाहरण में वृक्ष है—वह कथन ठीक नहीं क्यों कि इसका सत्य होना तब सम्भव हो जब तुम यह सिद्ध कर दो कि कर्मों का फल वास्तव में दुःख सुखादिक ही होता है अर्थात् जैसे वृक्ष का नियम है कि कर्म और फल का आश्रय एक ही होता है। इस प्रकार यहां नहीं है क्योंकि आग में दुःख सुख मात्र को ही फल नहीं बतलाया किन्तुः—

न पुत्र पशु स्त्री हिरण्यान्नादिफलनिर्देशात् न्या० द० अ० ४ आ० १ सू० ५३

अर्थात् श्रुतियों में पुत्र, पशु, स्त्री, परिच्छद, हिरण्य (सुवर्ण) और अन्नादि को भी फल बतलाया है जैसा किः—

पुत्रकामोयजेत।

अर्थात्—जिसे पुत्र की कामना (इच्छा) हो, वह यज्ञ करें इसमें यज्ञ का फल पुत्र बतलाया है और।

ग्रामकामोयजेत।

जिसे ग्राम की अभिलाषा हो वह भी यज्ञ करे इसमें यज्ञ का फल यज्ञ को बतलाया है, ये दोनों तथा सूत्र पठित अन्य फल भी आत्मा के आश्रय नहीं हैं, इससे तुम्हारा यह कथन कि एक ही आश्रय होता है सत्य नहीं। इसका समाधान गौतमजी अगले सूत्र में करते हैं किः—

तत्सम्बन्धात्फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः / न्या० द० ४ । १ । ५४ ।

इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि श्रुतियों में पुत्रादि को यज्ञ को बतलाया है यह बात ठीक है तथापि उन श्रुतियों में पुत्रादि को "उपचार" से फल मान लिया है। क्योंकि पुत्र स्त्री आदि पदार्थ सुख दुःखादि के साधन हैं अर्थात् मनुष्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के लिये ही प्रत्येक उपाय किया करता है जिन उपाय अर्थात् साधनों का एक भाग पुत्रादि समझने चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि पुत्रादि फल होना तो गौण अर्थात् कथन मात्र ही है; किंतु पुत्र, स्त्री आदि के संबंध से जो आत्मा को सुखादि का अनुभव होता है वास्तव में वह सुख ही फल समझना चाहिये, बस जब यह सिद्ध हुआ कि दुःख सुखादिक ही वास्तव में फल हैं और पुत्रादि उनके साधन हैं। इसलिये पुत्रादि में फल का व्यवहार उपचार मात्र ही है तब वादी का यह सिद्धांत कि 'कर्म और फल का आश्रय एक ही नहीं है' असत्य सिद्ध हो गया; क्योंकि पुत्रादि सम्बन्ध जन्य (होनेवाले) फल का आश्रय भी वही आत्मा है कि जिसने उसकी प्राप्ति के लिये कर्म किये थे। कदाचित कोई यह कहे कि गौतम जी का सिद्धांत है कि कर्म का फल इस जन्म में भी मिलता है और अन्य जन्मों में भी, बस यह सब शास्त्रार्थ उस पक्ष का समझना चाहिये कि जिस पक्ष में अन्य जन्म में फल माना तो इसका उत्तर यह है कि यदि गौतम जी का जन्म में ही इस जन्म कर्म का फल मिलना रूप सिद्धांत मान लिया जावे तो इस सूत्र को क्या सङ्गति करोगे ?

न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् । न्या० द०।४।१।४५

यह सूत्र पहिले भी अर्थ सहित हम लिख चुके हैं। अर्थात् वर्त्तमान में जो दुःखादि फल दीखता है, वह इस जन्म के कर्मों का फल नहीं है किंतु पूर्व जन्म के कर्मों का उपभोग है इत्यादि अन्य अनेक दोषों के कारण यह विचार अयुक्त है।

विचारशील पाठको! क्या अब भी आपको यह संदेह रहेगा कि 'अकालमृत्यु होती है, जब कि इस सिद्धांत को "महर्षि गौतम जी के साक्षात् सूत्रों से खण्डन किया जावे, जब कि महर्षि कपिल कणादादि जैसे ऋषि (कि जिनकी उपमा संसार में नहीं मिलती, जिनके सिद्धांत ऐसे अटल हैं कि जिनका असत्य होना कालत्रय में भी सम्भव नहीं, जिनके सिद्धांतों को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भी शिरोधार्य मान कर वैदिक धर्म को भूमण्डल में प्रसिद्ध किया) भी इस सिद्धांत को ठीक कहे जावें कि अकालमृत्यु नहीं होती तो भी यदि न मानें तो आप कौन हैं यह स्वयं विचार लेवें।

ऊपर के लेख से सिद्ध हो चुका कि वास्तव में ऋषियों के सिद्धांताऽनुसार तथा तर्क के द्वारा यह सिद्धांत ठीक नहीं कि "इस जन्म के कर्म का फल इस जन्म में मिलता वा मिल सकता है।"

एतेन भोगवादोऽपि व्याख्यातः।

इससे भोगवाद और अकालमृत्यु का न होना ये दोनों व्याख्यान हुये।

पाठकों को स्मरण रहे कि हम पहिले कह आये हैं कि अन्य के कर्म अन्य को दुःख सुख पहुँचाने में कारण नहीं होते, इस लिये हम उनकी सिद्धि में प्रमाण देते हैं। यहां प्रथम तो सांख्य दर्शन में ही कहा है कि—

न कर्मणान्यधर्मत्वादति प्रसक्तेश्च। सां०अ०१सू०१६

इस सूत्र के भाष्य में विज्ञान भिक्षु लिखते हैं कि

" न हि विहित निषिद्धकर्मणा पि पुरुषस्य बन्धः। कर्मणामनात्म धर्मत्वात्। अन्यधर्मेण साक्षादन्यस्य बन्धे च मुक्तस्यापि बन्धापत्तेरित्यर्थः ॥

अर्थात् विहित कर्म (जिनके करने के लिये आज्ञा दी है) और निषिद्ध कर्म [जिनके करने का निषेध किया है] इन दोनों प्रकार के कर्मों से आत्मा दुःख रूप बन्धन में नहीं आता ; क्योंकि कर्म करना चित्त का धर्म है आत्मा का नहीं और अन्य के धर्म से अन्य को दुःख रूप बन्धन हो जावे तो जो मनुष्य बद्ध हैं उनके कर्म से मुक्त जीव [मुक्ति से प्रथम] बन्धन में आजायेंगे, तथा जो मुक्त जीव हैं, उनके धर्म से बद्ध जीव मुक्त हो जावेंगे। इससे सिद्ध हुआ कि 'महर्षि कपिलजी के सिद्धांतानुसार अन्य के कर्मों से अन्य को दुःख सुखादि नहीं पहुँचते, इसी प्रकार आगे भी सांख्यशास्त्र में कहा है कि—

न कर्मणाप्यतद्धर्मत्वात्। सां० द० अ० १ सू० ५२ ॥

कर्मणा दृष्टेनापि साक्षान्न पुरुषस्य बंधः। कुतः। पुरुष धर्मात्वाभावात्। इति विज्ञानभिक्षुः ॥

अर्थात् हिलना चलना रूप कर्म से भी आत्मा का बंधन नहीं होता क्योंकि वह आत्मा से भिन्न का धर्म है, आत्मा का नहीं इत्यादि अर्थ पूर्ववत् है।

इसी प्रकार 'वैशेषिक' में भी बतलाया गया है कि अन्य का धर्म अन्य को दुःख सुखादि होने में कारण नहीं जैसाकि—

आत्मान्तरगुणाना मात्मान्तरेऽकारणत्वात् । वै० द० अ० ६ आ० १ सू० ५

इसका आशय यह कि आत्मान्तर अर्थात् अन्य आत्मा के (किये हुये पाप पुण्यादि) अन्य आत्मा के दु.ख सुख रूप फलोपभोग में कारण नहीं तो कृत हानि और अकृताभ्यागम रूप दोष (जो कि इश्वर के सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी होने से ईश्वर के न्याय में होने असम्भव हैं) आ जायेंगे। ऐसा ही अर्थ "वैशेषिक सूत्रोपस्कार,, रचयिता श्री शकर मिश्र ने भी किया है, वह हम उद्धृत करके लिखते हैं—

आत्मान्तरगुणानां याग हिंसादि पुन्यपापाना मात्मान्तरे यौ सुख दुःखात्माकौ गुणौ तयोरकारणत्वात् । एवं च प्रत्यात्मनिलाभ्यामेव धर्मा धर्माभ्यां सुख दुःखे न व्यधिकरणमन्यथा येन यागहिंसादिकं न कृतं तस्य तत्फलं स्यादिति कृतहानिरकृताभ्यागमश्च प्रसज्येत ।

इसका अर्थ पूर्व कह आये हैं, विशेष "कृतहानि" जिसने कर्म किया उसे न मिले और "अकृताभ्यागम" जिसने न किया उसे फल मिल जावे यह समझना चाहिये।

इत्यादि अनेकशः प्रमाण हैं कि जिनसे अन्य के कर्म से अन्य को फल न मिलना सिद्ध होता है। परन्तु यह सिद्धान्त प्रायः सब आस्तिकों को स्वीकृत है—इसलिये अधिक लिखना व्यर्थ है ।

पाठकों को अवगत हो कि यह पांचवें हेतु (जो युक्ति अकालमृत्यु के न होने में दी थी) का विस्तार है, अर्थात् अकाल

मृत्यु, मानने वाले या भोगवाद, न मानने वाले न तो यह सिद्ध कर सकते कि अकालमृत्यु और उस मृत्यु के पश्चात् जो जन्म है ये बिना कारण है और यदि कारण से मानें तो दुख सुखादि का कारण पाप पुण्य से अतिरिक्त हो नहीं सकता। इसलिये कर्म से मानों तथापि यदि कर्म से मानलें तो भी न इस जन्म के कर्म से सिद्ध कर सकते और नहीं पूर्व जन्म के कर्म से, तथा नहीं अन्य जन्म के कर्म से सिद्ध कर सकते हैं। वास्तव में असत्य बात का कुछ उत्तर हो ही नहीं सकता इसलिये—

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने स्वनिर्मित 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में लिख दिया है कि झूठ बात को छोड़ देना ही उत्तर है।

प्रयोजन यह है कि वास्तव में अकालमृत्यु आदि विषय आर्य ग्रन्थों को न पढ़ने या न समझने अथवा उन पर विश्वास न होने आदि के कारण संसार में फैल गये, इसी से अधिक हानि हुई, हिन्दुओं में जब यह सिद्धान्त देखने में आता है कि—

> अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।
> विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

अर्थात् विष्णु के चरण धोकर जो चरणामृत कहलाता है, वह अकालमृत्यु का हरने वाला, सर्वव्याधियों का विनाशक होता है, उसको जो मनुष्य पी लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् मुक्त हो जाता है।

इस सिद्धांत का विश्वास हिंदुओं को तो था ही; परन्तु आर्यों को भी 'अकाल मृत्यु' का विश्वास देखने में आता है कि संप्रति जितने आर्य नवीन हुए या होते हैं वे प्रायः अधिक हिंदू ही आर्य बनते हैं। बस वह विश्वास कि जो उन्हें आर्य होने

से पूर्व था आर्य ग्रंथों के न विचारने न समझने आदि कारण से वैसा ही रहता है; परन्तु आर्य समाज का [जो कि सत्त सिद्धांत माननेवाला आर्य समुदाय हो उसी का] इसमें क्या दोष है। क्योंकि यदि कोई रोगी वैद्य के समीप जाकर रहे यदि वह वैद्य किसी कारण से उसका प्रतीकार न कर सके या प्रतीकार करने पर भी वह रोगी उल्लाघ [तंदुरुस्त] न हो तो क्या उस वैद्य का दोष है ? कभी नहीं।

हम पूर्व कह आये हैं कि महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शन के अन्दर के कर्म विपाक तीन हैं अर्थात् जाति [मनुष्य पशु आदि योनि] आयु और भोग [दुःख सुख] और विपाक सब के सब पिछले जन्म में होते हैं (कर्म करने के लिये जो जन्म हैं, उससे अगले जन्मों में) इस बात को 'वात्स्यायन मुनि' जी ने भी 'न प्रवृत्तिः प्रति सन्धानाय हीन क्लेशस्य' इस सूत्र के भाष्य के अन्त में कहा है कि—

सर्वाणि पूर्वकर्माणि ह्यन्ते जन्मनि विपच्यन्त इति ॥
न्या० द० ४ । १ । ६४

अर्थात् सब कर्म पिछले जन्मों में विपाक को प्राप्त होते हैं, विपाक का अभिप्राय यह है कि जैसे बोया हुआ बीज कालांतर में फल देने योग्य होता है, इसी प्रकार कर्म भी कालांतर अर्थात् वर्त्तमान जन्म से अगले जन्मों में ही फलदायक होते हैं पूर्व नहीं। कहाँ तक लिखें, अकालमृत्यु, के मानने में कितनी हानि है अथवा "अकालमृत्यु, मानने में क्या-क्या दोष आते हैं और अकालमृत्यु में किस-किस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते, इसकी संख्या विद्वान् ही समझ लेंगे, यहाँ ग्रंथ विस्तारभय से सब नहीं लिखते। और यह जो कुछ लिखा है यह तो दिग्दर्शन मात्र

अथवा निदर्शन मात्र ही समझना चाहिए इसीलिये 'स्वामी दयानन्दजी' महाराज जो कि अन्तिमऋषि हुए हैं, उन्होंने भी "अकालमृत्यु" का न होना और भोगवाद का होना मान लिया था जैसा कि उन्होंने अपने मुख्य ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसे उत्कृष्ट पुस्तक में भी लिख दिया है कि:—

इसलिये पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

स० प्र० समु० ६ पृ० २६५

महाशयवृन्द !

क्या आपको अब भी संदेह अथवा मिथ्या ज्ञान रहेगा, जब कि अकालमृत्यु के न होने में हिंदुओं के लिये "गौतमादि" ऋषियों का कथन और आर्यों के लिये मत्र ऋषि तथा श्री १०८ स्वामी दयानंद सरस्वतीजी का प्रमाण है और अन्यों के लिये तर्क।

अब हम अकालमृत्यु के माननेवाले तथा भोगवाद न मानने वाले महाशयों से प्रार्थना करते हैं कि निष्पक्ष होकर इस प्रकरण को विचारकर तो देखें कि वास्तव में सत्य क्या है और असत्य क्या है ? यदि ये हेतु (दलीलें) असत्य हैं तो इनमें असत्यता क्या है ? अथवा अकालमृत्यु के होने में कोई अन्य हेतु है या नहीं ? यदि नहीं। तो

सारं ततो ग्राह्य मपास्य फल्गु—

हंसैर्यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात् ॥

हिंदुओं के मिश्रित (सच और झूठ मिले हुए) सिद्धांतों में से जैसे दुग्ध और जल में हंस अपनी विवेचन शक्ति से पृथक्-पृथक् करके दूध का ग्रहण और जल को त्याग देता है, इसी

प्रकार तुम्हें भी उचित है कि सत्यासत्य मिश्रित सिद्धांतों में से सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करो।

हम सबको इस बात का चैलेंज देते हैं अर्थात् आह्वान करते हैं कि यदि किसी के निकट "अकालमृत्यु" के होने में कोई सङ्केत हो तो वह बतलावे। अथवा हमारी बातों के असत्य होने में हो तो भी बतलावे। यदि न होने पर भी न मानें तो स्वस्थिति स्वयं ही जाननी चाहिए।

बहुत से मनुष्य ऐसे दुराग्रही होते हैं कि जो कुछ बात उनके मुख से निकल जावे, उसी की सिद्धि के लिये प्रयत्न करने लगते हैं, वे यह सोचते हैं कि यदि हम अपने मुख की बात को असत्य कहेंगे तो मनुष्य हमें मूर्ख अथवा असत्यवादी बतलावेंगे ; परन्तु सोचना चाहिए कि यदि मनुष्य से कोई दोष (गलती) हो जावे तो क्या यह आवश्यक अथवा उचित है कि वह सर्वदा उसी को सिद्ध करे, क्या तुम जब बाल्यावस्था में कोई अयोग्य व्यवहार करते थे तो क्या यह उचित है कि सर्वदा वही व्यवहार किया जावे? बस जैसे यह अनुचित है वैसे ही वह भी। क्योंकि अज्ञ को भी शास्त्रकारों ने बालक माना है, जैसे कि लिखा भी है :—

अज्ञो भवति वै बालः ॥ मनु०

अज्ञानी बालक होता है, प्रयोजन यह है कि मनुष्य को सर्वथा निर्भ्रान्त न होने से यदि कोई दोष वह कर भी दे तो उसको किसी प्रयोजन से मानते रहना अथवा सिद्ध करना मनुष्य स्वभाव से बहिः है।

अकालमृत्यु के न होने और भोगवाद की सिद्धि में निदर्शन मात्र प्रमाण दिखलावे, आशा है कि यह विचारशील जनों को सन्तोषजनक होगा ; क्योंकि हमारे अर्थ के विरुद्ध न्या० द०

आदि के वात्स्यायन मुनि आदि किसी भाष्यकार ने नहीं किये, जिन्हें आप देख रहे हैं अब हमारे सिद्धान्त में जो दोष प्रतीत होते हैं, उन सब का उत्तर देते हैं, पाठक दत्त चित्त होकर विचारें ! उनमें से प्रथम ।

आयु की वृद्धि और पत्त का विचार

इसका अभिप्राय यह है कि अकालमृत्यु मानने वाले प्रतिवादी अकालमृत्यु न मानने वालों के प्रति यह दोष देते हैं कि यदि तुम्हारा यह सिद्धान्त है कि न आयु घटती और न ही बढ़ती है तो शास्त्रों में लिखा हुआ यह सिद्धान्त आयु घटती और बढ़ती है । कैसे ठीक सिद्ध होगा, क्योंकि यदि तुम घटना बढ़ना मानोगे तो तुम्हें अकालमृत्यु भी माननी पड़ेगी यदि न मानोगे तो इसका क्या उत्तर दोगे ?

पाठकों को अवगत हो कि यह विचार पहिले भी आया है, इससे हम उसमें अधिक कुछ नहीं लिखेंगे ; क्योंकि वह इस विषय में पर्याप्त है, हां प्रकरण यहां का उपयोगी है, इसलिये हम प्रसङ्गबस उसे लिखे देते हैं ।

रिफार्मर (सुधारक)

प्यारे मित्रो ! हमारे प्राचीन ऋषि मुनि जिसे आचार्य कहते थे, पाश्चात्य देशों में जिसे पैग़म्बर कहते थे और यूरोपीय लोग जिसे रिफ़ार्मर कहते हैं, यह वह लोग हैं, जो अपने स्वार्थ सर्व-साधारण के हित पर न्योछावर करके अपने तन और धन को दूसरे के तन और धन की रक्षा में लगाते हुए अपनी जीवन यात्रा को नेकनीयती शुद्ध भावों से पूर्ण करते हैं, जिसकी प्रशंसा में महात्मा भर्तृहरि ने कहा है:—

एके सत्पुरुषाः परार्थ घटकाः स्वार्थं परित्यज्यथे ।।

अर्थात् मनुष्य जाति में एक सच्चे पुरुष हैं, जो दूसरे की भलाई तन मन और धन से बिना स्वार्थ के करते हैं, वह अपने स्वार्थ का तनिक भी ध्यान नहीं करते, उनकी आत्मा अपनी प्रबल शक्ति से बड़े-बड़े विघ्नों को हटाता हुआ अपने उद्देश्य को प्राप्त हो जाता है । जैसा कि महात्मा भर्तृहरि जी ने कहा है:—

"प्रारभ्यते न खलु विघ्न भये न नीचैः—
प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि हन्य मानाः—
प्रारभ्यचोत्तमजना न परित्यजन्ति ।।"

नी० श०

अर्थः—नीच पुरुष तो विघ्नों के भय से किसी काम को आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के मनुष्य काम को आरम्भ

कर देते हैं ; परन्तु जिस समय कोई विघ्न आकर पड़ता है तो तुरन्त उस कार्य को छोड़ अलग हो जाते हैं और उत्तम पुरुष अर्थात् रिफ़ार्मर वह है कि जो विघ्नों के आने पर भी अपने आरम्भ किये हुए उत्तम कार्य को नहीं छोड़ते।

प्रिय पाठकगण ! यह रिफ़ार्मर भी दो प्रकार के होते हैं। (१) वह जो संसार के प्रवाह के साथ बहकर संसार को कुमार्ग से हटाना चाहते हैं और दूसरे वह हैं जो संसार के प्रवाह को अपनी प्रबल शक्ति और आत्मिक बल से वहीं रोकने पर प्रस्तुत होते हैं। प्रथम श्रेणी के मनुष्यों में संसारी पुरुष तनिक भी विरोध नहीं करते और उनको कष्टों का सामना भी नहीं करना होता ; परन्तु द्वितीय श्रेणी के रिफ़ार्मरों का विरोध संसार अपनी आर्थिक, वैज्ञानिक, राज्यकीय एवं शारीरिक शक्ति सारांश यह कि हर प्रकार की शक्ति से करता है और जहाँ तक बन पड़ता है। संसारी मनुष्य इस श्रेणी के महात्माओं को कष्ट देने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं। कोई अपनी वाणी से उनको नास्तिक, गुमराह और मलऊन कहता है, कोई अपने धन से उनको हानि पहुँचाने के उपाय करते हैं, कोई अपनी विद्या को इस असत्य मार्ग को सत्य कर दिखाने में लगाता है और दिन रात इस प्रकार की युक्तियाँ सोचता है, जिससे कि उस महात्मा के सच्चे उद्योग से संसार पूर्ण लाभ न उठा सके, कोई अपने बल के घमण्ड में सोटा, तलवार और बंदूक लेकर सामने को दौड़ता है और कोई अपनी राज्यकीय शक्ति से क़ानून के बन्धन में कुचलना चाहता है।

प्रिय पाठकगण ! इसी प्रकार समस्त संसार उस अकेले के विरोध पर अपने सम्पूर्ण प्रयत्न को व्यय कर देता है ; परन्तु क्या बात कि सारे संसार के विरोध से उस महात्मा के हृदय में

तनिक भी भय उत्पन्न हो, संसार के बुरे बर्ताव से उस सच्चे हितैषी के हृदय पर तनिक भी शोक का अधिकार हो नहीं, नहीं, जितनी प्रबलता से विरोध दिखाई पड़ता है उतना ही वह अपनी शक्ति के (सुदृढ़) प्रभाव को देखकर अपनी सफलता पर प्रसन्न होता है। वह देखता है कि यावत् मनुष्य सूर्य को प्रकाश के इतना (बहुत ही) गर्म नहीं पाते, तावत् उसके प्रभाव से बचने का विचार भी नहीं करते। जिस समय धूप की गरमी से उनकी दशा बिगड़ने लगती है तबही उनकी रोक के उपाय सोचना आरम्भ करते हैं—कहीं खस की टट्टी लगाते है, कहीं घर बनाते हैं। यही दशा वर्तमान संसार की हो रही है कि वह अब मेरे सत्य उपदेश के तेज को जान गये हैं। वह जानता है कि यद्यपि यह मेरे विरोध पर तुले हुए हैं; परन्तु मेरी सत्यता को लोहा मान गये हैं। ऐसे भावों में उसका उत्साह बढ़ता जाता है और वह बढ़ना कम और वह भी जोर के साथ आरम्भ करता है संसार उसको हानि पहुँचाना चाहता है और उनको लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है। सारांश यह कि इसी प्रकार की खिंचा-खिची थोड़े समय तक खूब रहती है। यदि सामना करनेवाला राजा है तो संसार उसके धैर्य के सामने हार मानकर बैठ जाता है और उसके भय के मारे उसका आज्ञाकारी हो जाता है और यदि डाकू अथवा दास है तो वह आन्तरिक धैर्य न होने के कारण स्वयं संसार का दासत्व स्वीकार कर लेता है।

प्रिय पाठकगण! यदि आप संसार के इतिहास को उठाकर देखें तो पहिली श्रेणी के रिफ़ार्मरों (सुधारक) का आप नाम भी न पावेंगे; परन्तु द्वितीय श्रेणी के रिफ़ार्मर आपको चमकते हुए सूर्य की भाँति इतिहास रूपी प्रकाश पर दिखाई देंगे, यदि आप जनसाधारण से बातें करें तो इन प्रबल महात्माओं के

सेवक आपको असंख्य ही मिल जायेंगे। तनिक ध्यान तो दीजिये, जिस समय महात्मा बुद्ध ने संसार के सुधार के लिये कमर कसी थी, उस समय संसार में वाम मार्ग का जोर था। भारतवर्ष में वाममार्गी लोग यज्ञ के नाम से पशु हिंसा करते थे और अन्य देशों में भी गोस्तनी कुरबानी प्रचलित थी। महात्मा बुद्ध ने इन सब के विरोध पर अपनी कटि (कमर) कसी और चाहा कि अपनी प्रबल शक्ति से इस पाप नदी का प्रवाह रोक देवें। परंतु महात्मा राजा थे। इस लिये संसार का बड़ा भारी बंधन उनके गले में पड़ा हुआ था। जिस समय वह संसार को गिराना चाहते थे, संसार उस कड़ी को पकड़कर झटका दे देता था और महात्मा बुद्ध सफलता को प्राप्त नहीं होते थे। अन्त में उन्होंने न सोचा कि यावत् मैं इस बन्धन को तोड़कर गले से न निकाल दूंगा मैं कभी इसका सामना नहीं कर सकूंगा। उन्होंने झट से राज्य को छोड़ दिया, संसार के विरोध पर कटि (कमर) कसी और अन्त में वे फलीभूत हुए, २४ सौ वर्ष से महात्मा बुद्धदेव अपने राज्य में विद्यमान नहीं हैं; परन्तु फिर भी १-३ संसार उनका दास है, यदि महात्मा बुद्धदेव राज्य के बन्धन को गले में रहते हुए यावत् जीवन प्रयत्न करते तो भी इतना प्रभुत्व न प्राप्त होता और इस प्रकार का तो कदापि न होता कि उनके पीछे भी बना रहता, परन्तु बौद्ध धर्म्म का उनके २५ सौ वर्ष पीछे भी संसार में दिखाई देना और संसार के सम्पूर्ण वर्तमान राजाओं से अधिक प्रजा का होना केवल राज्य के बन्धन को तोड़ फकने का ही फल है।

प्रिय पाठकगण! जिस समय महात्मा बुद्ध के जानशीनों [उत्तराधिकारी] ने सत्य से गिरकर नास्तिकपन फैला दिया और स्वामी शंकराचार्य के हृदय में इस रोग के कांटों के निवारण

करने का विचार उत्पन्न हुआ तो उन्होंने सम्पूर्ण संसार के विरोध पर कमर बांधी, शंकर के समय से समस्त राजा बौद्ध थे, सेठ साहूकार बौद्ध थे, सारांश यह कि समस्त संसार महात्मा शंकराचार्य के प्रतिकूल था, परन्तु यह अपनी इन्द्रियों का राजा संसार को तुच्छ जान कर और उनके सामानों का तनिक भी विचार न करके बौद्ध धर्म्म के दबाने के लिये कटि बद्ध होगये, बड़े २ शास्त्रार्थ हुए लोगों ने उनके विरोध पर कमर कसी ; परन्तु अन्त में सफलता ही को प्राप्त हुए समस्त भारत से बौद्ध धर्म्म को निकाल दिया, यदि शंकराचार्य ३२ वर्ष की वय में न मर जाते तो कदाचित समस्त संसार में बौद्ध धर्म का नाम न रहता और नाहीं और कोई मत जो बौद्ध मत से उत्पन्न हुए थे वरन् समस्त संसार में एक वैदिक धर्म ही प्रकाश करता और सम्पूर्ण संसार इस सच्चे सूर्य के प्रकाश से अविद्या और प्रमाद के अन्धकार से बच कर अपने लक्ष्य पर पहुँचने का प्रबन्ध करते और यह बुराइयाँ अर्थात् मुकदमेबाजी, झूठ बोलना, फरेब, दगाबाजी जो आज संसार में दिखाई पड़ती हैं, तनिक भी न दीखतीं।

प्रिय पाठकगण ! जिस समय महात्मा मसीह ने मजूसीयों की रीतियों को मनुष्य जाति के लिये हानिकारक जानकर उनके निवारण करने का प्रयत्न किया, तब भी सारे रूम के मनुष्य उसके विरुद्ध होगये, महात्मा मसीह ने जिसने बौद्ध धर्मानुयाइयों से शिक्षा प्राप्त की थी, जिसने बुद्ध के इतिहास और वृत्तान्त को भी सुन रखा था, उनके विरोध पर कुछ ध्यान न दिया और काम को धूम धाम से चलाये गया, थोड़े ही वर्षों के उपदेश से सहस्रों मनुष्य उसके विचार के हो गये, उस समय मजूसी बादशाह थे, मजूसी धनवान थे और मजूसी ही मल्ल

थे, परन्तु मसीह रिफ़ार्मर था, वह संसार के दास थे और यह संसार का विरोधी, यद्यपि मसीह इस झंझट में अपने एक शिष्य की बेईमानी एवं विश्वासघात से मारा गया; परन्तु उसकी मृत्यु ने भी मजूसियों के सिद्धान्त और रीति भाँति को नष्ट कर दिया। आज आधा संसार इसके अनुयाइयों के अधिकार में है, यदि मसीह यावत् जीवन संसार के बन्धन में रहकर प्रयत्न करता तो कभी भी इस मान को नहीं प्राप्त कर सकता था और इतने मनुष्यों के हृदय पर १६ सो वर्ष से यहाँ न होते हुए भी अपना प्रभाव बनाये रखता।

प्रिय पाठकगण! हज़रत मुहम्मद साहेब ने अरब स्थान के जंगली देशों में मूर्ति पूजा के जोर शोर (प्रबल) तथा रक्त की नदी को बहता हुआ देखकर उसके रोकने का प्रयत्न किया, मुहम्मद साहेब के विरोधी उस समय संसार के मनुष्य थे, (यहां तक कि) उसके अपने परिजन कुरैश भी उसको हानि पहुँचाने पर तुले हुए थे और अन्य सब जातियाँ भी अरबस्थान की इस के प्रतिकूल होगईं (परन्तु इसने क्या किया?) आरम्भ में तो इस महापुरुष ने संसार के विरोध पर ध्यान न दिया जिसके कारण कि संसार के एक बड़े मान पर इसने अधिकार जमा लिया परन्तु यह मूर्ख तथा धैर्य से शून्य था अतः अन्त में संसार के दासत्व में फँस गया, शहवत् परस्ती (कामासक्ता) तथा क्रोध ने उसको अपने सिद्धान्तों से गिरा दिया और वह एक धार्मिक शक्ति के बदले जिसका उद्देश्य कि संसार में शान्ति स्थापित करना है पोलीटिकेल (राष्ट्रीय) भाव जिसका प्रभाव कि संसार की शान्ति के लिये हानि कारक सिद्ध हो चुका है फैलाने लगा और उसने जहाद की ऐसी बुरी शिक्षा [खूंखार

तालीम] अरब तथा अफगानिस्तान के जंगलियों को दी कि जिसने संसार को लाभ के बदले बहुत हानि पहुँचाई ।

प्रिय पाठकगण ! क्या कारण कि बुद्ध, शंकराचार्य और मसीह अपने सिद्धान्तों से पतित नहीं हुए परन्तु हजरत मुहम्मद साहेब होगये ? इसका बड़ा भारी कारण जहाँ तक सोचा गया है यह है कि बुद्ध ने राज्य के बन्धन को गले से उतार दिया स्त्री आदि को छोड़ दिया था, शंकराचार्य को तो यह रोग छू तक नहीं गया था और मसीह तो इस रोग से पूर्णतया बचा रहा, इसी लिये यह तीनों महात्मा सफल हुए। और मुहम्मद साहेब ने खदीमा आदि से विवाह करके संसार बन्धन अपने गले लिया था, अतः जिस समय संसार के विरुद्ध वह कुछ करना चाहते थे उस समय संसार एक ऐसा झटका देता था कि उसकी अपनी सारी सुधि भूल जाती थी। दूसरे मुहम्मद साहब के स्वभाव में क्रोध का वेग अरब स्थान में जन्म होने एवं बुद्धि हीनता के कारण इतना था कि जिस समय वह कुरैशों द्वारा दुखी किये गये निज अपमान स्मरण करते थे, तुरन्त ही बदले का विचार प्रबल हो जाता था और खुदा के भरोसे तथा वास्तविक विचार से दूर जा पड़ते थे ।

प्रिय पाठक गण ! वर्तमान समय में जब स्वामी दयानन्द ने देखा कि समस्त मनुष्य जीवन के उद्देश से अनभिज्ञ होकर कष्ट उठा रहे हैं तथा संसार के धार्मिक उपदेशक स्वार्थ वश मनुष्यों को बहका कर आपस में लड़ा रहे हैं और सत्य से सब अनभिज्ञ होकर केवल पक्षपात एवं हठ धर्मी से एक दूसरे को बुरा कहने की बान पकड़ गये हैं, प्रत्येक मनुष्य अपने घमण्ड में अपने असत्य विचारों को समझ रहा है तथा दूसरों के सत्य विचारों को भी झूठा बनाने का प्रयत्न कर रहा है; एक ओर लालच देकर

मनुष्यों को अपने धर्म से पतित किया जाता है, दूसरी ओर भय और तलवार दिखाकर अविद्या का राज्य जमाया जाता है, तीसरी ओर झूठी शिक्षा द्वारा मनुष्यों को भ्रमात्मक करके नास्तिक बनाया जाता है और चौथी ओर कानून की पेचदार तकरीरों द्वारा मुकद्दमाबाजी तथा फूट का जोर बढ़ाया जाता है—सारांश यह कि हर ओर संसार के दासत्व की प्रबलता बढ़ रही है, भाई-भाई के नाश करने को प्रस्तुत है, ऐक्य का नामोनिशान नहीं, धर्म-धर्म कहने को तो बहुत हैं; परन्तु करने का किसी को ध्यान भी नहीं। ऐसी दशा में तब उन महात्मा ने सुधार पर कमर कसी, विरोध आरम्भ हुआ। एक ओर समस्त संसार के बीस करोड़ मुसल्मान—अमीर, नवाब और बड़े-बड़े पराक्रमी पहलवान—दूसरी ओर ईसाई जिनकी बादशाहत पश्चिम से पूर्व तक फैल रही थी, तीसरी ओर सारे हिन्दू २४ करोड़ की संख्या में थे, बड़े-बड़े राजा, महाराजा, सेठ साहूकार, पण्डित, सन्यासी और गुसाईं, मुक़ाबले पर थे। सबका विरोधी वह ईश्वर का भक्त था। किसी से संधि न थी। सब विरोध पर कटिबद्ध थे। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ हुये, प्रतिपक्षियों ने खूब जोर लगाया और जब विद्या के बल से काम न चला तो ईंट और पत्थर बरसाये। हुआ क्या? महात्मा तनिक भी नहीं घबड़ाया। वरन् जितना विरोध बढ़ता गया, उनको अपनी सफलता की आशा बढ़ती दिखाई दी पहिले मौखिक उपदेश तथा शास्त्रार्थ किये फिर पाठशालायें खोलीं तत्पश्चात् समाज बनाना वेद भाष्य करना एवं अपने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ पुस्तक रचनी आरम्भ की। परिणाम क्या हुआ, संसार के सामने स्वामी दयानन्द अकेला सन्यासी जिसके पास एक लंगोटी के अतिरिक्त कोई और वस्तु न थी, सफलता को प्राप्त हुआ।

प्रिय पाठकगण ! बहुधा मनुष्य कहते हैं कि यदि स्वामी दयानन्द ने ५० सहस्र अथवा १ लक्ष मनुष्य अपने विचार के बना लिये तो क्या हो गया, ३० करोड़ मनुष्य ले लेना तो भारतवर्ष में ही हैं। इस दशा में तीन सहस्र मनुष्य में से एक मनुष्य ले लेना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु स्मरण रहे कि यदि विजेता को विजय में एक मोती मिल जावे तो बहुत है, जिसमें यह तो एक लक्ष मनुष्य हैं, क्योंकि समस्त संसार के मुक़ाबले में एक मनुष्य का खड़े रहना ही असम्भव-सा है तो फिर उससे छीन लेना कुछ थोड़ी बीरता नहीं है और यह तो विचार कीजिये कि एक मनुष्य के पास ५० गाँव हैं और दूसरे के पास एक भी नहीं। अब यदि दूसरा मनुष्य पहिले से लड़कर एक गाँव छीन ले तो आप बीर किसे कहेंगे ? और फिर लड़ाई भी ऐसी, जिसमें छल या फरेब का लेश न हो। अजी गाफ़िल (अचेत) पाकर काम कर लेना तो और बात है ; परन्तु संसार में डंके की चोट मैदान (क्षेत्र) में मुकाबला करना और उसको जीत कर उसका भाग छीनना बहुत ही असम्भव है।

प्रिय पाठकगण ! हिन्दू पण्डितों और स्वामी दयानन्द का मुक़ाबला तो इतना प्रशंसनीय नहीं, क्योंकि हिन्दुओं का तो यह बिना मुक़ाबला किये ही वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा सन्यासी होने के कारण गुरू था ही ! परन्तु बात तो यह है कि उसकी प्रबल शक्ति ने वह समय दिखाया कि वह पादरी जो हमारे हिन्दुओं को धार्मिक शास्त्रार्थ तथा धर्म निर्णय के लिये चैलेंज (घोषणा) करते थे और हमारे हिन्दू भाई जिनसे शास्त्रार्थ करते हुए घबड़ाते थे, आज उस ऋषि के प्रयत्न से एक उलटी ही अवस्था में हो गये अर्थात् अब हिन्दू और आर्य तो ईसाइयों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारते हैं ; परन्तु वह इससे ऐसे कतराते हैं कि जहाँ

कहीं मुठभेड़ हुई तो वह यह कहकर कि हमारा समय होगया अथवा तुम्हें शैतान बहका गया है, चल देते हैं। दूसरे हमारे मौलवी साहब जो पहिले हिन्दुओं को बुत परस्त (मूर्ति पूजक) और स्वयं अपने को ईश्वर की उपासना करने वाला सिद्ध करते थे और हिन्दू पण्डित सर्वदा उनके साथ शास्त्रार्थ करने में घबड़ाया करते थे, आज माकूलियत (उचित रीत्यानुसार) शास्त्रार्थ करने को तैयार नहीं और जब कभी कहीं छिड़ गया तो मौलवी साहेब क्रोध में आकर लड़ने लग जाते हैं।

प्रिय पाठक गण ! यदि आप तनिक ध्यानपूर्वक विचारें कि तीस वर्ष पूर्व हिन्दुओं को मुसल्मान अपने मत में मिला लेते थे और यही दशा ईसाइयों की थी—यहाँ तक कि कई करोड़ मनुष्य तो मुसलमान हो गये और कोई २५ लक्ष हिन्दू ईसाई हो गये परन्तु स्वामी दयानन्द के थोड़े से प्रयत्न ने यहाँ तक काया पलट दी कि अब वर्षों के कीड़े हिन्दू ईसाई और मुसलमानी मतों को छोड़ कर अपने सत्य सनातन धर्म की ओर चले आ रहे हैं। आप चकित होंगे कि उलटी गंगा कैसे बहने लगीं ? परन्तु आपको स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि जल अपने स्वभाव से नीचे की ओर बह जाता है ; परन्तु सूर्य की आकर्षण शक्ति उसको आकाश की ओर फिर ले जाती है। इसी प्रकार यद्यपि हिन्दू अपनी विद्या को भूल जाने से [स्वभावतः] इसलाम और ईसाइयत के गड्ढे में जा रहे थे ; परन्तु स्वामी दयानन्द जो ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य से आदित्य पदवी प्राप्त कर चुके थे, अपनी आकर्षण शक्ति से उन को इन गढ़ों से निकाल कर फिर ऋषियों के सत्यनाम पर जो आकाश से भी ऊँचा है, ले जाने का प्रयत्न किया है।

प्रिय पाठक गण ! जिस प्रकार सूर्य की किरण पृथ्वी पर से जल खींचती हुई दिखाई नहीं पड़ती, सिवाय गर्मियों के दिनों के

(ग्रीष्म ऋतु के) इसी प्रकार स्वामी दयानन्द का उपदेश भी प्रत्यक्ष कोई काम करता नहीं दीख पड़ता ; परन्तु यदि आप विचार-पूर्वक दृष्टिपात करें तो पता लगेगा कि स्वामी दयानन्द ने वैदिक (ईश्वरीय) धर्म को छोड़कर समस्त मनुष्यकृत मतों को, जिनमें बुद्धि से काम लेने का कोई काम नहीं, जड़ से उखाड़ दिया है। यद्यपि मनुष्य चारों ओर नाना प्रकार की टिप्पणी रूपी पैबन्द लगाकर अपने मतों को बनाये रखना चाहते हैं ; परन्तु सम्भव नहीं कि कोई दीपक सूर्य के सम्मुख काम कर सके अथवा कोई मनुष्य जिसके नेत्रों में किसी प्रकार का दोष न हो, सूर्य के होते हुए दीपक जलाकर व्यर्थ में अपना तेल गँवावे। अतः हे प्रिय भ्राताओ ! यदि आप सफलता की इच्छा रखते हैं तो संसार बन्धन को तोड़कर फेंक दें और सच्चे हृदय से प्रयत्न में लग जावें, फिर देखिए कितनी शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।